साहित्य अमृत

मासिक

माघ-फाल्गुन, संवत्-२०८० फरवरी २०२४

वर्ष-२९ अंक-७ पृष्ठ ९२ यू.जी.सी.-केयर लिस्ट में उल्लिखित RNI No. 62112/95 ISSN 2455-1171

संस्थापक संपादक

पं. विद्यानिवास मिश्र

निवर्तमान संपादक

डॉ. लक्ष्मीमल्ल सिंघवी

श्री त्रिलोकी नाथ चतुर्वेदी

संस्थापक संपादक (प्रबंध)

श्री श्यामसुंदर

प्रबंध संपादक

पीयूष कुमार

संपादक

लक्ष्मी शंकर वाजपेयी

संयुक्त संपादक

डॉ. हेमंत कुकरेती

उप संपादक

उर्वशी अग्रवाल 'उर्वी'

कार्यालय

४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-०२

फोन : ०११-२३२८९७७७

०८४४८६१२२६९

इ-मेल : sahityaamrit@gmail.com

शुल्क

एक अंक—₹ ३०

वार्षिक (व्यक्तियों के लिए)—₹ ३००

वार्षिक (संस्थाओं/पुस्तकालयों के लिए)—₹ ४००

विदेश में

एक अंक—चार यू.एस. डॉलर (US$4)

वार्षिक—पैंतालीस यू.एस. डॉलर (US$45)

साहित्य अमृत के बैंक खाते का विवरण

बैंक ऑफ इंडिया

खाता सं. : **600120110001052**

IFSC : **BKID0006001**

प्रकाशक, मुद्रक तथा स्वत्वाधिकारी पीयूष कुमार द्वारा ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२ से प्रकाशित एवं न्यू प्रिंट इंडिया प्रा.लि., ८/४-बी, साहिबाबाद इंडस्ट्रियल एरिया, साइट-IV, गाजियाबाद-२०१०१० द्वारा मुद्रित।

इस अंक में

✍ **संपादकीय**

नकली बनाम असली ४

✍ **प्रतिस्मृति**

पीर, बावरची, भिश्ती, खर/ *अवध नारायण मुद्गल* ६

✍ **कहानी**

बँटवारा/ *सुनीता राजीव* ९

विनम्र श्रद्धांजलि *अश्विनीकुमार दुबे* १६

कमाई/ *तुलसी देवी तिवारी* २२

दो बूढ़े/ *राकेश भ्रमर* ३४

वह महान् बालक/ *साजिद खान* ४३

घोंघे/ *उपमा शर्मा* ५२

हैप्पी न्यू ईयर/ *तारो सिंदिक* ७०

दूरभाष/ *रश्मि गौड़* ८०

✍ **लघुकथा**

तीन लघुकथाएँ/ *बलराम अग्रवाल* ३०

इंद्रधनुषी प्यार/ *रत्ना श्रीवास्तव* ३९

✍ **आलेख**

जन-जन की आस्था के केंद्र : श्रीराम/ *धीरेंद्रप्रसाद सिंह* २०

बनन में बागन में बगर्‌यो बसंत है/ *शैलेंद्र कुमार शर्मा* २६

स्वच्छता का महत्त्व एवं संपोषित भविष्य के लिए स्वास्थ्य स्वच्छता/ *प्रेमलता देवी* ३२

ब्रजलोक की लघुकथाओं में सामाजिक चेतना/ *हरदेव 'निमौतिया'* ३७

कण-कण में विराजते हैं राम/ सुमन बाजपेयी ५९

उजड़े हुए लोगों के बिखरे हुए ख्वाब/ *देवी प्रसाद तिवारी* ५६

भारतीय ज्ञान-परंपरा में काशी का रगमंच/ *प्रभांशु ओझा* ६८

✍ **ललित-निबंध**

मन का विच्छेद/ *गोविंद गुंजन* १३

✍ **कविता**

वक्त-बेवक्त/ *भीकम सिंह* १८

इन दिनों हवाएँ/ *बी.एल. आच्छा* १९

बाल गीत/ *माला श्रीवास्तव* २१

धरती के गर्भ में/ *सुदर्शन वशिष्ठ* २५

सीमाहीन तुम्हारी छाया/ *वीरेंद्र प्रसाद* ५१

वसंत ऋतु है/ *सुनील त्रिपाठी निराला* ५९

दर्द की आग को दूर रखना जरा/ *चंद्रपाल मिश्र 'गगन'* ७३

ज्ञान-भक्ति के रहस्य / *व्यग्र पांडे* ७७

भोर हो गई/ *पद्मा मिश्रा* ७९

आना वसंत का/ *हुसैनी बोहरा* ८३

मैं राममंदिर हूँ/ *रेणु राजवंशी गुप्ता* ८५

✍ **राम झरोखे बैठ के**

आग और विकास/ *गोपाल चतुर्वेदी* ४०

✍ **यात्रा-संस्मरण**

'''गंगासागर एक बार/ *प्रेमपाल शर्मा* ६०

✍ **साहित्य का भारतीय परिपार्श्व**

सब-वे/ *मोहम्मद खदीरबाबू* ६६

✍ **साहित्य का विश्व परिपार्श्व**

स्वीटनेस/ *टोनी मॉरिसन* ७४

✍ **व्यंग्य**

हमारे जमाने के गुरुजी/ *अयोध्या प्रसाद* ७८

✍ **बाल-संसार**

कौआ और बिल्ली/ *टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'* ८४

✍ पाठकों की प्रतिक्रियाएँ ८६

✍ वर्ग-पहेली ८८

✍ साहित्यिक गतिविधियाँ ८९

साहित्य अमृत में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार एवं दृष्टिकोण संबंधित लेखक के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का उनसे सहमत होना आवश्यक नहीं है।

नकली बनाम असली

दृश्य १ : सोशल मीडिया पर एक वीडियो को अब तक कई लाख लोग देख चुके हैं। एक गायक है, हाथ में वाद्ययंत्र है और वह मोहम्मद रफी का गाना गा रहा है,'''ये जिंदगी के मेले'''दुनिया में कम न होंगे''' ! गाने के बीच-बीच में आज के समय के बड़े-बड़े गायक-गायिकाएँ उसके गाने पर बेहद मोहित और प्रभावित दिखाई देते हैं''' ! कुछ की आँखें नम होती दिखाई जाती हैं! चार मिनट तक यही सब चलता रहता है। गाने में रफी साहब की आवाज है, जो गायक वीडियो में है, वह पूरी तरह आँखों में धूल झोंक रहा है, छल कर रहा है'''कोई भी इस छल को पकड़ना चाहे तो बहुत आसान है, क्योंकि बड़े-बड़े गायक और वह फर्जी गायक कभी भी एक फ्रेम में नहीं दिखाई देते! साथ ही उन गायक-गायिकाओं के कपड़े भी बदल जाते हैं, क्योंकि वीडियो बनाने वाले ने नकल करते वक्त अकल का प्रयोग नहीं किया और जहाँ से जो टुकड़ा मिला, जोड़ दिया गया।

लेकिन समस्या यह नहीं है कि एक ठग ने एक महान् गायक की आवाज का प्रयोग करके लाखों लोगों के साथ धोखा किया, समस्या यह है कि जिन कई लाख लोगों ने वीडियो देखा, उसमें से लाखों लोगों ने जो टिप्पणियाँ (कमेंट) दीं, उनमें उस गायक को रफी साहब से अधिक महान् तथा उसके गायन को शानदार, अद्‌भुत, अप्रतिम, अलौकिक तथा ऐसे ही अनेक विशेषणों से विभूषित कर दिया। कहीं सौ लोगों में दो-चार ने सच बताने का प्रयास किया था तो वह व्यर्थ गया और वीडियो के 'शेयर' भी हजारों की संख्या में हुए।

दृश्य २ : एक कविता बार-बार सोशल मीडिया में प्रकट हो जाती है, जिसे महादेवी वर्माजी की बताया जाता है। कहते हैं कि एक झूठ को छुपाने के लिए सौ झूठ बोलने पड़ते हैं, ठीक उसी तर्ज पर कविता के साथ यह भी जोड़ दिया जाता है कि किसी प्रकाशक को इसे छापने की हिम्मत नहीं पड़ी। इसलिए यह कविता उनके किसी संग्रह में नहीं मिलेगी। यानी कोई यह बताना चाहे कि कविता महादेवीजी की नहीं है और उनके किसी कविता-संग्रह में नहीं मिलेगी तो उसका समाधान भी पहले से तैयार है। कविता महिला सशक्तीकरण पर है, पुरुष सत्ता पर बहुत तीखा प्रहार करती है, किंतु 'छंदमुक्त' कविता है। अब कविता को फैलाने वालों तथा फिर उसे 'फॉरवर्ड' करके आगे बढ़ानेवालों को कौन समझाए कि महादेवी वर्माजी के समय 'छंदमुक्त' कविता का अस्तित्व ही नहीं था।

महादेवीजी के समकालीन निरालाजी ने छंद को तोड़कर उसे 'मुक्तछंद' में अवश्य बदला था, लेकिन तुकांत मिलाने तथा लय की निरंतरता बनाए रखने को नहीं त्यागा था। एक बार फिर वही प्रश्न उपस्थित होता है कि किसी नादान कविताप्रेमी ने किसी कवयित्री की कविता को महादेवी वर्मा की कविता बता दिया; बात सिर्फ इतनी नहीं है। इस कविता को उन्होंने भी आगे फैलाया, जो स्वयं कवि या कवयित्री के रूप में जाने जाते हैं या वे लोग, जो महाविद्यालयों में हिंदी पढ़ाते हैं। जिन लोगों के मन में महादेवीजी के प्रति सम्मान है, उनकी कविताओं का, रचना-शिल्प का ज्ञान है, उन्होंने सच्चाई सामने लाने का प्रयास भी किया, कविता की मूल रचनाकार का साक्षात्कार भी सामने लाने का प्रयास किया, किंतु झूठ के नक्कारखाने में सच की आवाज दब गई।

सवाल फिर यही उठता है कि झूठ का यह विराट् कारोबार साहित्य की कितनी क्षति कर रहा है। आने वाली पीढ़ी सच्चाई से कैसे परिचित हो पाएगी? एक बार जो गलती अनजाने में भी हो जाती है, वह आगे चलकर बड़ा रूप धारण कर लेती है, जैसे अटल बिहारी वाजपेयीजी की पंक्तियाँ हैं—

हार नहीं मानूँगा
रार नई ठानूँगा

बड़ी सीधी सी बात है कि कवि हार नहीं मानने तथा नए संघर्ष (रार) की बात कर रहा है, लेकिन जाने कैसे ये पंक्तियाँ बदलकर यों हो गईं—

हार नहीं मानूँगा
रार नहीं ठानूँगा

और अर्थ का अनर्थ हो गया! इन गलत पक्तियों वाले पोस्टर पूरी दिल्ली में लग गए।

यह भी विचारणीय है कि आम लोगों से यह अपेक्षा नहीं की जा सकती कि वे इस पीड़ा को समझ पाएँगे कि किसी कमजोर कविता को दिनकर या महादेवी या अन्य महान् कवियों का नाम देना उन विभूतियों के लिए कितना अपमानजनक है, किंतु प्रबुद्ध वर्ग को तो सचेत होना चाहिए तथा ऐसी प्रवृत्तियों का विरोध करना चाहिए, न कि स्वयं अनुचित कार्य के भागीदार बनना चाहिए!

दृश्य ३ : समस्या सिर्फ संगीत तथा कविता के क्षेत्र में नकली-असली, झूठ-सच या छल-कपट की नहीं है। यह समस्या बहुत से रूपों में करोड़ों लोगों की विचार-क्षमता, उनके ज्ञान, सूचना संसार को प्रभावित कर रही है। एक बाबाजी के वीडियो आए दिन आते रहते हैं। तकनीक का सहारा लेकर किसी भी प्रख्यात व्यक्तित्व को बाबाजी के दरबार में हाजिरी लगाते, प्रणाम करते, उनका प्रवचन सुनते दिखा दिया जाता है। यहाँ भी नकली का फर्क समझने वाला समझ सकता है कि बाबाजी और प्रख्यात हस्ती को कभी एक फ्रेम में नहीं दिखाया जाता।

इसी तरह दूसरे क्षेत्रों के भी ऐसे हजारों वीडियो फैलाए गए हैं, जो पूरी तरह झूठ नहीं है तो उनमें सच्चाई मात्र एक से पाँच प्रतिशत ही होती है। कुछ-कुछ दिनों के लिए कार्यवाहक प्रधानमंत्रीजी बने गुलजारी लाल नंदाजी के मकानमालिक द्वारा मकान खाली कराने के प्रसंग को न जाने कितनी मनगढ़ंत कहानियों से भर दिया गया। इतिहास के कितने ही प्रसंगों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत कर दिया गया है। इस तरह के फर्जी वीडियो युवा पीढ़ी को गलत जानकारियाँ देकर भ्रमित कर रहे हैं, साथ ही सामाजिक ताने-बाने को भी छिन्न-भिन्न कर रहे हैं।

कितने ही टेलीविजन चैनलों ने इस तरह के कार्यक्रम प्रारंभ किए, जिनमें वे किसी वीडियो की सच्चाई की जाँच-परख करते हैं। लेकिन झूठ फैलाने वाले वीडियो तो सैकड़ों-हजारों की संख्या में हैं, जबकि टेलीविजन पर सीमित संख्या में जाँच संभव है। सबसे बड़ी विडंबना तो यह है कि कई बार टेलीविजन चैनल भी झूठ फैलाने में भागीदार बन गए। भले ही उन्होंने खेद व्यक्त कर लिया हो, किंतु क्या यह संभव है कि जिन्होंने झूठ फैलाने वाला कार्यक्रम देखा हो, उन सबने खेद व्यक्त करना भी देखा हो।

कृत्रिम मेधा यानी आर्टीफिशियल इंटेलीजेंस ने समस्या को जटिल या बुरी समस्या से 'भयानक' समस्या में बदल दिया है। पूरे देश का ध्यान दो महान् क्रिकेट खिलाड़ियों के फर्जी वीडियो पर गया, जो कृत्रिम मेधा द्वारा बना लिया गया। कृत्रिम मेधा का अनुचित प्रयोग अत्यंत विनाशकारी साबित हो सकता है। गनीमत है कि भारत सरकार का ध्यान इस 'डीप फेक' की ओर गया है और वह इस समस्या से निबटने के लिए कृतसंकल्पित है। आम नागरिकों, विशेषकर प्रबुद्ध वर्ग को भी यह दायित्व सँभालना पड़ेगा कि कुछ भी सनसनीखेज देखकर किसी संदेश या वीडियो को आगे न फैलाएँ, वरन् अपने मस्तिष्क का प्रयोग कर लें, जो ईश्वर ने सबको दिया है तथा चौबीस घंटे नि:शुल्क कार्य करता है।

मानवता के आँसू

भारतभूषण अग्रवाल पुरस्कार से सम्मानित एक कविता के अंश याद आते हैं···

नन्हे हाथ
जिन्हें खिलौनों से उलझना था
खेतों में बम के टुकड़े चुन रहे हैं
वे हँसते हैं
और एक सुलगता हुआ
बम फूट जाता है···
कितनी सहज है मृत्यु यहाँ
एक खिलौने की चाभी
टूटने से भी अधिक सहज···।

ऐसी ही हजारों कविताएँ लिखी गई हैं और दुनिया की हर भाषा में लिखी गई हैं, जो युद्ध से हुए विनाश को रेखांकित करती है, करोड़ों मनुष्यों, विशेषकर महिलाओं और मासूम बच्चों की अथाह पीड़ाओं को मार्मिक अभिव्यक्ति देती हैं।

साहिर लुधियानवी की अमर नज्म 'परछाइयाँ' विश्व की कालजयी कविताओं में से है, जो युद्ध के अनेक मानवीय तथा सामाजिक पहलुओं को उजागर करती है। कविताएँ लंबी हों या हाइकु जैसी लघुतम कविता, कवियों ने युद्ध की भयावहता पर निरंतर जागरूक किया है।

डॉ. जगदीश कोम का यह हाइकु मात्र सत्रह अक्षरों में गहरा संदेश दे देता है—

हुआ जो युद्ध
रोएगी मानवता
हँसेंगे गिद्ध

कितने ही उपन्यास लिखे गए, हजारों कहानियाँ लिखी गईं, नाटक लिखे गए, मंचित किए गए, फिल्में बनीं··· किंतु युद्ध नहीं रुक पाए···!!

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जब हिरोशिमा तथा नागासाकी पर परमाणु बम गिर गए, पूरा विश्व, पूरी मानवता स्तब्ध रह गई। लाखों बेगुनाह स्त्री-पुरुष-बच्चों की मौत हो गई, लाखों लोग जीवनभर के लिए अपाहिज हो गए···! विकिरण की भयावहता दशकों तक आतंकित करती रही। संयुक्त राष्ट्र का गठन हुआ। मानवकल्याण के लिए अनेक संस्थाएँ बनीं, अंतरराष्ट्रीय न्यायालय बना, मानवाधिकार संगठन बना, लेकिन युद्ध नहीं रुके। दुनिया का कोई भी युद्ध हो तथा कितने ही वर्ष चला हो, आखिरकार समाधान बैठकर विचार-विमर्श से ही निकला।

आज के विश्व में जहाँ विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी ने इतनी सुविधाएँ दे दी हैं कि मनुष्य सुख-शांति से जीवन गुजार ले तथा एक अति समृद्ध सभ्यता का वारिस बना दिया है, कुछ सत्ताधीशों की सनक करोड़ों निरपराध मनुष्यों का जीवन संकट में डाल देती है। रूस और यूक्रेन का युद्ध दो वर्ष पहले प्रारंभ हुआ था। दोनों ओर के हजारों नागरिक मारे जा चुके हैं। कितने ही मासूम बच्चे अकाल मौत मारे गए। लाखों युवाओं की पढ़ाई-लिखाई चौपट हो चुकी है, भविष्य अंधकारमय हो चुका है, कितने ही परिवार अपने पालनकर्ताओं को खो चुके हैं। जो नगर, उपनगर अपने सौंदर्य तथा विकास के लिए पूरे विश्व में विख्यात थे, मलबे में बदल चुके हैं। लाखों खूबसूरत विशालकाय, गगनचुंबी इमारतें ध्वस्त हो चुकी हैं। कितने ही कारखाने, उद्योग-धंधे नष्ट हो चुके हैं, लेकिन युद्ध जारी है।

क्या साहित्य कुछ नहीं कर पाता? कविताएँ बेअसर हैं? शायद यह पूरा सच नहीं है। लाखों नागरिक युद्ध के विरोध में तथा शांति की तलाश में अपनी आवाजें बुलंद कर रहे हैं। काश, इन आवाजों का असर हो··· और युद्ध जहाँ भी हैं रुक जाएँ, मानवता के आँसू थमें।

(लक्ष्मी शंकर वाजपेयी)

पीर, बावरची, भिश्ती, खर

● अवध नारायण मुद्‌गल

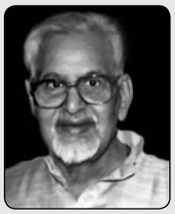

अपनी कविताओं और कथादृष्टि में मिथकीय प्रयोगों के लिए विशेष रूप से जाने जानेवाले संस्कृत साहित्य के मर्मज्ञ श्री अवध नारायण मुद्‌गल लगभग २७ वर्षों तक टाइम्स ऑफ इंडिया की 'सारिका' कथा-पत्रिका से निरंतर जुड़कर स्वतंत्र रूप से दस वर्षों तक उसके संपादन का दायित्व भी सँभाला। २८ फरवरी, १९३६ को आगरा जनपद के ऐमनपुरा गाँव में जन्म। साहित्य रत्न और मानव समाजशास्त्र में लखनऊ विश्वविद्यालय से एम.ए. किया और संस्कृत में शास्त्री। जनयुग, स्वतंत्र भारत, हिंदी समिति में कार्य करते हुए सन् १९६४ में टाइम्स ऑफ इंडिया (बंबई) से जुड़े। उनकी रचनाएँ हैं—'कबंध', 'मेरी कथा यात्रा' (कहानी-संकलन), 'अवध नारायण मुद्‌गल समग्र' (दो खंड), 'बंबई की डायरी' (डायरी), 'एक फर्लांग का सफरनामा' (यात्रा-वृत्तांत), 'इब्तदा फिर उसी कहानी की' (साक्षात्कार), 'मेरी प्रिय संपादित कहानियाँ' तथा 'खेल कथाएँ' (संपादन)। स्मृतिशेष : १५ अप्रैल, २०१५।

कुछ सूरतें हैं, जो मुझे पकड़े लिये जा रही हैं और मैं बिना विरोध किए उनके साथ चला जा रहा हूँ। मैं उनसे यह भी नहीं पूछ रहा—वे मुझे कहाँ लिये जा रही हैं? क्यों लिये जा रही हैं? वे सूरतें भी खामोश हैं। कभी लगता है, उनकी आँखों में हँसी की चमक दौड़ गई है, जैसे कह रही हों—'बच्चू, बहुत दिनों से तुम्हारी तलाश थी। आखिर चढ़ ही गए न दाँव पर!' मेरी त्योरियाँ बदल जाती हैं। मन में आता है, डाँट दूँ—'यह क्या बदतमीजी है?' लेकिन आवाज, लगता है कहीं खो गई है। पता नहीं घर में रह गई या ऑफिस में मेज की दराज में रखी भूल आया। फिर याद आता है—नहीं-नहीं, शाम तक तो थी, घर आकर मुन्ने को दी थी, और अपनी छोटी बहन शांता को तो इतनी दी थी कि बेचारी एक घंटे तक रोती रही थी। हाँ, अच्छी तरह याद आया, मुन्ना, मुन्नी और शांता को डाँटने के बाद अपनी पत्नी कुसुम का सामना हुआ था। कुसुम ने आँखों के लाल-लाल बेलन और झनझनाती डाँट का काला तसला फेंककर मेरे सिर पर मारा था और फुर्ती के साथ मेरी आवाज मुझसे छीन ली थी।

मैंने अपने चारों ओर देखा—कोई चीज पहचानी नहीं लगती। न यह सड़क वह सड़क है, जिस पर मैं रोज चलता हूँ, जो कारों, बसों, ट्रकों, रिक्शों, ताँगों और आदमी-औरतों से भरी रहती है। न ये इमारतें वे इमारतें हैं, जिन्हें मैं रोज देखता हूँ और न यह शहर वह शहर है, जिसमें मैं रहता हूँ, या हो सकता है यह शहर, इमारतें वही हों, मुझे ही ध्यान न आ रहा हो, क्योंकि मैंने इन्हें कभी ध्यान से देखा भी तो नहीं और ध्यान देने की जरूरत भी नहीं अनुभव हुई। रोज दफ्तर जाता हूँ, लौटता हूँ—सैकड़ों इमारतें बीच में मिलती हैं, पीछे छूट जाती हैं। इन सबको ध्यान से देखूँ-पहचानूँ, इतना समय ही कहाँ और फिर मतलब भी क्या है!

एक मोड़ पर कुछ रोशनी मिली—मैं ठिठका, मैंने उन सूरतों को ध्यान से देखा। एक क्षण लाभ—ये मेरी ही सूरतें हैं। फिर निश्चय हुआ—मेरी क्या, मेरी देखी, जानी-पहचानी हुई भी नहीं हैं। मन में यों ही एक शरारती प्रश्न उठा—'क्या मैं अपनी सूरत पहचानता हूँ?' जानते हुए भी कि यह मन की एक शरारत ही है, मैं सन्न रह गया। मुझे लगा, मैं वाकई अपनी सूरत नहीं पहचानता और आश्चर्य यह कि मैंने कभी किसी दूसरे को मि. कमलकांत (मेरा नाम) नहीं समझा। मैं रोज दिन में कम-से-कम एक बार, जब मैं ऑफिस जाने की तैयारी करता हूँ, तो बाल ठीक करने के लिए, टाई की नॉट ठीक करने के लिए या दाढ़ी बनाने के लिए अपनी सूरत शीशे में अवश्य देखता हूँ, लेकिन इसका अर्थ अपनी सूरत को पहचानने का प्रयास तो नहीं, पर उस समय मेरा ध्यान अपनी सूरत पर नहीं, सिर के बालों, टाई की नॉट या दाढ़ी के बालों पर (कहीं कोई फुल्ला उगा न रह जाए) रहता है। हाँ, मैं जब पान खाने किसी पनवाड़ी की दुकान पर रुकता हूँ, उसकी दुकान में सामने लगे शीशे पर मेरी नजर चली जाती है, लेकिन वहाँ भी मेरा ध्यान सूरत पर न होकर सिर के बाल और टाई की नॉट पर ही रहता है। फिर कैसे कह सकता हूँ कि मैं अपनी सूरत पहचानता हूँ? वैसे मैं पहचान भी कैसे सकता हूँ? दफ्तर में साहब के सामने मेरी और सूरत रहती है, अपने सबार्डीनेट क्लर्क्स के सामने दूसरी, घर के बच्चों के सामने तीसरी, बीवी के सामने चौथी और रास्ते में मेरी कोई सूरत ही नहीं रहती।

मुझे बड़े से हॉल में ले जाया गया। हॉल में काफी रोशनी थी। हॉल की छत से झाड़-फानूस लटक रहे थे। फर्श पर कीमती कालीन बिछे थे। बीच में मार्ग छोड़कर उस मार्ग के दोनों ओर चंदन की चौकियाँ पड़ी थीं। उन चौकियों पर भी कीमती कालीन बिछे थे। चौकियों पर मसनदों का सहारा लिये लोग बैठे थे। मैंने जैसे ही हॉल में प्रवेश किया, हॉल में बैठे प्रत्येक व्यक्ति की दृष्टि मेरी ओर उठ गई। सब आश्चर्य से मुझे देख रहे

थे, जैसे उनके बीच कोई जंगली भालू पकड़कर लाया गया हो। सब लोग छाती फुलाए, साँस साधे और मूँछों पर ताव दिए ऐसे बैठे थे, जैसे कोई फोटोग्राफर आएगा और उनकी तसवीर खींचेगा। वे किसी ओर देखते, मुसकराते या बगल की चौकी पर बैठे व्यक्ति से कुछ बहुत धीमे बोलते थे। उससे भी लगता था कि जैसे कोई पोज दे रहे हों। उनकी बगल में तलवारें रखी थीं।

हॉल में सामने एक ऊँचा-सा तख्त रखा था, उस पर सबसे कीमती कालीन बिछा था। उस कालीन पर सोने की एक कुरसी रखी थी। उस ऊँचे तख्त के दाईं ओर की लाइन में दो चौकियाँ छोड़कर एक चौकी खाली पड़ी थी। मुझे उस चौकी पर बिठा दिया गया। मेरी दाईं ओर बगल की चौकी पर बैठा व्यक्ति मुझे बड़े ध्यान से देख रहा था और अपनी घनी मूँछों में मुसकरा रहा था।

मैं सिर झुकाए बैठा था। मेरी समूची कल्पना-शक्ति एक ही बिंदु में सिमट आई थी कि सब आँखें मुझे देख रही हैं। उन आँखों की ज्योति एक अव्यक्त भय बनकर मुझमें समाती जा रही है और अब ज्योति के स्थान पर उन आँखों में असंख्य शून्य भरते जा रहे हैं—दैत्य के, दर्द के, भय के और आत्म-प्रवंचना के शून्य। वे शून्य मकड़ी के जालों की तरह मेरे चारों ओर पुर गए हैं। मैं उन जालों में छोटे से कीड़े की तरह फँस गया हूँ। मकड़ियाँ मुझे निगलने सरकती चली आ रही हैं। दूसरे क्षण मुझे लगा—जैसे मेरा कोई बहुत अपना मर गया है, जिसकी सूचना मुझे नहीं है, लेकिन ये सब उसके संबंध में जानते हैं और इस इंतजार में हैं, कोई दूसरा आकर अभी उस रहस्य का उद्‌घाटन करेगा या हम सब भयानक अपराधी हैं, अभी मेरी बगल में भी तलवार रखी जाएगी, जैसे इनकी बगल में रखी है और हम सबके पीछे एक-एक जल्लाद खड़ा हो जाएगा, कहीं से एक रूमाल हिलेगा और वे जल्लाद उन तलवारों से हम सबके सिर काट देंगे। मेरे पैरों पर लाल-लाल रंग की बड़ी-बड़ी हजारों चींटियाँ चढ़ने लगीं। लगा, पैरों में झनझनाहट हो रही है। वह झनझनाहट ऊपर बढ़ती जा रही है। अभी मेरा मस्तिष्क झनझनाकर शून्य पड़ जाएगा और तब मैं मर जाऊँगा या पागल होकर पता नहीं क्या बकने-झकने लगूँगा? मेरा मस्तिष्क फटने-सा लगा। मैंने अपनी पैंट की जेब से रूमाल निकालकर माथे का पसीना पोंछ लिया।

मेरे दाईं ओर बगल की चौकी पर बैठे व्यक्ति ने जब मुझे बाँह पकड़कर खड़ा किया। मेरा ध्यान वापस आया। मैं चौंक गया, शायद अब वह समय आ गया, जिसकी मैं प्रतीक्षा कर रहा था। सबसे पहले मैंने अपनी बगल में चौकी पर देखा—तलवार नहीं थी। पीछे गरदन घुमाई, जल्लाद भी नहीं थे। तभी मेरा ध्यान सामने और बगल के सब व्यक्तियों की ओर गया। सब खड़े थे, उनकी गरदन झुकी हुई थी, जैसे शोक में दो मिनट मौन धारण कर किसी मरनेवाले की आत्मा की शांति के लिए प्रार्थना कर रहे हों। चारों ओर घूमता हुआ मेरा ध्यान बड़े तख्त पर रखी सोने की कुरसी पर रुक गया। कुरसी पर बैठने की तैयारी में उसके पास बादशाही लिबास में एक व्यक्ति खड़ा था। मैंने उन सज्जन की ओर, जिन्होंने मुझे बाँह पकड़कर खड़ा किया था, कौतूहल की दृष्टि से देखा। उन्होंने थोड़ा सा मेरे पास सरककर कहा, "गरदन झुकाओ, ये शहंशाह अकबर हैं।" अकबर के बैठ जाने पर सब बैठ गए। मैं भी बैठ गया। मेरी आँखों के आगे इतिहास के पन्ने फड़फड़ाने लगे हैं। मुझे लगा—हजारों कबूतर हैं, जिनके पंख काट दिए गए हैं, फिर भी वे उड़े जा रहे हैं। मैं सोच रहा था, मुझे क्यों पकड़कर लाया गया है? तभी सुनाई दिया, अकबर मेरे बगल के व्यक्ति से कह रहे थे, "बीरबल, वह लाए?"

बीरबल ने अदब से खड़े होकर उत्तर दिया, "हाँ, आलमपनाह!" और मुझे फिर खड़ा कर दिया गया। बीरबल कहते गए, "हुजूर, यही वह व्यक्ति है। यह व्यक्ति पीर भी है, बावरची, भिश्ती और खर भी है।"

सब लोग मुझे आश्चर्य से देखने लगे। अकबर का ध्यान चारों ओर से सिमटकर मुझ पर ही जम गया। मैंने व्यक्ति के दोहरे व्यक्तित्व की बात सुनी थी, लेकिन अपने ही चार व्यक्तित्वों की बात सुनकर मुझे भी बहुत आश्चर्य हुआ। मुझे अनुभव होने लगा—मेरे और भी अनेक व्यक्तित्व हैं। वास्तव में मेरा कोई व्यक्तित्व नहीं है। हर आदमी के हजारों व्यक्तित्व हैं और वे सब जानवरों की दुनिया से आए हैं। वास्तव में किसी आदमी का कोई व्यक्तित्व नहीं।

कुछ क्षण मुझे ध्यान से देखने के बाद अकबर के मुँह से निकला, "कैसे?" बीरबल बताने लगे, लेकिन मेरे मस्तिष्क में यही गूँज रहा था, 'पीर भी है, बावरची, भिश्ती और खर भी है।'

मुझे लगा, पहले मेरी पूजा की जाएगी, फिर खाना बनवाया जा रहा है, मशक देकर पानी भरवाया जा रहा है और अंत में डंडे खाकर लादी ढोनी पड़ रही है।

बीरबल कहे जा रहे थे, "हुजूर, यह एक ऑफिस में हेड क्लर्क है। इसके नीचे काम करनेवाले सभी क्लर्क इससे डरते हैं; इसलिए इसका आदर भी करते हैं। उनके लिए यह पीर है।"

मुझे लगा, मैं वास्तव में पीर हूँ। मेरे सामने मेरा ऑफिस है। ऑफिस के गेट पर चहारदीवारी के अंदर दाईं ओर यूकेलिप्टस का पेड़ खड़ा है, जिसके सहारे बैठा ऑफिस का दरबान का काम करनेवाला चपरासी सुरती मलते-मलते सो गया था, मेरे पैरों की आहट पाकर जाग पड़ा है और बाएँ हाथ में सुरती थामे, दाएँ हाथ से आदाब ठोंकने के लिए उठ खड़ा हुआ है। मैं गरदन हिलाकर उसका आदाब स्वीकार कर रहा हूँ और मुझे लग रहा है—मैं मिस्टर कौशिक नहीं, यूकेलिप्टस का पेड़ हूँ। अपने बच्चों के लिए भी पीर हूँ। जब मैं घर पहुँचता हूँ, मुझे देखकर बच्चे जैसे काठ की तख्ती बनकर दीवारों पर टँग जाते हैं, जिन पर लिखा होता है—'कृपया शोर न मचाएँ''शोर मचाना मना है।' मुझे लगा, मेरे गले में बड़े-बड़े रुद्राक्ष की माला पड़ी है।'''लेकिन'''लेकिन इस तरह तो मेरी बीवी भी पीर है। जब मैं उसके सामने पहुँचता हूँ, लगता है, मुझे भी एक तख्ती बनाकर किसी दीवार के सहारे टाँग दिया गया है और मेरे ऊपर लिख दिया गया है—'नो पार्किंग हियर'''

बीरबल कहे जा रहे थे, "हुजूर, आजकल अफसर लोगों का स्वाद बदल गया है। वे मुर्ग-मुसल्लम की जगह रिश्वत खाना और खुशामद खाना अधिक पसंद करते हैं। आलीजाह, यह शख्स खुशामद के बहुत अच्छे पकवान बनाना जानता है और बना-बनाकर अफसरों को खिलाया करता है···" मुझे लगा, दहकता हुआ कोयला मेरे कानों में भर दिया गया है। मेरी आँखों और नाक में धुआँ भर दिया गया है—मुझे खाँसी आने लगी है। मैं सोच रहा हूँ, 'यह आदमी कितना झूठा और मूर्ख है? कैसे हाथ जोड़े बके जा रहा है। यह भी नहीं जानता—आजकल खुशामद करना ही सेवा-धर्म निभाना है। अगर मैं सेवा-धर्म न निभाऊँ तो मुझे सेवा में रखेगा ही कौन? हाँ, कभी-कभी मैं घर पर अवश्य खाना बनाता हूँ, लेकिन वह तो मेरे घर की बात है, उससे किसी को क्या? एक दिन बीवी नाराज हो गई थी। अपने हाथ से खाना बनाकर खिला दिया, तो खुश हो गई। अपनी बीवी को कौन खुश नहीं रखना चाहता? अगर रूठकर कहीं मैके चली जाती तो? कमबख्त मैका भी तो यहीं है।···इनके कहने से क्या होता है? मैं ही जानता हूँ, एक बार चली गई थी, पूरे एक महीने (तनख्वाह के दिन तक) आने का नाम ही नहीं लिया था। मुझे ही चूल्हा सुलगाना पड़ा था··· मुझे अनुभव हुआ—मेरे गले में पड़ी रुद्राक्ष की माला में सुमेरु के स्थान पर भारी सा चूल्हा लटका हुआ है।'

मुझे अपने चारों ओर कहकहे सुनाई पड़े। ध्यान भंग हुआ। देखा, पूरा हॉल मुझे देखकर हँस रहा है और बीरबल कहे जा रहे हैं, "आलमपनाह! यह अपने अफसर को चार गिलास पानी पिलाकर न जाने कितनी फाइलों पर पानी फेर देता है और अपना उल्लू सीधा करता है···" और मुझे दिखाई दे रहा था—मेरी इज्जत और शर्म नंगी खड़ी हो रही हैं। लोग उन्हें नंगा और रोता देखकर भी हँसते चले जाते हैं। मैंने अपनी एक बहन की शादी की थी। शांता की भी तो शादी करनी है। मुझे लगा—मेरी पीठ पर मुसीबतें बनकर सारी धरती घूम रही थी। वह अब बड़ी सी मशक के रूप में बँधकर स्थिर हो गई है। मेरी सुनने की शक्ति, सहन करने की शक्ति···सारी शक्तियाँ मेरा साथ छोड़े जा रही हैं, लेकिन बीरबल फिर भी कहे जा रहा है, "और जहाँपनाह! खैर, तो यह खानदानी है। हजारों तरह की चिंताओं, पीड़ाओं और हजारों फाइलों का बोझ लादकर यह दिन-रात भागता रहता है—यह सपने में भी फाइलें पलटता रहता है···" ···और मुझे याद आ रहा है, आज ऑफिस में मेरे साहब कह रहे थे, "आप गधे हैं···" और मैंने स्वीकार करते हुए कहा था, "जी, हुजूर!" मेरी बीवी तो अकसर कहती रहती है, "तुम्हारी अक्ल तो घास चरने चली जाती है···" और मैं खामोश खड़ा रहता हूँ···मुझे लगा—मैं गधे की तरह हाथ-पैरों के सहारे झुककर खड़ा हूँ। मेरे कान खिंचकर लंबे हो गए हैं। मेरे पीछे काम और गृहस्थी की एक पूँछ लटक रही है।

हँसी के कहकहे मेरे कानों में तैर रहे हैं। बीरबल की आवाज अब नहीं आ रही है। मैं आश्चर्य से देखने लगा हूँ। आश्चर्य बढ़ गया है। मुझे लग रहा है—मुझे हवा में उठाकर धरती पर पटक दिया गया है, लेकिन सारी धरती हवा बनकर उड़ गई है और मैं धरती के स्थान पर बने शून्य में त्रिशंकु की तरह लटका हूँ। मेरी आँखें फटी जा रही हैं, जैसे वे भी बाहर निकलकर हवा में उड़ जाएँगी। मैं आँखें मल-मलकर वस्तुस्थिति को समझने का प्रयास कर रहा हूँ, लेकिन कुछ भी समझ में नहीं आ रहा है। मैं सोच रहा हूँ—दरबार कहाँ गया? यह तो मेरा ऑफिस है। बीरबल के स्थान पर मेरे छोटे साहब बैठे हैं और अकबर के स्थान पर बड़े साहब। शेष सब मेरे सबॉर्डीनेट क्लर्क हैं।

मुझे कल्पना में अपना 'पीर, बावरची, भिश्ती, खर' वाला रूप दिखाई दे रहा था। शर्म से मेरी गरदन झुक गई और मुझे लगा—एक ऊँचे टीले पर यूकेलिप्टस का पेड़ खड़ा है और उस टीले के नीचे मुझे खड़ा कर दिया है।

मैंने साहस करके छोटे साहब की ओर ध्यान से देखा है। मैं उनकी सूरत पहचान नहीं पा रहा और फिर इससे पहले मैंने उन्हें ध्यान से देखने का साहस ही कब किया था, जो पहचान पाता! हाँ, लग रहा था—कोई (शायद मेरा साहब) तनकर बैठा है। उसकी गरदन किसी ने, संभवत: उसके ही मिथ्या अहं ने खींचकर छत से लगा दी है। वह अपनी विकृत महत्त्वाकांक्षाओं का चूल्हा अपनी गरदन में लटकाए है। कुंठाओं, मानसिक ग्रंथियों और अनेक विकृतियों की मशक उसकी पीठ पर लदी है। वह गधे की तरह समय के डंडे खा-खाकर दूसरों पर रोब की दुलत्ती झाड़ रहा है। ठहाका मारकर हँसने लगा।

मुझे लग रहा था—सैकड़ों गधे मेरे ठहाकों के साथ रेंकने लगे हैं। आकाश कुछ और ऊपर चला गया है, छतें कुछ और ऊँची हो गई हैं और हम सबकुछ और छोटे पड़ गए हैं। मुझे अनुभव हो रहा था—मस्तिष्क में साँप के कुछ बच्चे पैदा हो गए हैं, जो आपस में लड़ रहे हैं और मेरे मस्तिष्क के संपूर्ण कोषों को खाते जा रहे हैं। मेरी पीठ पर लदी मशक और भारी होती जा रही है। चूल्हा बढ़कर जमीन पर घिसटने लगा है।···

अब मैं एक चौराहे पर खड़ा हूँ। मेरे साथ वे सूरतें नहीं हैं, जो मुझे पकड़े जा रही थीं। मेरी अपनी सूरत भी नहीं···। मेरे सामने, दाएँ-बाएँ, चौड़ी-चौड़ी सड़कें हैं, जिन पर सैकड़ों आदमी भागते चले जा रहे हैं, लेकिन ये आदमी नहीं रहे, विचित्र जंतु बन गए हैं। सबके गलों में रुद्राक्ष की माला पड़ी है। माला के सुमेरु के स्थान पर भारी चूल्हा लटका है। पीठों पर मशकें लदी हैं और सब गधों की तरह कान खड़े करके हाथ और पैरों के बल भागते चले जा रहे हैं—भूल, बहकी और बंद दिशाओं की ओर···।

आज आदमी का व्यक्तित्व कितना बौना, विकृत, कुबड़ा और टूटकर कितने आकारों में विभक्त हो गया है, यह मुझे आज ही पता चला। आज मैंने अपनी सूरत देखी है—मेरी कोई सूरत नहीं। किसी की कोई सूरत नहीं। हममें से प्रत्येक की सूरत हजारों सूरतों का बेतुका-सा सम्मिश्रण मात्र है। अब मुझे लग रहा है, मैं इन सड़कों और इमारतों को पहचानता हूँ और महज इसलिए पहचान रहा हूँ, क्योंकि इनका एक निश्चित रूप है, लेकिन मैं सिर्फ आदमी को नहीं पहचानता, क्योंकि उसका कोई निश्चित रूप नहीं है। ये सड़कें और इमारतें अपने खंडित रूपों में आदमी में समा गई हैं और आदमी के रूप में मरे हुए पशु-पक्षियों के विकृत, सड़े और गुण-धर्मी रूपों को अपने में समेट लिया है। हजारों रूपों वाले एक रूप को कोई सही-सही पहचान भी कैसे सकता है!

बँटवारा

● सुनीता राजीव

बे हिसाब धक्का-मुक्की के बावजूद सोहनलाल ने अपने परिवार को काफी मशक्कत के बाद बोगी के अंदर ठूँस ही दिया। नंदू को चिल्लाकर आवाज लगाई—

'देख लो ध्यान से, सारे हैं न?'

'हाँ बाऊजी, आप भी चढ़ जाओ!'

सोहनलाल अपनी उम्र के बावजूद फुर्ती दिखाते हुए बोगी के डंडे से लटक लिये। ट्रेन छूटने को थी और बोगी में घुस पाना किसी युद्ध जीतने से कम न था। जीवन और मौत की बाजी थी। बच के निकल गए तो उनकी किस्मत, वरना कल से खबरें ऐसी आ रही थीं कि कलेजा ही सूख जाए।

'अंदर चलो तुस्सी, अंदर हो जाओ हौली-हौली।'

सोहनलाल उनके जैसे बाकी यात्रियों को कहने लगे। ट्रेन के अंदर लोग ऐसे ठँसे पड़े थे, जैसे ब्याम में नींबू। कोलाहल इतना था कि किसी की आवाज ढंग से सुनाई न पड़ती।

पता नहीं भागो और लड़कियाँ कहाँ हैं बोगी में? अकेला नंदू उन सबको ठीक से देख भी पा रहा होगा या नहीं!

सोहनलालजी ने सोचा।

'मास्टरजीईई, तुस्सी किथे हो?'

अंदर से घबराई हुई भगवंती की आवाज आई। सोहनलाल बहुत जोर लगाकर अपने को अंदर ठेलने में सफल हुए। चीख-पुकार मची थी, पर भर्राए गले से उन्होंने उत्तर दिया, "चढ़ गया हूँ भागो! फ़िक्र न कर!"

इसी ट्रेन से उन्हें उनके मुल्क पहुँचाना था, क्योंकि अब तो लाहौर अपना रहा ही नहीं। ये तो भला हो लाला नेकचंद का, जिन्होंने सोहनलाल के बड़े बेटे को अंदर की खबर लाकर दी थी।

'बलवा होने वाला है लाजपत, अपने टब्बर नू कढ लै, पता नईं कोई बचेगा की नईं।'

सोहनलाल ने लाजपत को पहले ही रवाना कर दिया था, 'जो ट्रेन मिले, उसमें निकल जाओ और कोई ठिया तो ढूँढ़ो, सारे हिंदुस्तान जा के रहेंगे कहाँ? कोई घर देखो जाके!'

लाजपत ने लाख कहा था कि बाऊजी, इकट्ठे चलेंगे, पर सोहनलाल ने एक न सुनी थी।

एक समर्पित शिक्षाविद्। अपनी यू-ट्यूब पर 'सुनो कहानी' श्रृंखला में देश की अमूल्य सांस्कृतिक, सामाजिक व आध्यात्मिक धरोहर को भावी पीढ़ी के लिए प्रस्तुत करती हैं। 'गीता राघवन अवार्ड' व 'रचनात्मक शिक्षक सम्मान' से सम्मानित। पर्यावरण संरक्षण, चाइल्ड प्रोटेक्शन व शिक्षक ट्रेनिंग के क्षेत्र में भी योगदान। दो साँझे संग्रह 'प्रीत के रंग' व 'आहट समय की' प्रकाशित।

'घर नहीं होगा तो सड़क पर बैठेंगे सारी कुड़ियों को लेके? तूँ निकल और घर ढूँढ़, अस्सी पिच्छे आवाँगे।'

सुख से पाँच बेटियाँ थीं और पाँचों सोणी पंजाबणे। लाजपत को सोहनलाल के फैसले सही नहीं लगते थे, पर प्यो को कौन बोले। घर का इंतजाम करते ही नेकचंद को संदेश भिजवा दिया था लाजपत ने कि पटना की ट्रेन में चढ़ के आना है। संदेसा मिलते ही सोहनलाल ने नंदू को स्टेशन दौड़ा दिया था कि ट्रेन का पता करे। इधर पूरी गृहस्थी को कुछ गठरियों में समेट, अपनी पूँजी को कुरते और कथड़ी की जेबों में सी के सोहनलाल भागवंती और बेटियों के साथ समय से स्टेशन पहुँच पाए थे। खबरें तो ऐसी आ रही थीं कि रूह सूख जाए। इधर दंगे, उधर फसाद। भड़काऊ नारे ऐसे कि लगे घर की दीवारें ही हिला देंगे। मशालों की रोशनी में खुदा के बंदे भी शैतान लगते।

नंदू···नंदू···चिल्लाते हुए सोहनलाल आगे बढ़े तो देखा, पहले ही कूपे में भागो संतोखी को पकड़ के खिड़की के पास बैठी है और सरु उनके घुटनों में सर देके रो रही है। गठरियाँ सीट के नीचे ठुँसी हुई हैं और तीनों जवान बेटियाँ एक-दूसरे का हाथ पकड़ सहमी सी पास में बैठी हैं।

'बाउजी किथे जा रये हाँ अस्सी?' सुबकती संतोखी ने पूछा। बड़ी बेटियों को तो सब बता दिया था, पर छोटी दोनों बेटियाँ सारी बातों से अनजान थीं। किसी ने समझाया भी नहीं था कि क्यों अपनी जगह को छोड़ना पड़ा। सात साल की उम्र का बच्चा क्या समझे। सरु तो और भी छोटी थी।

'दस्या सी ना! पटना जा रये हाँ अस्सी। सारे इकट्ठे रवांगे। तेरे भापाजी ने घर देख्या है ओथे।'

भागो भरे गले से बोली—'मास्टरजी, कुड़ियों को कैसे छुपाऊँ?

कल शोहदों ने खींच लीं जवान लड़कियाँ ट्रेन से, वीरेंदर ने बताया सी।'

सोहनलाल इसी बात से खुश थे कि सारा टब्बर एक साथ है। बड़ा शुक्र है मालिक का। वरना कितने परिवार तो बँटवारे में ही बिछड़ गए थे। उनके किस्से दिल दहला देने वाले थे। पच्चास की उम्र में अपनी जमीन से ऐसे पराया होना पड़ेगा, सोचा भी नहीं था। पुश्तैनी मकान, जमीन, सब से नाता आज खतम हो गया था।

'बाऊजी, चा पीनी है।'

जग्गू धीरे से कुनमुनाया। उसका इशारा चायवाले की तरफ था, लस्सी तो यहाँ मिलनी नहीं थी। चाय वाला डिब्बे की जमीन पर उकड़ूँ बैठा था, जेब में छोटे-छोटे कुल्हड़ लिये। न उसके पास चाय थी और आँखों की तरह अँगीठी भी बुझी हुई थी। ऐसी परेशानी की घड़ी में जग्गू की फरमाइश सोहनलाल को बहुत बुरी लगी। मास्टरी के अपने पच्चीस साल के जीवन में अच्छे-अच्छे उतों को सही कर दिया था, पर अपने ही बेटे को सुधार न पाए थे।

उसके उत्पात उन्हें किसी-न-किसी मुश्किल में डालते रहते। इसी से उसका हाथ थाम रखा था सोहन लाल ने। न जाने किधर निकल जाए।

'मास्टरजीईई···' भागो ने फिर कातर स्वर में उन्हें पुकारा। सोहनलाल की दशा उस कातर हिरन की तरह थी, जो जल्द ही शेर का शिकार बनने वाला हो। लड़किया इसी अपराध-बोध से मिटी जातीं कि वो पैदा ही क्यों हुईं। लड़का होतीं तो बाउजी को यों फिक्र न करनी पड़ती। बीजी के प्राण गले में न अटके होते।

'मास्टरजीईई···' धड़कते दिल से भागो ने फिर आवाज दी। एक बार में तो सुनते ही नहीं कभी और बार-बार कहो तो झाड़ देते हैं। भागो को भी डाँट खाने की आदत हो गई थी। उसके बार-बार आवाज लगाने से सोहनलाल और भी चिढ़ रहे थे।

इस बार तो जैसे उन्हें भूत ही चढ़ गया। चायवाले की ठंडी अँगीठी से मुट्ठी भर राख उठाई और किनारे बैठी शीला के मुँह पर मल दी, जो हक्की-बक्की रह गई। बाकी दोनों बेटियाँ बाउजी के इस रूप को देखकर और भी सहम गईं।

'ये क्या मास्टरजीईई!!' भागो और भी डर गई।

'अब कोई नई देखेगा तेरी सोनी कुड़ियों को! पई रहो इक दूसरे पर गठरी की तरह। भागो, चददर उढ़ा दे। नजर ही ना आन!'

साथ बैठे यात्री भी सोहनलाल के इस व्यवहार से हैरान थे, समय को और भाग्य को कोसते वे भी कुछ बड़बड़ाने लगे। लड़कियों के पास बैठी एक बेबे ने हुंकार भरी—'हाय-हाय-कुड़ियाँ ते रहम खा!'

ट्रेन अभी दस कदम भी न सरकी होगी कि फिर से रुक गई। किसी ने गाली निकाली, किसी ने जी भर के कोसा। राहत की साँस फिर अटक गई थी गले में। किसी ने चेन खींच दी थी शायद। तभी अचानक डिब्बे के बाहर खिड़कियों पर जोर-जोर से दस्तक पड़ने लगी।

'मास्टरजी हैं इस डिब्बे में? मास्टरजी?' कुछ मर्दानी आवाजें बाहर से जोर-जोर से सुनाई देने लगीं।

हथौड़े से हाथ खिड़कियों के शटर पीट रहे थे। सोहनलाल को जैसे लकवा मार गया। किसने खबर दी दंगाइयों को? किसने यह राज खोला कि मास्टर सोहनलाल अपने टब्बर के साथ निकल पड़ा इस ट्रेन में? भागो की आँखें भय से विस्फारित हो गईं और उन्होंने अपने कंधे की चादर फुर्ती से तीनों लड़कियों पर डाल दी।

'हिलना नई मरजानियों!' रुँधे गले से भागो ने लड़कियों को बोला, 'रब्बा! मेरियाँ कुड़ियाँ ते हत्थ न पाण!'

सरु और संतोखी को छाती से कस के चिपका लिया। नंदू सोहनलाल को पीछे कर के आप आगे खड़ा हो गया। जग्गू समझ नहीं पा रहा था कि सब लोग डर क्यों रहे हैं?

'मास्टरजी, आप इस डिब्बे में हो क्या? मैं नदीम। ओये कोई खिड़की खोलो। मास्टरजी हैं क्या?'

सोहनलाल ने धड़कते कलेजे से भागो को देखा, जो मौन अस्वीकृति में सिर हिला रही थी। उनके छात्रों में सबसे समर्पित छात्र नदीम और रविंदर ही थे। पर कभी उनका ऊँचा स्वर नहीं सुना था। उन्हीं की आवाजें थीं, सोहनलाल खिड़की की ओर झुके और भागो के विरोधी स्वर के बावजूद खिड़की का शटर थोड़ा-सा खोला।

'की होया नदीमया? रविंदर, की होया?'

'मास्टरजी! पैरी पैना मास्टरजी। तुस्सी जा रहे हो, साणु छड़ के? बिना मिले जा रहे हो? हमेशा याद राखांगे तवाणु।'

नदीम, रविंदर और दो-तीन और लड़के, मात्र चार इंच की खुली दरक में से छोटी-छोटी पोटलियाँ अंदर फेंक रहे थे।

'थोड़े काजू-पिस्ते हैं मास्टरजी, आपके लिए साणु याद रखना मास्टरजी। अल्लाह त्वानूं सलामत रखे। लड़कों से भर्राए गले से बोला भी न जा रहा था।

मास्टरजी की आँखें भीग गईं, वे जाने क्या-क्या सोच गए थे। डिब्बे के बाकी लोग लड़कों की शागिर्दी देख के हैरान थे, आपस में बातें भी कर रहे थे। ट्रेन फिर सरकने लगी।

'इसकी क्या लोड़ थी नदीमया!' सोहनलाल से और बोला न गया। भागो ने रब्ब का शुक्र किया कि उनकी बेटियों को कुछ नहीं कहा लड़कों ने। शीला ने वे छोटी-छोटी पोटलियाँ बटोरीं। जग्गू बड़ी हसरत से उन्हें देखने लगा, ट्रेन ने रफ्तार पकड़ ली थी। दूसरे डिब्बे में एक स्त्री स्वर बेबसी से रोता हुआ सुन पड़ा, 'रह गया साड्डा पिंड पिछे-किथे जावेंगे?'

सोहनलाल समझ नहीं पा रहे थे कि टुकड़े तो देश के हुए हैं, पर उनका दिल क्यों चाक-चाक हुए जा रहा है?

दूरभाष : ९६५०६७१६७१
इमेल- sunitarajiv1963@gmail.com

मन का विच्छेदन

● गोविंद गुंजन

एक दिन हाथ पर बँधी घड़ी बंद हो गई। घड़ीसाज के पास ले गया तो उसने पूरी घड़ी को खोल डाला। एक छोटी सी चिमटी की सहायता से उसने मुझे घड़ी के अलग-अलग पुर्जों में खराबी दिखाई। मैं चकित-सा उस खुली हुई घड़ी को देख रहा था। घड़ीसाज ने उसकी एक आँख की ऊपरी और निचली पलक के बीच एक छोटा सा गोल सूक्ष्मदर्शी यंत्र (मैग्नीफाइंग ग्लास) फँसा रखा था, जिसकी सहायता से वह छोटे-से-छोटे सूक्ष्म पुर्जे देख रहा था। कुछ देर देखने के बाद उसने चिमटी से एक टूटे हुए व्हील को छूकर कहा, "देखिए, इस घड़ी का बेलेंस ही खराब है, मुझे घड़ी के अंदर अनेक छोटे-छोटे चक्र नजर आए। घड़ीसाज ने फिर दूसरे पुर्जे पर ध्यान दिलाकर कहा, "लीजिए, यह व्हील भी गया काम से।" कुछ देर में घड़ीसाज ने घड़ी का बेलेंस या संतुलन चक्र ठीक कर दिया। घड़ी ठीक से चलने लगी।

खुली हुई घड़ी उस दिन मुझे बहुत अलग सी अनुभूतियाँ दे गई। कॉलेज के दिनों की याद आई, जब हम मोम बिछी हुई एक ट्रे में किसी मेढक की देह को आलपिनों से कसने के बाद उसे काटकर पूरी तरह से खोल डालते थे। इसी बंद घड़ी के पुर्जों की तरह उसके एक-एक अंग चिमटी से उठा-उठाकर देखते और दिखाते थे। जीव विज्ञान की प्रयोगशाला में मेढक के विच्छेदन की प्रथम अनुभूति को, रोमांच को और उस आतुर उत्सुकता को अब शब्दों में व्यक्त करना कठिन है।

घड़ीसाज घड़ी के बेकार हो गए पुर्जे चिमटी से उठा-उठाकर दिखा रहा था, तभी मुझे गाँव के उस बूढ़े मोची की याद आई, जिसने एक बार मेरे जूते के घिसे हुए तले को यों ही खोलकर कुछ ऐसी ही मुद्रा में कहा था, "भैया, अब इस पर पॉलिश करवाने से कोई फायदा नहीं है।" घड़ीसाज बंद घड़ी के एक-एक पुर्जे को उसकी आँख पर चढ़े 'सूक्ष्मदर्शी यंत्र से वैसे ही देख रहा था, जैसे हम प्रयोगशाला में मेढक के भीतरी अंगों से निकाली गई किसी स्लाइड को माइक्रोस्कोप से देखते थे।

माइक्रोस्कोप और मैग्नीफाइंग ग्लास बड़ी रहस्यात्मक वस्तुएँ हैं। माइक्रोस्कोप का अर्थ है, 'सूक्ष्म का दर्शन', जिस सूक्ष्म वस्तु को हमारी आँखें देखने में असमर्थ हैं, उसका जो दर्शन करा दे, उस यंत्र का नाम है—माइक्रोस्कोप। मुझे आज भी याद है, जब पहली बार स्कूल की प्रयोगशाला में इस महान् यंत्र को छूने का और उसकी आँख में झाँकने का मौका मिला था तो कितना रोमांच हुआ था। जब तक प्रयोगशाला में जाने को नहीं मिला था, तब तक उस किशोर वय की उत्सुकता और आतुरता से कितनी ही

सुपरिचित रचनाकार। साहित्य की विविध विधाओं में सृजन। वैचारिक एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से संपन्न ललित-निबंधों के लिए खास पहचान। प्रथम समांतर नवगीत अलंकरण, अखिल भारतीय अंबिकाप्रसाद दिव्य प्रतिष्ठा पुरस्कार, निर्मल पुरस्कार सहित कई पुरस्कारों से सम्मानित।

बार प्रयोगशाला की खिड़की से उसके भीतरी रहस्यलोक में तब मैं झाँक लेता था। फिर वह दिन भी आया, जब मैं स्कूल की उस प्रयोगशाला में अपने सहपाठियों के साथ भीतर गया। वह दिन किसी उत्सव से कम न था। माइक्रोस्कोप को छूना और उसके भीतर आँख गड़ाकर देखना कोई छोटा चमत्कार नहीं था। आखिर सूक्ष्म को देखने का अनुभव जो उसमें था।

माइक्रोस्कोप से तो वह मेरा प्रथम मिलन था और प्रथम मिलन की पुलक, उद्वेग और प्रफुल्लता से रोम-रोम हर्षित था, परंतु उसके पहले एक दूसरी तरह के मैग्नीफाइंग ग्लास से अवश्य मेरा परिचय था। मैग्नीफाइंग ग्लास छोटी-छोटी चीजों को बहुत बड़ी करके दिखाता था। हम एक छोटे से हेंडल वाले बिल्लोरी काँच को लेकर धूप की किरणें किसी कागज पर गिराते थे और कुछ देर में उस कागज से धुआँ निकलने लगता था। यह हमारे बचपन का प्रिय खेल था। उस बिल्लोरी काँच से जब हम अपनी स्कूल की किताब के पन्ने देखते तो उसके छोटे-छोटे अक्षर बड़े-बड़े हो जाते थे, तब बहुत अच्छा लगता था। बाद में युवा होने पर एक दूसरी तरह के मेग्नीफाइंग ग्लास का अनुभव भी हुआ। जीवन में प्रेम का आगमन हमारी आँखों पर मेग्नीफाइंग ग्लास या बिल्लोरी काँच की तरह होता है। जब प्रेम का बिल्लौरी काँच हमारी आँखों पर चढ़ जाता है, तब हमारे प्रेमपात्र के मामूली गुण भी हमें असाधारण लगने लगते हैं। हमारे प्रेमपात्र के सामान्य रूप-रंग में भी हमें विश्व का अनूठा और स्वर्गिक सौंदर्य दिखाई देने लगता है। इस सत्य को कभी-न-कभी हर कोई अनुभव करता ही है।

अब मुझे लगता है कि हमारे मन में ये दोनों ही वस्तुएँ सदा मौजूद रहती हैं। मन के माइक्रोस्कोप से भी हम किसी सूक्ष्म सत्य का दर्शन कर लेते हैं। माइक्रोस्कोप भी किसी मेग्नीफाइंग ग्लास का विकसित यंत्र ही है। सूक्ष्म सत्य का दर्शन हमारा मन इसी प्रक्रिया से कर पाता है, जिसे हम अपनी आँखों से सरलतापूर्वक नहीं देख सकते, उसका दर्शन इसी प्रक्रिया

से संभव होता है। दर्शन मन की विशिष्ट प्रक्रिया है। बोलचाल में जब हम किसी को देखकर कहते हैं, 'आपके दर्शन का हमें सौभाग्य मिला', तब हम दर्शन शब्द को आँखों की क्रिया बना देते हैं, परंतु दर्शन तो मन की प्रक्रिया है, जिससे उपनिषदों के गीतों में सृष्टि के रहस्य उजागर हुए हैं। यह हमारी भाषा का विशिष्ट शब्द है, इसका अनुवाद किसी भाषा में नहीं हो सकता। जिसे हम दर्शन कहते हैं, वह 'फिलासफी' से ज्यादा सूक्ष्म बात है।

हम देवता की प्रतिमा के सम्मुख खड़े होकर प्रतिमा को देखते हैं, पर हमें प्रतिमा नहीं, ईश्वर दिखाई देते हैं। हमारे सामने प्रतिमा है, पर उसे हम बाल गोपाल के रूप में देखते हैं। उसे माखन-मिसरी खिलाते हैं। उसका शृंगार करते हैं, वस्त्र पहनाते हैं, रेशमी गादी पर सुलाते हैं, उसे मुलायम मखमल का तकिया लगाते हैं, झूले में झुलाते हैं, स्नान कराते हैं, भोग लगाते हैं, लोरी गाकर सुलाते और प्रभाती मंगलगान गाते हुए सुबह-सुबह उसे जगाते हैं, क्योंकि हमें तब प्रतिमा नहीं दिखती, बालगोपाल दिखाई देते हैं। इस तरह प्रतिमा में छुपे हुए उस मनोहर बालगोपाल को देख लेने की मन की प्रक्रिया ही दर्शन है। इसीलिए ईश्वर को आज तक किसी ने भी नहीं देखा, परंतु उसका दर्शन असंख्य लोगों को हुआ है, होता है, और होता रहेगा। जब तक मन के पास यह अलौकिक दर्शन की प्रक्रिया सक्रिय है, तब तक यह होगा, होता रहेगा।

हम देवता की प्रतिमा के सम्मुख खड़े होकर प्रतिमा को देखते हैं, पर हमें प्रतिमा नहीं, ईश्वर दिखाई देते हैं। हमारे सामने प्रतिमा है, पर उसे हम बाल गोपाल के रूप में देखते हैं। उसे माखन-मिसरी खिलाते हैं। उसका शृंगार करते हैं, वस्त्र पहनाते हैं, रेशमी गादी पर सुलाते हैं, उसे मुलायम मखमल का तकिया लगाते हैं, झूले में झुलाते हैं, स्नान कराते हैं, भोग लगाते हैं, लोरी गाकर सुलाते और प्रभाती मंगलगान गाते हुए सुबह-सुबह उसे जगाते हैं, क्योंकि हमें तब प्रतिमा नहीं दिखती, बालगोपाल दिखाई देते हैं। इस तरह प्रतिमा में छुपे हुए उस मनोहर बालगोपाल को देख लेने की मन की प्रक्रिया ही दर्शन है।

कैसी चीज है यह मन! इसकी भीतरी बनावट कैसी होगी? काश! कभी मन का भी विच्छेदन भी किया जा सके। उसे भी घड़ी की तरह खोलकर देखा जा सके। उसके बिगड़े हुए पुर्जे ठीक किए जा सके, परंतु मन का विच्छेदन किस तरह किया जा सकता है? उसके विच्छेदन के लिए सबसे पहले तो उसे पकड़ना जरूरी है, पर मेढक की भाँति ढेर सारी उछलकूद करते रहने के बावजूद मन कोई मेढक नहीं, जिसे पकड़ा जा सके। वह कभी हाथ नहीं आता। तब क्या उपाय है? कैसे होगा उसका विच्छेदन? यही सोचते हुए मैं घड़ीसाज की दुकान से घर चला आया।

घर पहुँचकर मैंने अपने कमरे के दरवाजे बंद कर लिए, किसी तरह अपने मन को पकड़ा, जो हर बार पकड़े जाने की मामूली-सी कोशिश का भी आभास पाकर किसी मेढक की तरह एक गहरी झील में या किसी झाड़ी में छुप जाया करता था। मेढक तो सिर्फ जल या थल में ही छिप सकता है, पर इस मन के पास तो गति करने के लिए सारा आकाश, सारे समुंदर और सारी धरती है। उसे पकड़ना इतना आसान कहाँ? फिर भी उस दिन मैंने बड़ी सावधानी और होशियारी से उसे पकड़ा और फिर उसे बेहोश कर दिया, जैसे प्रयोगशाला में विच्छेदन से पहले मेढक को बेहोश किया जाता है। मन को पकड़ना जितना कठिन है, उससे ज्यादा कठिन है, उसे बेहोश करना, क्योंकि वह तो सोते हुए भी नहीं सोता, बेहोश मन होशवाले से ज्यादा सक्रिय होता है। होशवालों से ज्यादा उछलकूद मचाता है, लेकिन उस दिन ठान लिया था कि इस मन को खोलकर देखना ही है। अमीर इमाम का एक शेर याद आता है—

'वो काम रह के करना पड़ा शहर में हमें,
मजनूं को जिसके वास्ते वीराना चाहिए।'

अब यदि मन को खोलना ही हो तो मन को पकड़ने के बाद उसे बेहोश करके उसे अंदर से देखने और जानने के संकल्प से यह काम किया जा सकता है। जैसे प्रयोगशाला में मोम बिछी हुई ट्रे पर मेढक को आलपिनों से कस दिया जाता है, वैसे ही मन को वश में करके अच्छी तरह कसना भी जरूरी है, ताकि वह जरा भी हिल-डुल न सके। इतना करने के बाद अब ये जरा भी डाँवाँडोल न होगा। सोच लिया था कि आज मैं मन को उसी तरह खोल डालूँगा, जैसे वह घड़ीसाज बंद घड़ी को खोल डालता है। मैंने पूरी तैयारी कर ली और जरूरी औजार भी जुटा लिये।

अब पहला काम है मन को बेहोश करना। उसे पकड़ने के बाद यह दूसरी कठिन प्रक्रिया है। यह किसी प्राणी के बेहोश होने से सर्वथा भिन्न प्रक्रिया है। वास्तव में मन को बेहोश करने की बात करना भाषा की उलटबाँसी है, क्योंकि इसकी बेहोशी उसे पूर्ण रूप से होश में लाकर की ही की जा सकती है। इसलिए यह एक सम्यक् जागरण हो जाती है, जिसमें कोई उछलकूद नहीं होती। हमारा मन सामान्यत: कभी बेहोश नहीं होता। जब हम बेहोश होते हैं, तब भी यह मन सामान्य अर्थ में किंचित् होश में रहता है। मन को बेहोश करने का एक ही तरीका है, मन तक पहुँचने वाली विचारों की नस को काट देना, मन के प्रवाह में यदि विचार पहुँचना बंद हो जाए तो इसकी उछल-कूद बंद हो जाती है। विचार ही मन की प्राणवायु है, यही इसकी ऑक्सीजन है, मन के प्रवाह में जब विचार पहुँचना बंद हो जाता है, उसी अवस्था का नाम समाधि है। इस निर्विचार अवस्था में ही समाधि संभव होती है। यह मन की जाग्रत् एवं होशयुक्त बेहोशी होती है।

विचार मन में सुख-दु:ख, हर्ष-विषाद और शोक पैदा करते हैं। जब मन में विचार नहीं पहुँचता, तब सुख और दु:ख मन को नहीं छू पाते। आनंद वहाँ है, जहाँ सुख और दु:ख दोनों मिट गए हों। इसलिए मन से विचारों की नस को काटकर मन को अविचलित अवस्था में लाना होता है, तब व्यर्थ की हलचल और उसकी उछलकूद बंद हो जाती है। यह प्रक्रिया अत्यंत कठिन होती है, जैसे त्वचा पर से रोम पूरी तरह काट देने के बाद भी फिर से रोमांकुरों से फिर रोम के अंकुर निकल आते हैं, ठीक उसी तरह विचारों की नस काट देने तो भी कुछ समय बाद फिर विचारों यह नस पुन:

विकसित होने लगती है। फिर कुछ समय बाद विचारों का प्रवाह शुरू होने लगता है। यही समाधि का भंग होना है।

विचारों का उद्‌गम बंद किए बिना कैवल्य नहीं मिलता, स्थायी समाधि और स्थायी आनंद नहीं मिल पाता। मन की बनावट को जानने के लिए जैसे ही हम मन को विच्छेदित करते हैं तो सबसे पहले एक घनी काली और मजबूत झिल्ली दिखाई देती है। यह भीतर से पूरे मन पर छाई रहती है, इसे हम निराशा कहते हैं, इसके ठीक नीचे एक गुलाबी रंग की महीन-सी झिल्ली लगी हुई है, जिसे हम आशा कहते हैं, यह बहुत कोमल होती है। जहाँ-जहाँ यह टूटती है, वहाँ-वहाँ निराशा की काली झिल्ली इसमें घुसने लगती है। यह आशा और निराशा सदैव साथ-साथ ही प्रत्येक मन में सदा बनी रहती है। मन की भीतरी बनावट में आशा और निराशा की दो झिल्लियाँ ही विचारों की आधारभूमि हैं। यदि ये दोनों न बचें, तो मन में विचार टिक नहीं सकते।

इन दोनों झिल्लियों के बीच एक बहुत ही सूक्ष्म बात है, जो हम कभी कह नहीं पाते। जीवन भर हम बोलते रहते हैं, पर वह बात कभी नहीं कह पाते, जिसे व्यक्त करने के लिए हमने जन्म लिया है। वाचाल से वाचाल व्यक्ति के भी मन में झाँकिए तो वह यही कहेगा कि इतना अधिक बोल चुकने के बाद भी मैं वह बात नहीं कह सका, जो मुझे कहनी थी। सारी भाषाएँ अधूरी रह जाती हैं। कुछ है, जिसे शब्द पकड़ नहीं पाते। वाणी उसे व्यक्त नहीं कर सकती। यह बात अपनी अभिव्यक्ति के लिए हमसे सारे पुण्य कराती है। सारे पाप कराती है, हत्याएँ और आत्महत्याएँ करवाती है। गीत लिखवाती है, हँसाती है, रुलाती है, कभी हमारे होंठों से सीटियाँ बजवाती है, परंतु फिर भी अभियक्त नहीं होती। हर बार व्यक्त न हो पाने की नियति उसे किसी घायल नागिन सी छटपटाती है और उसकी इसी छटपटाहट को हम अपने मन की व्याकुलता या बेचैनी कहते हैं।

यह बेचैनी मन की गति के प्रवाह को अर्थ प्रदान करती है। इसका रुक जाना समाधि का पहला चरण है। समाधि का अर्थ है—व्याधि की समाप्ति, व्याधि का अभाव समाधि है, इसीलिए समाधि में चरम आनंद है—शोक, दु:ख, पीड़ा और निराशा ये व्याधि की चार संतानें हैं। जब शोक, दु:ख, पीड़ा और निराशा की मूल मिट जाती है, अर्थात् व्याधि की समाप्ति होती है, तभी समाधि संभव होती है। व्याधि का विकास विचारों से होता है। विचारों के रुकने पर उस समाधि का स्वर्ण द्वार खुलता है, जिसमें धीर-गंभीर प्रशांतता का अनुभव होता है, उसी प्रशांत और ठहरे हुए सिंधु के पारावार में आनंद के सुवासित बहुवर्णी फूल खिलते हैं, जैसे संसार में ठहरे हुए पुष्कर जल में कमल खिलते हैं। कमल की गोद में ब्रह्मा जन्म लेकर सृष्टि का निर्माण करते हैं, परंतु वह कमल नाल की अंतहीन आतंरिक यात्रा के बाद भी उस कमल का गोपन भेद नहीं जान पाते। वैसे ही मन जब समाधि के प्रशांत रत्नाकर में खिले उन अपूर्व सहस्त्र दल कमलों के बीच जाकर ठहर जाता है, तो सर्व क्लेशहारी आनंद जल की वर्षा में भीगने लगता है, वहाँ भाषाएँ मूक होकर अपने अर्थ खोलती हैं। उस अर्थ को सत्य के उजाले में पढ़ते हुए अँधेरे में पढ़े गए सत्य का अंतर और उनका भेद खुलता है।

वह बात जो अभिव्यक्त होना चाहती है, वह निरंतर नए-नए रूप धरकर हमारे सामने आती है। उसे हम पहचान नहीं पाते। उसे हम कुछ और समझ लेते हैं। हमने उसे भाषा के वाचाल अँधेरे में पढ़ा होता है, और अर्थ की जगह अनर्थ को मन में जगह मिलने लगती है। जब हम कुछ को कुछ और समझ लेते हैं, फिर वह नया रूप धरने लगती है। वह बहुरूपिणी मायावी शक्ति है, हमारी पकड़ में नहीं आती। इसलिए सबसे पहले मन से विचारों की नस को काट देना ही प्राथमिक रूप से आवश्यक होता है, उसके बाद निराशा की काली और मजबूत झिल्ली को मन से अच्छी तरह अलग करना पड़ता है। फिर थोड़ा सा निर्मम होकर आशा की वह सुंदर सुकोमल झिल्ली भी तोड़नी होती है। इस काम में बड़े धैर्य की आवश्यकता होती है। यदि विचारों की नस काटते हुए आशा और निराशा का एक परमाणु भी छूट जाए तो कुछ समय बाद ये पहले जैसे ही विकसित हो जाएँगी। ये अपने प्रत्येक परमाणु से विकसित होती हैं।

हमारे विचार ही वस्तुत: रक्तबीज हैं, जो अपने रक्त की प्रत्येक बूँद से जन्म लेते हैं और विकसित होते हैं। इन्हें महाकाली की जिह्वा पर अर्पित करना होता है, तभी विचारों से मुक्ति संभव है।

किसी घड़ी की तरह मन में भी अनेक चक्र होते हैं। इसमें विवेक का चक्र ही इस घड़ी का संतुलन चक्र या बेलेंस है। यदि यह खराब हो जाए तो इसे बदल देना जरूरी है, अन्यथा हमारे समय की घड़ी में हमेशा बारह ही बजे रहेंगे। जैसे घड़ीसाज ने मेरी घड़ी के बिगड़े हुए बेलेंस को या संतुलन चक्र को ठीक किया, वैसे ही मेरी घड़ी ठीक चलने लगी थी। वही प्रक्रिया मन का विच्छेदन करके मन के रहस्यों का उद्‌घाटन करके संभव है। जब मन का संतुलन चक्र ठीक होगा और उसकी आशा और निराशा की झिल्लियाँ समाप्त हो जाएँगी तथा उसमें विचारों का प्रवाह रुक जाएगा, तब वह अव्यक्त अपने संपूर्ण अर्थ में हमारे भीतर सत्य के निर्मल उजाले में प्रकट होगा। जिसे शब्द नहीं कह पाते, उसे हम भीतर देख लेते हैं। भीतर देखने की इसी विशिष्ट कला का नाम दर्शन है। ऐसा सुंदर शब्द संसार की किसी दूसरी भाषा के पास नहीं है।

वह दर्शन होते ही वह अव्यक्तता समाप्त हो जाती है। मन की छटपटाहट और व्याकुलता भी मिट जाती है। तब न खुशी रहती है, न दु:ख ही बचते हैं, तब न हत्याएँ होती हैं, न आत्महत्याएँ, तब आकांक्षा, उत्तेजना और अशांति समाप्त हो जाती है।

तब बाँस वनों से बहती हुई हवाओं का संगीत, पेड़ की पत्तियों का हवाई धुनों पर कोरस गान, नदी की धार और झरनों का वह नैसर्गिक गीत, सूर्योदय और सूर्यास्त में व्याप्त वह उजली सी शांति और एक मधुर सी मुसकराहट, ये सब हमारी निजी वस्तुएँ हो जाती हैं। तब हम वह भी नहीं कहना चाहते, जिसे कहने के लिए हम सारा जीवन बोलते रहे और कह भी नहीं पाए।

साअ

उत्तरायण-१८, सौमित्र नगर,
सुभाष स्कूल के पीछे, खंडवा-४५०००१ (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५३४२६६५

विनम्र श्रद्धांजलि

● **अश्विनीकुमार दुबे**

सुबह-सुबह जैसे ही फेसबुक पर नजर पड़ी कि दिनेशरंजन नहीं रहे, मन विचलित हो गया। हालाँकि यह एक-न-एक दिन होना ही था, परंतु इतनी जल्दी हो जाएगा, यह आशा नहीं थी। इस शहर में मुझे आए हुए तीन साल हो गए। जब आया था, तभी एक कर्यक्रम में दिनेशरंजन से मेरी मुलाकात हो गई थी। पहल उसने ही की। बहुत बेतकल्लुफी से उसने हाथ मिलाते हुए अपना परिचय दिया—"मैं दिनेशरंजन हूँ। प्रसिद्ध कवि, लेखक और संपादक।" इतना कहकर तपाक से उसने अपने झोले से अपनी पत्रिका 'विमर्श' का एक अंक निकाला और मेरे हाथों में थमाते हुए कहा, "इस पत्रिका का आपको ग्राहक बनना है। मैं इसका संपादक हूँ।" इतना कहकर फटाफट उसने अपने झोले में से रसीद बुक निकाली और ३६० रुपए की रसीद मेरे नाम काट दी। यह पत्रिका का वार्षिक शुल्क था। अभी मैं पत्रिका के पन्ने ठीक से पलट भी न पाया था कि संपादक महोदय ने वार्षिक शुल्क रसीद मुझे थमा दी। मन तो नहीं था, परंतु संकोचवश ३६० रुपए मैंने दिनेश के हाथ में रख दिए। हर गाँव और शहर से ऐसी दो-चार पत्रिकाएँ निकलती हैं, जो लेखकों के खर्च से चलती हैं। इनके संपादक एक-दो विज्ञापन भी हर अंक के लिए कहीं-न-कहीं से भिड़ा लेते हैं। इस प्रकार ये पत्रिकाएँ रुक-रुककर निकलती रहती हैं। स्थानीय लेखकों-कवियों में इन पत्रिकाओं की खासी चर्चा रहती है।

दिनेश ने मेरे हाथ में विमर्श की एक प्रति देते हुए उत्साहपूर्वक कहा था—"अब आप इसमें अपनी रचनाएँ भेज सकते हैं। दरअसल हम अपने सदस्यों की रचनाएँ छापते हैं। बाहर के लोगों की नहीं, कोई लेखक यदि बड़ा विज्ञापन दिलवा दे तो हम उसके ऊपर केंद्रित एक पूरा अंक भी निकाल देते हैं।"

पहली मुलाकात में मैं दिनेश से कुछ नहीं बोला। चुपचाप मैंने विमर्श की प्रति रख ली। पत्रिका साधारण थी, जिसमें स्थानीय कवियों की रचनाएँ। १-२ कहानियाँ, गोष्ठियों और सम्मेलनों के फोटो सहित विस्तृत समाचार और एक-दो किताबों की समीक्षाएँ भी प्रकाशित थीं। पत्रिका की पॉलिसी दिनेशजी ने पहली ही मुलाकात में स्पष्ट कर दी थी कि वे अपने वार्षिक ग्राहक और विज्ञापन दिलवाने वाले लेखकों की रचनाएँ और उन्हीं की पुस्तकों की समीक्षाएँ प्रकाशित करते हैं।

शहर में होने वाले हर साहित्यिक कार्यक्रम में वे उपस्थित रहते। वहीं उनसे मुलाकात हो जाती और वे विमर्श का नया अंक देना न भूलते और कहते—"आप अपनी कोई रचना भेजिए। मैं अवश्य छापूँगा।" जवाब में मैं मुसकरा देता। उनसे ज्यादा बातचीत न करता। वे बोलना शुरू करते तो रुकने का नाम ही नहीं लेते। उनके वक्तव्यों में स्थानीय लेखकों से लेकर राष्ट्रीय स्तर के लेखकों तक के कच्चे चिट्ठे उजागर होते। उनके पास सभी लेखकों के गोपनीय समाचार होते। वे बिना पूछे ही बताते—"फलाने लेखक का ढिकानी लेखिका के साथ चक्कर है। बड़े-बड़े लेखक पुरस्कारों के लिए जुगाड़ लगाते हैं। ढिकाने बड़ी पत्रिकाओं में इसलिए छपते हैं कि वे उनके संपादकों के साथ बैठकर दारू पीते हैं और अपने प्रांत में कई कार्यक्रमों में उन्हें बुलाए जाने का जुगाड़ बिठा देते हैं। फलानेजी बड़े आदमी हैं। वे अपने प्रभाव से बड़ी पत्रिकाओं को बड़े विज्ञापन दिलवाते हैं, इसलिए उनमें छपते रहते हैं।" इस प्रकार शहर के और शहर के बाहर वाले नामी लेखकों का कच्चा चिट्ठा उनके पास रहता।

सुपरिचित व्यंग्य-लेखक एवं उपन्यासकार। 'घूँघट के पट खोल', 'शहर बंद है', 'अटैची संस्कृति', 'अपने-अपने लोकतंत्र', 'फ्रेम से बड़ी तसवीर', 'कदंब का पेड़' (व्यंग्य-संग्रह), 'जाने-अनजाने दुःख' (उपन्यास)। उत्कृष्ट लेखन के लिए भारतेंदु पुरस्कार, अखिल भारतीय अंबिका प्रसाद दिव्य पुरस्कार प्राप्त।

किसी को भी कोई बड़ा पुरस्कार घोषित हो जाए तो दिनेशरंजन की प्रतिक्रिया अलग-अलग होती। वे बहुत दिनों से इस पुरस्कार के लिए प्रयास कर रहे थे। चलो, मेहनत काम आई। इसके लिए उन्होंने क्या-क्या पापड़ नहीं बेले। निर्णायक समिति के नाम उन्होंने पहले से ही पता कर लिए थे। फिर अलग-अलग उन्होंने सबको उपकृत किया, इसलिए यह पुरस्कार तो उन्हें मिलना ही था, मिल गया। फलाना पुरस्कार उनको इसलिए मिला, क्योंकि वे संगठन के आदमी हैं। संगठन वालों ने सोचा—चलो, इस बार इन्हें ही दो। बेचारे बीमार रहते हैं। पिछले साल ही तो उनकी बाईपास सर्जरी हुई है।

इस प्रकार दिनेशरंजन के पास सारे पुरस्कारों का नेपथ्य पुराण

होता है, जो वे बिना किसी भूमिका के लोगों को बताते रहते हैं। शहर के तो सारे लेखक उनकी नजरों में दोयम दर्जे के लेखक हैं। एकमात्र वे ही सबसे श्रेष्ठ लेखक और संपादक हैं। लेखन के नाम पर रंजनजी की कुछ कविताएँ उनकी पत्रिका में एवं मित्र पत्रिकओं में छपी हैं। बड़ा लेखक होने के उनके पास सर्वगुण हैं। वे बिना हिसाब दारू पीते हैं। कोई पिलाने वाला मिल जाए तो उल्टी हो जाने तक पीते रहते हैं। उन्हें कोई इसके लिए समझा नहीं सकता। वे राष्ट्रीय स्तर के दर्जनों लेखकों का उदाहरण देकर बताएँगे कि फलाँ-फलाँ जितना पीते हैं, उनके सामने तो मैं कुछ भी नहीं हूँ। हालाँकि लेखक मैं उनके ही स्तर का हूँ, परंतु दारू उनकी तुलना में कम ही पीता हूँ। कितने लेखकों ने स्वयं स्वीकार किया है कि वे खाना खाए बगैर रह सकते हैं, परंतु दारू पिए बिना नहीं रह सकते। दारू पीने के पक्ष में उनके पास सैकडों तर्क हैं। बड़े-बड़े लेखकों के उदाहरण तो हैं ही। उनके अनुसार शराब पीना बड़ा लेखक होने की पहली शर्त है। इसको अपनाकर ही कोई बड़ा लेखक बन सकता है। इस प्रकार दिनेशरंजनजी अपने आपको बहुत बड़ा लेखक सिद्ध करते हैं।

दिनेशरंजनजी एक क्रांतिकारी लेखक रहे। सबसे पहले उन्होंने अपनी पत्नी को छोड़कर क्रांतिकारी कदम उठाया। दो बच्चे हैं, वे भी रंजनजी से अलग रहते हैं। वे एक अखबार में नौकरी करते थे। स्वतंत्र विचारों वाले आदमी, उन्हें नौकरी रास नहीं आई। जब नौकरी में नए-नए आए थे, तभी शादी हो गई थी। बहुत जल्दी वे दो बच्चों के पिता बन गए। अब जबकि उनको नौकरी की बहुत जरूरत थी, उन्होंने नौकरी को लात मार दी। क्रांतिकारी लेखक जो ठहरे। फिर उन्होंने पत्रिका निकाली। सोचते थे, पत्रिका निकालकर साहित्य की दुनिया में क्रांति कर देंगे। आजकल पत्रिका निकालकर कोई अपना खर्च नहीं चला सकता, परिवार को भला कैसे पालेगा। कुछ दिनों बाद ही उनकी पत्नी इसी शहर में अपने बच्चों को लेकर अपने माता-पिता के साथ रहने चली गई। पत्नी के माता-पिता ने दिनेशरंजन को अपनी जिम्मेदारियों का अहसास दिलाया और कहीं अन्य नौकरी करने की सलाह दी ।

दिनेशरंजन के ऊपर उनकी बातों का कोई असर नहीं हुआ। उन्हें अपनी रचनाओं से समाज को बदलना था, खुद को नहीं। वे एक बड़े उद्देश्य के लिए जी रहे थे। बड़े कामों में छोटी-मोटी बाधाएँ आती रहती हैं। इनसे डरकर क्रांतिकारी अपना रास्ता नहीं बदलते। उसने अपने ससुरजी से स्पष्ट कह दिया कि वह एक मुहिम पर हैं। पत्नी और बच्चे पालने जैसे साधारण कामों के लिए उसका जन्म नहीं हुआ। कृपया आप मुझे मत समझाइए, मैं अपनी जिंदगी का स्वयं मालिक हूँ। मुझे क्या करना है, यह मुझे अच्छी तरह मालूम है। इस प्रकार पत्नी और बच्चों के वापस उसके पास लौटने की संभावना खत्म हो गई।

वह कविताएँ लिख रहा था, कुछ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित भी हुई थीं। अब वह पूरी तरह फक्कड़ आदमी था। पत्रिका निकालता था। कविताएँ लिखता था और गांधी झोला लटकाए पूरे शहर में साइकिल पर घूमता रहता था। कभी-कभार पत्रिका के लिए एक-दो विज्ञापन मिल जाते, कुछ ग्राहकों का वार्षिक शुल्क आ जाता। उसकी पत्रिका और उसका जीवन किसी तरह चल रहा था। शहर में आए दिन साहित्यिक जलसे होते रहते, जिनमें प्राय: रात्रिभोज की भी व्यवस्था होती, दिनेश के लिए यह सुकून की बात थी। शहर में गरीब रसोई नाम से कुछ मारवाड़ी सेठों ने गरीबों को मुफ्त भोजन प्रदाय करने की योजना चला रखी थी, जहाँ अकसर रमेश की उपस्थिति देखी जाती। खाने का तो किसी प्रकार इंतजाम हो जाता था, रात को पीने की व्यवस्था उसे जरूर करनी होती थी।

साहित्यकार मित्रों में पीने-पिलाने वाले लोग दिनेशरंजन का पूरा खयाल रखते थे। ऐसी हर महफिल में दिनेश को देखा जा सकता था। पीने के बाद तो रमेश से किसी को भी गाली दिला लो। एक-दो पैग चढ़ाकर ही वह नामी साहित्यकारों का पानी उतारने लगता था। कोई नामी कैसे हुआ ? इसकी पूरी रामकहानी दिनेश की जुबानी सुन लो। स्थानीय वरिष्ठों के तो मुँह पर वह उनके हरामीपन के किस्से उगलने लगता था। कौन किस संपादक की चमचागीरी कर रहा है, किसने किस संस्था के अध्यक्ष को अपने घर डिनर पर बुलाया। किसने किसके द्वारा पुरस्कार समिति के सदस्यों को उपहार भिजवाए, ऐसे जाने कितने किस्से विस्तार से दिनेशरंजन के मुँह से प्राय: झरते रहते थे। शहर के वरिष्ठ साहित्यकार उससे बचते रहते। अब किसी-न-किसी कार्यक्रम में कोई-न-कोई सामने पड़ ही जाता। फिर बिना किसी भूमिका के उसकी मिट्टी पलीद करने में दिनेश पीछे न रहता। आखिर कोई उसका क्या बिगाड़ लेगा। वह तो स्वयं अपना बिगाड़ने पर उतारू था।

कुछ युवा लेखकों की मंडली उसके इर्द-गिर्द मँडराती रहती थी। वह एक पत्रिका 'विमर्श' नियमित निकाल रहा था, जिसमें नए लेखकों को छपना था। वे सब 'विमर्श' के वार्षिक ग्राहक थे। सदस्यों के अलावा तो किसी और की रचनाएँ विमर्श में छपती ही न थीं। दरअसल आजकल साहित्यिक पत्रिकाएँ ऐसे ही निकल रही हैं। जैसे कोई लेखक मानो चुक गया है, परंतु उसे साहित्य के केंद्र में रहना है तो क्या करे ? फटाफट एक पत्रिका निकालना शुरू कर दे। फिर कई लेखक और लेखिकाएँ आसपास चक्कर लगाने लगते हैं। संपादक की तारीफ में कसीदे पढ़े जाते हैं। जो अँधेरों में खो गया था, सहसा वह महत्त्वपूर्ण हो जाता है। गोष्ठी, सम्मलेन और सेमिनार में वह शोभा की वस्तु हो जाता है। यह संपादक होने का सुख है। वे दिन लद गए, जब विपन्नता में रहते हुए लोग हिंदी की सेवा करने के लिए कोई पत्रिका निकाला करते थे।

अपनी मित्र मंडली में बैठकर दिनेशरंजन यही हाँका करते, आज फलाने बड़े लेखक से बातचीत हुए। ढिकानी लेखिका से तो घंटों फोन पर बातें होती रहीं। इस प्रकार वे यह बताने में कभी न चूकते कि अखिल भारतीय स्तर के सारे लेखक और लेखिकाएँ उन्हें अच्छी तरह जानते हैं। आए दिन फोन पर उनसे इनकी देर तक बातचीत होती रहती है। कई वरिष्ठ लेखक तो अपनी व्यक्तिगत समस्या इन्हें बताकर इनसे सुझाव

माँगा करते हैं, इस प्रकार देश के हर बड़े लेखक को वे व्यक्तिगत रूप से जानते हैं।

पिछले दिनों उन्होंने अपना एक कविता संकलन अपने ही प्रकाशन जहाँ से विमर्श छपता है, से प्रकाशित करवाया। उनके अनुसार उनका यह कविता संकलन समकालीन कविता के क्षेत्र में एक मील का पत्थर है, इससे कविता के इतिहास में एक नया मोड़ आता है। जल्द ही इस कृति पर साहित्य अकादमी का पुरस्कार घोषित होने वाला है, जिसे मैं अस्वीकार कर दूँगा। मैं सत्ता प्रतिष्ठानों का कोई पुरस्कार नहीं ले सकता। उन्होंने अपना वह कविता संकलन मुझे भेंट किया था। मैंने वे कविताएँ ध्यान से पढ़ीं, मझे कुछ समझ में नहीं आया। निश्चय ही मेरी समझ बहुत कमजोर है। वैसे दिनेशरंजनजी का व्यक्तित्व और कृतित्व भी मेरी समझ में कभी नहीं आया।

हाँ, मेरी सहानुभूति उनके साथ जरूर रही। मैं चाहता था कि वे कहीं नौकरी कर लें। एक अखबार से निकाले गए थे, दूसरे अखबार में आ सकते थे, नहीं गए। अपनी पसंद का वे कोई दूसरा काम भी कर सकते थे। उनके ससुरजी का कहना था कि वे किसी कार्य की योजना बनाएँ, मैं उसमें पूँजी लगाने को तैयार हूँ। उन्हें कोई काम न करना था, उन्होंने नहीं किया और जमाने भर को गाली देते फिरे। शराब की आदत छूट जाती तो शायद कुछ काम कर लेते। वह नहीं छूट सकती थी, क्योंकि उनके अनुसार सभी बड़े-बड़े साहित्यकार पीते हैं, वे बड़े लेखक हैं अखिल भारतीय स्तर के। शराब छोड़कर वे अपना स्तर नहीं गिरा सकते। फक्कड़ स्वभाव साहित्य में प्रतिष्ठित है। इसलिए मैं भी फक्कड़ हूँ।

डॉक्टरों ने बताया कि लीवर में कैंसर हो गया था उनके। उन्होंने कभी किसी को नहीं बताया। पीना अंत तक उनसे नहीं छूटा। उनकी किसी से पटी नहीं। शहर में कोई उनका आत्मीय दोस्त नहीं था। हर किसी के सामने वे अपनी श्रेष्ठता सिद्ध करते रहते थे। शांत होकर गंभीरतापूर्वक उन्होंने कभी कुछ नहीं लिखा और अपने आपको सर्वश्रेष्ठ साहित्यकार मानते रहे।

आज फेसबुक पर उनके दिवंगत होने की खबर देखी फोटो सहित। दिवंगत आत्मा को विनम्र श्रद्धांजलि।

३७६-बी, सेक्टर आर,
महालक्ष्मी नगर,
इंदौर-४५२०१० (म.प्र.)
दूरभाष : ९४२५१६७००३

ताँका

वक्त-बेवक्त

• **भीकम सिंह**

दबा कुचला
प्यार महक उठा
गूँजा तराना
जब भी कभी खुला
बक्सा कोई पुराना।

प्यार में कुछ
टूट के गिरे लम्हे
कुछ ढूह-से
टिके रहे अधूरे
टीस से भरे-पूरे।

प्यार से कभी
मन नहीं भरता
अधूरापन
अंतर्लाप करता
ज्यों तहों में उठता।

हुई हैरान
दीयों का धुवाँ देख,
सहम गई
शलभ के प्रेम की,
महत्त्वाकांक्षा कई।

तुम्हें प्रेम में
भटकने के लिए
छोड़ा डर से
देखो, गुजर गया
अब पानी सर से।

एक-दूजे को
पाने-खोने के दिन
दोनों ओर हैं
रिश्तों को बाँधे हुए
बस एक डोर है।

आँखों का प्रेम
ज्यों पानी-पानी हुआ
पोंछ के नमी
प्रेम-प्रसंग मुआ
फिर सामान्य हुआ।

वक्त-बेवक्त
बैठती सटकर
जाती अकसर
मोड़ काटती हुई,
प्यार में नदी कई।

तुम नजरें
जब भी फेर लेती,
उड़ते तोते
पंख समेट लेते,
बड़ी निराशा होती।

बिखर गए
प्रेम की बारिश में
बसंती दिन
कटने लगी रातें
तारों को गिन-गिन॥

मिहिर भोज कॉलेज, दादरी
गौतमबुद्ध नगर-२०३२०७
(उ.प्र.)

इन दिनों हवाएँ

• बी.एल. आच्छा

हवाएँ तो हवाएँ हैं
क्या तो इन दिनों और क्या उन दिनों।
मगर हवाएँ जी.पी.एस. से नहीं चलतीं
वे फैलती भी हैं
और फैलाई भी जाती हैं।
हवाएँ बनाई भी जाती हैं
हवाएँ निकाल भी दी जाती हैं।
पंचर ठीक करने वाला
हवाएँ भर देता है ट्यूब में
मगर यू-ट्यूबें हवा निकाल देती हैं
साबुत ट्यूबों की।
अभिव्यक्ति के लोकतंत्र
पहियों में भरी हवाओं से नहीं चलते
हवाएँ तो बनानी पड़ती हैं
हवाएँ निकालनी भी पड़ती हैं।
यह मेकैनिकल मामला नहीं है
हवाएँ अपना रुख तय नहीं करतीं
हवाओं के दिनमान और दिशामान
'खेला' के मत्स्यवेध की तरह
केवल मछली की आँख को साधते हैं।
बँधे हुए लोग
हवाओं में बाँधने की कोशिश करते हैं
पर अनसधी गोटीवाले
अपनों की ही हवा निकाल देते हैं।
ऐसे में बवंडर मचा देती हैं हवाएँ
मचान तक उखड़ जाते हैं
बात-बात में शोर और रेलमपेल से
फड़फड़ातीं हवाएँ
कभी सनन बहतीं,
कभी तंबू उखाड़तीं
हवाओं के नाट्य मंचन
कभी हवाओं के जंतर-मंतर
आंदोलन में गरमाती हैं।
हवाओं का तूफानी रोमांस
कभी नहीं कहता—
'हवा तुम धीरे बहो,
आते होंगे चितचोर।'
वे तो तनी मुट्ठियों के शोर होते हैं।
कुछ कहते हैं—
हवा के साथ बहो
तो कुछ के तंबू उखड़ जाते हैं
कुछ को हवा लग जाती है,
कुछ के पाल उड़ जाते हैं।
कुछ मसाले उड़ा देते हैं हवाओं में
कुछ आँखें मलते रह जाते हैं।
कभी-कभी हवाबाजी करते कुछ
टिकते हैं बल्लियों-बाँसों से
हवाएँ जब लंबी खिंच जाती हैं थककर
वे भी हवाहवाई हो जाते हैं।
मौसम होता है हवाओं का
पर इन हवाओं की
न मौसमोग्राफी होती है
न ओशनोग्राफी
वे भीड़ की डेमोग्राफी में
अपने झंडे ताने
रंगों से रंगों की खिलाफत करते
चमकीले नारों की पट्टी में

शब्दों की तीखी धारों में
कभी सिंहासन बत्तीसी संग
कभी विरोध की छत्तीसी में।
ये हवाएँ आकाश से
धरती पर नहीं आतीं
ये बहाई जाती हैं धरती से
धरती की उपरीली परतों पर।
हवाएँ धूम मचाती हैं
खबरों में छपकर
कभी टीवियों में फड़फड़ाती
कभी टीआरपी में बहसाती
माथे पर आकाश लिये।
ये हवाएँ न तो ऊपरवाले का
महापंखा हैं, न वातानुकूल
ये हवाएँ चलती ही हैं
जमाने और उखाड़ने के
दाँव-पेंचों से।
पर हवाएँ तो हवाएँ हैं
अपने-अपने लोकतंत्र में
कभी तूफानी
कभी घुप्प उमस में ठहरी-सी।

सुपरिचित लेखक-समालोचक। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उपन्यास, सर्जनात्मक भाषा और आलोचना, 'जल टूटता हुआ की पहचान', 'आस्था के बैंगन', 'पिताजी का डैडी संस्करण' व्यंग्य प्रकाशित। देवराज उपाध्याय आलोचना पुरस्कार, पं. नंददुलारे वाजपेयी आलोचना पुरस्कार, समीक्षा सम्मान, भाषा भूषण सम्मान इत्यादि प्राप्त।

फ्लैट नं. ७०१, टावर-२७
स्टीफेंशन रोड (बिन्नी मिल्स)
पेरंबूर, चेन्नई-६०००१२ (तमिलनाडु)
दूरभाष : ९४२५०८३३३५

जन-जन की आस्था के केंद्र : श्रीराम

● धीरेंद्रप्रसाद सिंह

कवि एक विकसित चेतना का निर्माण करता है। उसकी अनुभूतियाँ लोकजीवन को समेटकर चलती हैं। वह सार-तत्त्वों को ग्रहण कर मूल्यों की खोज करता है। तुलसीदास ने समस्त अगम-निगम, पुराण, उपनिषद् आदि ग्रंथों का निचोड़ निकालकर परंपरागत सार-तत्त्वों को आत्मसात् किया है। उनका यही ऐतिहासिक यथार्थ है, जो भारतीय मनीषियों का चिंतन-अनुभव लेकर प्रकट हुआ। अत: तुलसीदास ने लोकमंगल का आदर्श लेकर रामकथा (रामचरितमानस) लिखी। रामायण में राम के अलौकिक गुण और शाश्वत जीवन-मूल्यों की प्रतिष्ठित कर उन्होंने जनजीव-जगत् को एक ऐसा वैशिष्ट्य सौंपा, जो भारतीय संस्कृति का महान् आदर्श बन गया। राम का चरित्र एक ऐसा ही देदीप्यमान चरित्र है। उनका अवतरण लोकधर्म की स्थापना के लिए होता है। वे कहते हैं—'विप्र धेनुसुर सन्त हित लीन्ह मनुज अवतार।' इसी बातचीत की पुष्टि साकेतकार ने भी की है—

संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग का लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

राम न तो भावुकताजन्य कोरा प्रतिमान हैं और बुद्धिस्ट ऊतक अनास्थापरक आक्रोश, बल्कि ऐसा लगता है कि वह ऐतिहासिक और सामाजिक के मध्य एक सेतु निर्मित करने के लिए मानवीय आदर्श हैं। राम जन-मन में अगाध आस्था के महाकेंद्र हैं। वाल्मीकि से तुलसी तक या साकेत (मैथिलीशरण गुप्त) से युगांक (डॉ. राहुल) तक जितने भी रामकाव्य रचे गए हैं, उन सब में राम की 'विनाशाय न दुष्कृताम्' चरित्र चित्रित किया गया है। यह सच हैं कि राम हमारी आस्था के महाकेंद्र हैं, लेकिन यह भी सोलह आने सच है कि राम जन-जन के मन में, अंतस में सदियों से बसे हुए हैं। रचना के आधार पर कहें तो वाल्मीकि के राम 'महामानव' हैं, तुलसी के आराध्य नर होते हुए भी 'नारायण' हैं। साकेतकार ने 'पुरुषोत्तम' रूप में प्रबल प्रतिष्ठा की है तो युगांक (महाकाव्य) के राम 'एक आदर्श पुरुष' हैं। किंतु हर स्थिति में राम में ईश्वरत्व गुण-वैशिष्ट्य विद्यमान है, तभी तो कहा गया है—

हिंदी-अंग्रेजी में कविता, कहानी, दर्शन, संस्कृति, इतिहास का प्रभावी लेखन करनेवाले धीरेंद्र प्रसाद सिंह भावुकता से उत्पन्न आँसुओं की बूँद आँखों से नहीं निकल, रक्त में विलीन होता रहा, जिसकी अभिव्यक्ति इनकी रचनाओं में हुई है।

राम नाम मणि दीप धरु जीत देहरी द्वार।
तुलसी भीतर-बाहरिहुं जो चाहसि उजियार॥
तुलसी 'रा' के कहत ही निरस्त सकल विकार।
पुनि आदत पावत नहीं देत 'म' कार किवार॥
ब्रह्म राममय नाम बड़ वरदायक वरदानि।
रामचरित सत कोटि मँह लिय महेश जिय जानि॥
राम नाम कलि कास्त्रो सकल सुमंगल कंद।
सुमिरन करतल सिद्धि सब पग पग परमानंद॥
श्वास श्वास पर राम भज बोथा श्वास मत खोय।
ना जाने यह श्वास को आवन होय न होय॥

और राम-नाम महिमा के प्रसंग यह भी कि

राम-नाम सुंदर करतारी।
संशय बिहग उड़ावन हारी॥

तुलसी ने युग की नब्ज को परखा था। मुगलकाल के भीषण अत्याचारपूर्ण स्थिति में सांस्कृतिक ह्रास को समझा था, किंतु वे सामयिक संदर्भों तक (ही) बँधकर नहीं रहे। उनके सामने भविष्य का अनंत खुला मंच था, जिस आने वाली पीढ़ियों के लिए सुरक्षित-संरक्षित भी करना था। तभी तो कहा—

राम नाम सनेह करु त्याग सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार॥

काशी के कर्मवीर राजाराम लाल भी रामनाम की इसी महत्ता के उपासक थे। रामनाम उनके जीवन, संकट से मुक्ति का आधार था। प्रविस नगर कीजै सब काजा। हृदय राखिए कौशलपुर राजा। राम हिमगिरि के

समान धीर, समुद्र के तुल्य गंभीर और धरती के समान क्षमाशील हैं। अधिशेष की चर्चा या वनवास की सूचना पाकर भी वे तनिक विचलित नहीं होते, बल्कि पिता की आज्ञा मानकर वनवास को सहर्ष स्वीकार कर लेते हैं। और फिर बनवास की तमाम यातनाओं/यंत्रणाओं को झेलते हुए चौदह वर्ष की अवधि व्यतीत कर आततायी अनेक भीषण-बलशाली राक्षसों का अंत करते, शोषित-पीड़ितों का उद्धार करते अंतत: लंकापति रावण का अंत कर अयोध्या वापस लौटते हैं।

राम का कार्यक्षेत्र व्यापक है। उनके चरित्र के बहुव्यापी विस्तार में उनके अद्वितीय कार्यक्षेत्र का ही हाथ है। माता-पिता, पत्नी, भाई, गुरु, मंत्री, मित्र, शत्रु तथा प्रजा सभी उनके आचरण से प्रभावित हैं। सभी की दृष्टि में राजा दशरथ कैकेयी के हाथ की कठपुतली हैं, किंतु राम उन्हें परमाराध्य घोषित करते हुए उनकी आज्ञा का अनुपालन करते हैं। यद्यपि कौशल्या राम के वन-प्रवास की कल्पना से काँप उठती हैं, लेकिन राम अपने दृढ़संकल्प से उन्हें मनोनीत कर लेते हैं। अनुज लक्ष्मण का साथ होना उनके लिए दैवीय विधान था, क्योंकि रावण-कुल में मेघनाद एक ऐसा बलशाली, शिवभक्त और वरप्राप्त योद्धा था, जिसे वही मार सकता था, जिसका अपनी पत्नी-संग संसर्ग न हुआ हो। शेषावतार लक्ष्मण ही एकमात्र ऐसे प्रखर योद्धा थे। वरना लंका-विजय, सीताजी वापसी और राम की संकल्पना अधूरी रह जाती। ये कथाएँ ही हमें जीवन में सत्य धारण और सदाचारण की शिक्षा देती हैं, न्याय का बोध कराती हैं।

राम के चरित्र में उदारता की पराकाष्ठा है। तभी तो आपसी संबंधों के मध्य अविश्वास का पुच्छल गिराने वाली कैकेयी को उन्होंने मातृत्व स्वीकारा और युगांक-कृति के अनुसार मंथरा को भी 'माँ' कहकर गौरवान्वित किया।

राम के अयोध्या आने पर जब मंथरा कहती है—'तुमको है अधिकार प्राण अब मेरे ले लो।' तब बहुत सहज भाव और आत्मीयता से कहते हैं—

माता मैं तव प्राण नहीं लेने आया हूँ,
आँखें खोलो, लखो मंथरा क्या लाया हूँ।
अरे वही सौमित्र, वही सीता आई है,
कौशल्या के तुल्य पूज्य मेरी माई है।

यही राम का रामत्व है। उदाता की पराकाष्ठा का इससे बड़ा दृष्टांत नहीं मिल सकता। भरत और अपने में कभी विपरीत अथवा विरोध नहीं समझा। निषाद, सुग्रीव और विभीषण सभी उनके मानवेतर व्यवहार पर मंत्रमुग्ध हैं। वसिष्ठ को पिता तथा सुमंत को काका कहकर पुकारते हैं। अत: राम वास्तव में कलियुग के गहन तमतोम के निवारणार्थ एक प्रकाशित हैं, जिन्हें रामकथा के कवियों ने लोकजीवन के मध्य रखकर अत्यंत प्रियभांशु बना दिया है—'राम हैं जन की ओर।'

तभी तो युग-युगांत से रामकथा जन-जन की आस्था का महान् केंद्र बनी हुई है।

रामकथा है यहाँ श्रेष्ठतम स्मार्ट जीवन का,
युग-युगांत से आलोकित करता आया यह जग को।

साअ
बी-४०१, चितरंजन पार्क
नई दिल्ली-११००१९

बाल गीत

गीत

● माला श्रीवास्तव

हलवाई की दुकान में
गोल-गोल रसगुल्ला, मीठा-मीठा रस भरा
बड़ी शान से थाली में था वह सजा,
लड्डू को देख, मुँह उसने बिचकाया
है तो तू भी गोल, पर मुझ सा रस कहाँ पाया
लड्डू हँसकर बोला, रस न सही, स्वाद तो मैंने भी पाया
गणेशजी ने छककर मेरा ही भोग लगाया

नक चढ़े

गरम गरम जलेबी, गरमा गरम समोसे
दोनों ही थे स्वाद भरे पर थे कुछ नक चढ़े
जलेबी अपने रूप रस पर थी इतराती
वहीं समोसे राजा, चटपटे आलू संग इठलाते
मुन्नु-चुन्नी आए झटपट, दोनों पैक करवाए
घर जाकर सब ने गप गप खाए
जलेबी समोसे
भूल गए अपना इतराना और इठलाना
पेट मे जाकर हो गए एक

साअ
डी-३६, सीनियर सिटीजन
होम कॉम्प्लेक्स, ग्रेटर नोएडा

कमाई

• तुलसी देवी तिवारी

माँ, बाप, भाई, बहन, दोस्त सबकुछ तो नानी ही थी। उम्र को मुँह चिढ़ाती बलिष्ठ काया वाली नानी ही उसकी सुबह और शाम थी। उसी की गोद में मुँह छिपाकर रोती-हँसती, उसी के हाथ से खाती-पीती, वह उसे गोद में लिये-लिये घर के सारे काम करती, बाहर निकलती तो अपनी पुरानी साड़ी के टुकड़े से उसे पीठ पर बाँध लेती। लेकिन सिर पर ईंट-पत्थर ढोना मुश्किल होने के अलावा बच्ची को चोट लग जाने की आशंका से उसने ढीहा पथरा का काम छोड़कर घरेलू काम अपना लिया। पीठ पर उसे बाँधे-बाँधे वह कई घरों के काम निबटा लेती थी। कब वह नानी के सामने बैठकर उसे कपड़े धोते बरतन माँजते देखने लगी, कुछ पता ही न चला। मालकिनों की दया से उसे खाने-पहनने की कमी कभी नहीं हुई।

"बेचारी की माँ नहीं है नऽ ! सुमित्रा इसकी नानी है। इसकी एक ही बेटी हुई थी, तब से अकेली है, इसके पति को इसकी काया पसंद नहीं थी, इसके आगे चूहे जैसा दिखता था, सो इसे छोड़कर भाग गया। बच्ची को पालते-पालते सुमित्रा में मर्दों वाले गुण बढ़ते गए। बेटी को चार अक्षर पढ़ाया भी, जांगर वाले माखन के साथ रानी की भाँवर पार कर जैसे इसने गंगा नहा लिया था। दोनों कमा-खा रहे थे। शादी के बरिस भर बाद ही रानी ने सुमित्रा के कान में कहा था, 'अम्मा, तैं नानी बने वाले हस।' खुशी से वह रोमांचित हो उठी थी।

'भगवान् शायद उसे एक से इक्कीस करने वाले हैं।' वह बहुत खुश रहने लगी थी कि नियति ने जाल फेंककर उसे औंधे मुँह गिरा दिया। प्रसव के समय उचित चिकित्सा सुविधा न मिलने के कारण रानी नन्ही सी बच्ची को जन्म देकर आपफना हो गई इस संसार से। फिर से लइकोरी हो गई सुमित्रा, इसे तो अपनी रानी ही समझती है। कहती है—"रानी फिर से छोटी होकर उसकी गोद में आ गई है।" यही सब सुनते-सुनते वह स्कूल जाने लगी। गाँव में कोई बच्चा स्कूल से दूर नहीं रह सकता था न इसलिए। उसे स्कूल भेजकर सुमित्रा और जांगर तोड़ मेहनत करने लगी। अब जो जिम्मेदारी भगवान् ने सिर पर डाल दी है, उससे कैसे जी चुराया जा सकता है। बच्ची की शादी करके वह पापमुक्त हो सकती है। माखन तो अपनी दूसरी पत्नी को भी मरघट पहुँचाकर साधु हो गया। वह अपने अंगों को सिकोड़कर नानी की गोद में छिपने लगी थी। आठवीं पास हुई नहीं कि नानी के सिर पर किरन की शादी का भूत सवार हो गया।

सुपरिचित कथाकार। अब तक आठ कहानी-संग्रह, दो यात्रा-संस्मरण, एक वृहद उपन्यास, दस बालोपयोगी पुस्तकें, 'पुकार जगन्नाथ की' (यात्रा-संस्मरण) प्रकाशित। छत्तीसगढ़ी राजभाषा सम्मान, न्यू कबीर सम्मान, राज्यपाल शिक्षक सम्मान, छत्तीसगढ़ रत्न, राष्ट्रपति पुरस्कार एवं साहित्य मंडल, नाथद्वारा से मानद उपाधि।

"मेरा क्या ठिकाना, कब आँखे बंद हो जाएँ, फिर मेरी बच्ची किस घाट लगेगी? किसी की छत्रच्छाया हो जाए उसके सिर पर।" नानी की बातें वह अकसर सुना करती थी। जिस नानी ने उसे जीवन दिया, अपनी ममता का अमृत पिलाकर पाला, उसी ने उसके लिए पसंद किया था दिलहरन को। देखने-भालने में ठीक-ठाक था, घर-कुरिया तो पति-पत्नी मिलकर ही बनाते हैं। भाग्य में होगा तो बन ही जाएगा। हमारी पूँजी हमारा जांगर है। और उसकी कमी न तो दिलहरन में है और नहीं किरन में। कमा-खा लेंगे मेरे बच्चे भी। उससे न किसी ने कुछ पूछा, न किसी ने कुछ कहा। अकति के दिन भाँवर पड़ गई उसकी दिलहरन के साथ। नानी की अजीब कहानी पल में संतोष से मुसकराए तो पल में आंचल भर रोए।

अब तो डोकरी अकेली हो गइर, इस लड़की के भाग्य से ही इतने दिन जी गई, नहीं तो जब रानी अचानक धोखा देकर गई, तभी लगा जैसे इसकी जिंदगी भी खत्म हुई। इसके लिए उठना पड़ा उसे। इसके लिए भात पकाती तो दो कौर खुद भी खाती।

"अब किसके लिए चुल्हा बारूँगी रे किरन!" वह बुक्का फाड़कर रो पड़ी। गोद में लेकर ढेर सारा प्यार लुटाया उस पर।

"तू भी चल नानी मेरे साथ मेरी ससुराल, तेरे बिना मैं कैसे रह पाऊँगी?" किरन नानी की रोके सीने से चिपक गई थी। "ले न अभी तू चल नोनी, समय देखकर मैं आ जाऊँगी तेरे पास, दिलहरन खुद मुझे लेने आएगा। अभी तेरी शादी का देना-लेना बचा हुआ है, सब बराबर हो जाए, फिर आती हूँ तेरे पास। उसने उसे बहलाकर ससुराल भेज दिया। ससुराल में तीसरे दिन से ही झोंड़ी-गैंती उठाना पड़ा था उसे। यही तो हमारी लक्ष्मी है, बहुरिया जा अपन गोसान के संग माटी खोदने। बाँध बन रहा है, उसमें

ठेका लिया है उसने। डालडे की पईरी छनकाती वह खुशी-खुशी चली थी दिलहरन को देखते रहने के लोभ में। वह भी तो काम पर जाना नहीं चाहता था, डोकरी दाई ने यह लाभ की युक्ति निकाली थी। तुम खुश, हम भी खुश। मुसकान की छट्टी में नानी आई थी, एकदम दुबली, लंबाई ने कमर झुका दी थी, अब ठीहा-पथरा नहीं हो रहा था उससे। धरेलू काम कर रही थी। बच्ची के लिए गहने-कपड़े, दवाई वाले लाडू ले आई थी। उसे सीने से लगाकर बहुत रोई थी, वह आखिरी भेंट थी नानी से।

□

चार पैसे ज्यादा बनाने के लोभ में गाँव के और लागों के साथ दिलहरन भी जम्मू जाने को तैयार हुआ, उस समय मुसकान एक साल की हो रही थी। दूसरे बच्चे की ओर से सावधान थी किरन। तेली पारा का जग्गू साहू लेबर लेकर हर साल जम्मू जाता था। देवारी अकादसी मानकर निकलते और असाढ़ में लौट आते अपने गाँव खेती-किसानी करने। चंडीगढ़, दिल्ली, प्रयाग जैसी लूट और धोखाधड़ी नहीं है जम्मू में, काम का पैसा पहले ही दे देते हैं। हाँ, यह बात और है कि पैसा लेकर भागने वाले के साथ बड़भी कड़ाई से पेश आते हैं। किरन को कोई चिंता नहीं थी, उसका पति उसके साथ जा रहा था; जहाँ पति, वहीं तो ससुराल होती है। जब अपने को किसी का पैसा लेकर भागना नहीं है तो फिर डर काहे का।

एकादसी के बाद घर की खेती का काम समेटकर अपनी-अपनी गठरी-मोटरी, थोड़े से बरतन-भाँड़े लेकर जम्मूतवी के जनरल डिब्बे में चढ़ गए थे, जाँजगीर जिले के धुरूवा पानी गाँव के लोग। बिलासपुर जंक्शन के छूटते ही रेल के डिब्बे में बैठे लोग अपने-अपने सामान जमाने लगे, यात्रा लंबी थी, बैठे-बैठे तो कट नहीं सकती थी। ठेकदार ने जग्गू साहू के द्वारा सभी मजदूरों को पचास-पचास हजार रुपए एडवांस में दिलवा दिया था। कुछ रुपए डोकरा-डोकरी को दे दिया था दिलहरन ने, कुछ नए कपड़े, कंबल आदि खरीदा था। चार में रहना है तो पैसा रहते दलिद्दर जैसे क्यों रहे कोई। यात्रा के दौरान भी भात-बासी का कोई रोल नहीं था। आनी-बानी के खई-खजोना, इडली-डोसा, फल-फलहरी, लोग बीड़ी धुकते जा रहे थे, डिब्बे में धुआँ भर रहा था, दारू भी चख रहे थे कुछ लोग, अब ऐसे माहौल में कैसे हाथ-पर-हाथ धरे बैठा रहता दिलहरन। वह भी चख रहा था, किंतु वह अपने आदमी की खुशी देखकर खुश हो रही थी।

"पैसा दिया है तो जांगर पर ही नऽ छुटा देंगे दोनों जने कमाकर। ठेके में ईंट पाथने का काम था, न किसी का लेना, न किसी का देना, खुद की जिम्मेदारी थी। जितना काम, उतना पैसा। ३२ घंटे की यात्रा के बाद उस सुंदर धरती पर पैर रखा था उन लोगों ने, जिसे धरती का स्वर्ग कहा जाता है। स्टेशन से भट्ठे तक ले जाने के लिए ट्रेक्टर की व्यवस्था थी। ठीहे पर पहुँचकर ठेकेदार द्वारा दी गई सामग्री से तिरपाल का तिकोना घर बनाया था सबने। दो-चार दिन बाद कार्य प्रारंभ हो गया। गोरे-गोरे कश्मीरियों के बीच छत्तीसगढ़ियों ने अपनी अलग दुनिया बसा ली, अपनी बोली-भाषा, अपने त्योहार, अपनी गालियाँ, थकान उतारने के अपने तरीके। दिलहरन दिल खोलकर खर्च कर रहा था। ठीहे पर तो बहुत कम दिखाई देता, किरन एक दिन में तीन से चार हजार तक ईंटें पाथकर रख देती, तब कहीं जाकर उसके हाथ रुकते। रात का एक बज जाए या दो। बिजली की तेज रोशनी में वह अपने गाँव के लोगों के साथ काम करती। चाहे कितनी भी ठंड हो, काम करने वालों को कोई फर्क नहीं पड़ता।

दिलहरन काम पर आता नहीं था, उसके बदले भी किरन को ही काम करना पड़ता था, उस पर तुर्रा यह कि मुँह बंद करके काम करो, ही-ही बक्-बक् बिल्कुल बर्दाश्त नहीं था उसे। जब भी वह उसे समझाने की कोशिश करती—"काम पर आया करो जी, चार पैसे बचाकर नहीं जाएँगे तो हमारा घर कैसे बनेगा, हमारी बच्ची का भविष्य कैसे अच्छा हो पाएगा, अपना राज छोड़कर इतनी दूर पेट पालने के लिए ही तो नहीं आए हैं, एडवांस भी पूरा करना है, हमारे साथी कितना कमा रहे हैं, कुछ पता है तुम्हें?"

"तुझे तो दूसरों की बढ़ती देखकर जलन होती रहती है। कमा रहे हैं, अच्छा है, अपने लोग हैं, मुझे नहीं कमाना, तुझसे बनता है तो कर, नहीं तो घर में रह। ठीक से साग-भात राँध, पैसे की जिम्मेदारी मेरी ही नहीं, तेरी भी है। कोई ठेका नहीं है किसी का। काम करने से जी चुराती है। अपने मायके में तो कभी ढंग का खाया-पिया नहीं, बस वैसा ही चाहती है; हम वैसे नहीं हैं, खाने से बचे तब बचाते हैं, नहीं तो खाओ-पिओ मस्त रहो। तेरी नानी ने कहा था कि" मेरी बेटी बड़ी कमइलिन है। अब क्यों रोती है। ज्यादा बात बढ़ती तो वह मार-पीट पर उतर आता। किरन को साफ दिख रहा था, जैसे वह पैसा ले-लेकर खर्च कर रहा था, वैसे में सबके साथ उनका हिसाब बराबर नहीं हो पाएगा। मतलब साफ है, वे अपने लोगों के लौटने की खुशी देखते यहीं रह जाएँगे। ठेकेदार यों तो बड़ा भला आदमी है, किंतु उसके भी तो बाल-बच्चे हैं। घोड़ा घास से यारी करेगा तो खाएगा क्या। ये लोग छत्तीसगढ़ी महिलाओं की मेहनतकशी की दाद देते नहीं थकते, उनका सिर पर मसाला लेकर दसवीं मंजिल तक चढ़ना, लेंटर के समय की गतिशीलता देखकर दाँतों तले अंगुली दबा लेते थे। एक रात डेढ़-दो बजे दिलहरन ने किरन को बहुत मारा, उसके सिर से रक्त की धार बहने लगी। वह अपनी नानी को बुरा-भला कहती जोर-जोर से रोने लगी थी—अँधरी डोकरी तोर आँखीं फूटे रहिस का कि अइसन कुभारज बर मोला सउंप दिए ओ···ऽ···ऽ···ऽ। पापिन पोसे के बलदा ले लिए ओ···ऽ···ऽ···ऽ। अब कइसे जीअंव एकर संग ओ मोर ममा दाई।" उसका करुण क्रंदन सुनकर कुछ स्थानीय मजदूर कुरिया में घुस आए। फिर जो धुनाई हुई कि दो दिन तक कुरिया से बाहिर नहीं निकला। गाँव के साथियों ने तब दोनों का मेल करा दिया था।

रात गहराने तक वह ईंट पाथ रही थी कि किसी ने उसे खबर दी कि मुसकान गड्ढे में गिर गई है। जब तक वह गिरती-पड़ती उसके पास पहुँची, तब तक लोग उसे बाहर निकाल चुके थे और होश में लाने का

प्रयास कर रहे थे। कुरिया पहुँची तो दिलहरन वहाँ से नदारद, उसकी खोपड़ी भक्क् से उड़ गई।

"एक तो आड़ी के काड़ी करय नहीं, लइको ला नी समोखय।" मन-ही-मन कहते हुए उसने मुसकान को कथरी पर सुला दिया। सब अपनी-अपनी कुरिया में चले गए, किरन भी सामान्य हो गई, तब जाकर वह आया। उसने उसके सात पुस्त तक बखान दी, जैसे-जैसे वह गरियाती जाती, दिलहरन के हाथ-पाँव चलते जाते। बच्ची जागकर रोने लगी, उसने उसे उठाकर ऐसा फेंका कि वह काँटों वाली झाड़ी पर जाकर गिरी और चीख मारकर बेहोश हो गई। उसने किरन के कपड़े फाड़ डाले, इतनी जोर से धकेला कि वह एक पेड़ से जाकर टकराई और वह भी चेतना शून्य हो गई। दूसरे दिन किरन को जम्मू के अस्पताल में होश आया, गाँव के लोगों ने उसे मरने से बचा लिया था। लेकिन मुसकान को नहीं बचा पाए। किरन के पूछने पर पहले तो बहाना करते रहे कि किसी ने बताया कि रात के एकांत में कश्मीरी कुत्तों ने उसे नोंच-नोंचकर उसका काम तमाम कर दिया।

किरन के लिए दवा-पानी का इंतजाम भट्ठा मालिक ही कर रहा था। कई स्थानीय औरतें उससे सहानुभूति जताने आकर बैठती थीं। किरन को लगता, गाँव से शायद ही कोई आएगा, उन लोगों ने अधिक पैसा कमाने के लालच में चोरी से पलायन किया था। सरकारी नियम के खिलाफ। फिर लगता, अवश्य आएँगे गाँव के सरपंच, उसने देखा था, पहले भी कई जगह से मजदूरों को मुक्त कराकर लाए थे।

"हाय मोर लइका!" किरन दहाड़ मारकर रोई और छटपटी में पलंग से गिर पड़ी। दो दिन बाद उसे होश तो आ गया, किंतु उसकी दुनिया लुट चुकी थी। वह इतने बड़े संसार में एकदम अकेली रह गई थी। उसकी बच्ची, हे भगवान्! सबकुछ जैसे उसके सामने से गुजर रहा हो। जग्गू साहू अपने गाँव का नाता निभा रहा था, सबकी मेहनत और सहयोग से ही उसकी जिंदगी वापस मिली थी। "नानी तंय ह काबर चले गय मोला अकेल्ला करके, तोर सहारा म बचपन कट गय, नई रोये देहे। आज तोर परसाद ह मोर बर फांसी बन गये हे। ए मोर नोनी ऽ···ऽ।" वह राग धर के रो रही थी। उसी शाम उसकी अस्पताल से छुटटी हो गई। कुरिया में आकर देखा तो एक भी सामान नहीं था। कुरिया के बाहर राख पड़ी थी। जले हुए चप्पल का कुछ भाग दिखाई दिया। उसके शरीर पर एक नाईटी थी, जिसे पहनकर वह अस्पताल गई थी । मिलने के बहाने आए ठेकेदार बिमल पंत ने उसे उसकी परिस्थति से अवगत कराया। "किरन बाई, तुम हजारों में एक हो। तुम्हारा काम हमें पसंद है। तुम्हारे आदमी ने अब तक हमारा एक पैसा भी नहीं चुकाया। जितना तुमने कमाया, वह लेता गया, अब जब तक हमारा पैसा चुकता नहीं हो जाता, तुम यहाँ से कहीं जा नहीं सकती। वह तो तुम्हें छोड़कर चला गया। उसका कुछ पता नहीं। आशा है, तुम मेरी बात समझ गई होगी।" वह चला गया था अपना फरमान सुनाकर। "किरन ला ठिकादार ह बँधुआ बना लिस, पैसा पटे बिना नई छोड़य।"

"कहाँ ले पाही बपरी ह, लइका अलग खइता होगे, जवान छोकरी हे, कइसे पटवाही तेला त मून गुने रह। अइसन नई होन दन हमन, जेन पइसा झोंके हे तेने पटाही।" महिलाओं की आवाज गूँजी।

"फोन करव ग सरपंच ला, पूरा घटना बतावव।" जग्गू ने अपने गाँव धुरवा पारी फोन करके सरपंच को सारी जानकारी दी। अपना पता-ठिकाना लिखवा दिया।

किरन के लिए दवा-पानी का इंतजाम भट्ठा मालिक ही कर रहा था। कई स्थानीय औरतें उससे सहानुभूति जताने आकर बैठती थीं। किरन को लगता, गाँव से शायद ही कोई आएगा, उन लोगों ने अधिक पैसा कमाने के लालच में चोरी से पलायन किया था। सरकारी नियम के खिलाफ। फिर लगता, अवश्य आएँगे गाँव के सरपंच, उसने देखा था, पहले भी कई जगह से मजदूरों को मुक्त कराकर लाए थे।

दिलहरन के पाप का फल वह भोगना नहीं चाहती थी। भट्ठा मालिक अपने पैसों के लिए उसी से आश लगाए बैठा हुआ था।

"तुम धीरे-धीरे मेरा पैसा चुका देना, कोई परेशानी नहीं होगी। हम तुम्हारे निर्वाह भर का देते जाएँगे। आखिर दिलहरन तुम्हारा पति है, अकेले तो खाया नहीं होगा, ऐश तो तुम्हें ही कराया होगा, अब ईमानदारी से बकाया चुकता कर दो।" वह चुपचाप सुनती रहती, उसे प्रतीक्षा थी किसी की, जो उसे इस गुलामी से मुक्त करा दे।

जम्मू में अब मौसम बदलने लगा था। ठंड कम होने लगी थी, सैलानियों का आना बढ़ रहा था। रौनक बराबर बढ़ती जा रही थी। वैसे तो उनका भट्ठा शहर से कुछ दूर एक खाली स्थान पर था, लेकिन मेन रोड पर आती-जाती गाड़ियाँ दिखाई देती रहती थीं। एक दोपहर अचानक छत्तीसगढ़ पुलिस की गाड़ी भट्ठे पर आकर रुकी। उसमें से धुरवा पारा के सरपंच-उपसरपंच वर्दीधारी पुलिस के जवान के पीछे से उतरा दिलहरन, भट्ठे के मालिक से बातचीत करके उन्होंने दिलहरन को उन्हें सौंप दिया और किरन को अपनी गाड़ी में बैठाते हुए कह दिया, "पंतजी, जैसे हमने दिलहरन को आप के पास लाकर छोड़ा है, वैसे ही आप भी हमें दोबारा मत बुलाइएगा। पैसे पूरे होते ही इसे छोड़ दीजिएगा, वरना हम ऐसे सादे-सादे नहीं लौटेंगे अगली बार।"

"अरे किरन! तू मुझे छोड़कर कैसे जा सकती है, मैं तेरा बिहाता हूँ, रुक जा, दोनों जने कमाकर पैसा चुका देंगे, फिर साथ-साथ घर चलेंगे।" वह किरन के आगे हाथ जोड़ रहा था। किरन डबडबाई आँखों से अपने साथियों को देख रही थी। उसका गला रुँधा हुआ था। उसके मुँह से बड़ी मुश्किल से निकल सका—"तैं मान ले मैं मर गयं तोर बर।"

वह खाली हाथ कमाई करके अपने गाँव वापस जा रही थी।

साअ

बी-२८, हरसिंगार, राजकिशोर नगर
बिलासपुर (छ.ग.)
दूरभाष : ०९९०७१७६३६१

धरती के गर्भ में

• सुदर्शन वशिष्ठ

वरिष्ठ रचनाकार। अब तक दस कथा-संकलन, चुनिंदा कहानियों के पाँच संकलन, पाँच कथा-संकलनों का संपादन, पाँच काव्य संकलन, दो उपन्यास, दो व्यंग्य-संग्रह प्रकाशित। ७० से अधिक पुस्तकों का संपादन तथा संयोजन। 'अमर उजाला गौरव सम्मान' तथा हिंदी अकादमी के 'शिखर सम्मान' से सम्मानित।

धरती का दर्द

घाटियाँ जानती हैं
पहाड़ों का दर्द।
घाटियाँ जानती हैं
धरती का दर्द।

पहाड़ और धरती के बीच
सेतु हैं घाटियाँ।

पहाड़ ऊँचा है
तब हैं घाटियाँ
पहाड़ ऊँचा है
तब है धरती।

घाटियाँ लगती हैं सोई हुई
अलसाई हुई
वे सोई नहीं होती कभी
जागी रहती हैं निरंतर लेटे हुए भी
एक दूध पिलाती माँ की तरह
जो जागी रहती है हमेशा सोने पर भी।

घाटियों के भीतर गूँजता है एक शोर
जैसे दरिया हरहराता है
जैसे निकलता है लावा
या जैसे फूटता है नवजात झरना
या अँगड़ाई लेता नन्हा बीज।

धरती के गर्भ में
पड़ा रहता है कई कुछ
फिर बीज सा उगता है यकदम
धरती ही जानती है
उसके उगने की पीड़ा।
उसके होने का दर्द।

पहाड़

बर्फ में इक आग है
आओ खेलें
बर्फ, जिसे सेंकते गरीब
अमीर नहीं जाते करीब।
तूफाँ में भी इक आस है
आओ झेलें
बँट रही है साँस
आओ ले लें।

: दो :

खिलने लगे बुराँस
सेमल भी फूले
दूर-दूर होती बर्फ
पहाड़ पर
वसंत आने को है।

पिता की पीठ

पिता की पीठ सील थी
जिस पर माँ पीसती थी नमक-मिर्च।

घोड़े की पीठ थी पिता की पीठ
पसलियों में मारते थे बच्चे एड़ियाँ।

सख्तजान थे पिता
कंधे पर उठाए हमें
चढ़ जाते थे पहाड़।

पीठ तो पीठ
छाती भी थी चट्टान
जिस पर मूँग दलते थे नाते-रिश्ते।

जब-जब होती अनहोनी
वे बस हँस देते।

बहुत शरीफ थे पिता
चुपचाप सुनते माँ के ताने
भाइयों के बहाने।

जेब में न हों चाहे पैसे
सदा अमीर थे पिता।
उनकी जेब भरी रहती सदा
बच्चों के लिए।

बाहर रहते थे हमेशा पिता
घर में उनकी रूह घूमती
होते नहीं थे पिता घर
लगता होंगे यहीं कहीं।

पिता लगवाते थे टाँके
फटे जूतों में चोरी से
बदलवाते थे फटी कॉलर
चोरी से गाँव के दरजी से।

पिता सोते थे सदा
माँ के सोने पर।
लोग कहते रहते कई कुछ
रोते नहीं थे पिता कभी
हाँ, वे रोए थे जब जन्म हुआ मेरा
माँ के चीखने-चिल्लाने पर।

नया जन्म

दोस्त कहता है तुम्हारा बार-बार जन्म होगा।
मैं कहता हूँ, अच्छा है
पर मुझे पता होना चाहिए कि
मेरा नया जन्म हुआ है।
ऐसा नहीं कि बस बताया जाए
मेरा जन्म हो गया, मुझे पता न चले।
ये तो मेरे साथ मजाक ही होगा ना!

कइयों को याद रहते हैं पिछले जन्म
कई तो ढूँढ़ लेते हैं पिछले माँ-बाप, पत्नी
ऐसे किस्से छपते हैं रसालों में।

दोस्त तो कहता है
मुझे पता चलेगा क्या कि जन्म हुआ है मेरा
या पुरानी जगह थी कौन?

'अभिनंदन' कृष्ण निवास,
लोअर पंथाघाटी,
शिमला-१७१००९
दूरभाष : ९४१८०८५५९५

बनन में बागन में बगर्‌यो बसंत है

• शैलेंद्र कुमार शर्मा

ऋतुराज वसंत, वसंत पंचमी और वाग्देवी सरस्वती का संबंध अनेक सदियों से चला आ रहा है। सरस्वती की पूजा-आराधना का अनूठा पर्व है वसंत पंचमी, तो यह ऋतुराज बसंत के स्वागत का पर्व भी है। सुदूर अतीत से वसंत पंचमी को आगमोक्त विधि से महाशक्ति सरस्वती की पूजा का विधान मिलता है। वसंत समऋतु का परिचायक है और देव, ऋषि, कवि, साधारण जन सभी को समभाव से आह्लादित करता है। वसंत पंचमी के दिन माँ शारदे की उपासना कर ज्ञान का वरदान प्राप्त किया जाता है तो यह दिन कामदेव की पूजा को भी समर्पित है।

आलोचना, निबंध लेखन, संस्मरण, इंटरव्यू, नाटक तथा रंगमंच समीक्षा, लोकसाहित्य एवं संस्कृति विमर्श, राजभाषा हिंदी एवं देवनागरी के विविध पक्षों पर लेखन एवं अनुसंधान कार्य में निरंतर सक्रिय। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की शोध परियोजना के अंतर्गत 'साठोत्तर हिंदी नाट्य साहित्य और भारतीय रंगचेतना' विषय पर अनुसंधान। वर्तमान में हिंदी विभागाध्यक्ष, कुलानुशासक एवं कला संकाय के संकायाध्यक्ष के रूप में कार्यरत।

भारतीय शास्त्रों और काव्यकृतियों में वाग्देवी सरस्वती की महिमा कई रूपों में व्यक्त की गई है। ऋग्वेद में सरस्वती नदी मातृका और वाग्देवी के रूप में वर्णित है। देवी रूप में वे पवित्रता, शुद्धि, समृद्धि और शक्ति प्रदाता मानी गई हैं। वहाँ उनका संबंध पूषा, इंद्र और मरुत से बताया गया है। यज्ञीय देवता इड़ा और भारती से भी उनका संबंध बताया गया है। परवर्ती काल में भारती सरस्वती से अभिन्न मान ली गईं। ब्राह्मण काल में उनका वाक् से अभेद मान लिया गया। कालांतर में उन्हें विद्या और विविध कला रूपों की अधिष्ठात्री के रूप में प्रतिष्ठा मिली। उनके स्वरूप का अंकन भी स्थान-स्थान पर मिलता है। जैसे वे श्वेत पद्म पर आसीन, शुभ्र हंसवाहिनी, तुषार धवल कांति, शुभ्रवसना, स्फटिक माला धारिणी, वीणा मंडितकरा, श्रुतिहस्ता हैं। कामना की गई है कि ऐसी भगवती भारती प्रसन्न हों, जिनकी असीम कृपा से मनुष्य में कला, विद्या, ज्ञान तथा प्रतिभा का आलोक उत्पन्न होता है।

सरस्वती समस्त विद्याओं की अधिष्ठात्री हैं। यश उन्हीं के धवल अंग की ज्योत्स्ना है। वे सत्त्वरूपा, श्रुतिरूपा और आनंदरूपा कही गईं। विश्व में सुख, सौंदर्य का वही सृजन करती हैं। मान्यता है कि वे अनादि शक्ति भगवान् ब्रह्मा के कार्य की सहयोगिनी हैं। उन्हीं की कृपा से प्राणी कार्य के लिए ज्ञान प्राप्त करता है। उनका कलात्मक स्पर्श कुरूप को परम सुंदर कर देता है। सद्विवेक ही उनका वास्तविक प्रसाद है। भारत में सरस्वती की उपासना सदा होती आई है। युगों-युगों से सर्जकगण उनके पावन चरणों का स्मरण करके ही अपना काव्यकर्म प्रारंभ करते थे। प्रतिभा की अधिष्ठात्री के चरित तो सर्वत्र प्रत्यक्ष हैं। समस्त वाङ्मय, संपूर्ण कला और पूरा विज्ञान उन्हीं का वरदान है। मनुष्य उन जगन्माता की अहेतुक कृपा से प्राप्त शक्ति का दुरुपयोग करके अपना नाश कर लेता है और उनको भी दुखी करता है।

परिवर्तन प्रकृति का स्वाभाविक धर्म है, जो विभिन्न ऋतुओं के माध्यम से साकार होता है। ऋतु शब्द के मूल में ऋत है, जिसका अर्थ ही है—स्वाभाविक व्यवस्था या भौतिक एवं आध्यात्मिक निश्चित नियम। भारतीय परंपरा वर्ष भर में छह ऋतुओं के चक्र को स्वीकार करती है। ये ऋतुएँ हैं—ग्रीष्म, वर्षा, शरद, हेमंत, शिशिर और वसंत। वैसे तो हर ऋतु की अपनी महिमा है, लेकिन सभी ऋतुओं का राजा वसंत ही माना गया है। प्राचीन काल में यह ऋतु चैत्र और वैशाख में आती थी, किंतु अयन के विचलन से अब फाल्गुन और चैत्र वसंत के महीने माने जाते हैं। फाल्गुन के पहले से ही प्रकृति में वसंत के आने के संकेत मिलने लगते हैं। माना जाता है कि माघ शुक्ल पंचमी को शीत की विदाई देकर धरती पर वसंत उतरता है। यह दिन वसंत पंचमी के नाम से प्रसिद्ध है। वसंत के साथ-साथ यह दिन ऋतु पूजा, वेद पूजा, सरस्वती पूजा, प्रकृति पूजा, कृष्ण पूजा और रति पूजा का भी दिन है।

ऋतुराज वसंत के आगमन से प्रकृति युवा हो उठती है। धरती अपना

रूप सँवारने लगती है। डाल-पातों में, कूल-कछारों में, वनों में, बागों में, सब ओर वसंत अपने आप में एक उत्सव बनकर धरती पर आता है। जो आज भी प्रकृति से अपना रिश्ता बनाए हुए हैं, वे बिना कहे-सुने इसका अनुभव करते हैं। वसंत के कई सरोकार हैं। यह वनस्पति एवं जीवशास्त्रियों की दृष्टि में अलग अर्थ रखता है, तो कृषकों के लिए अलग। सर्जकों और प्रकृति-प्रेमियों के लिए इसका अलग अर्थ है तो धर्मालुओं के लिए भिन्न। दृष्टि के अंतर के बावजूद वसंत एक ही है। वह है—हमारी रागात्मक वृत्ति। वसंत अपनी मोहकता में सबको बाँधता है। विभिन्न कला एवं साहित्य रूपों में वसंत की मनोहारी अभिव्यक्ति की एक लंबी परंपरा मिलती है। प्राय: हर युग और धारा के कवियों ने इसका चित्रण किया है।

भारत की सामाजिक-सांस्कृतिक अस्मिता के अन्यतम चितेरे रचनाकारों ने वसंत और वाग्देवी सरस्वती का मनोहारी चित्रण अपनी कविताओं में किया है। निसर्ग वैभव के कवि कालिदास 'ऋतुसंहार' में वसंत के आगमन के साथ सबकुछ सुहावन-मनभावन हो जाने का चित्र उकेरते हैं। वे कहते हैं, देखो वसंत के आते ही सब वृक्ष फूलों से लद गए हैं, जल में कमल खिल गए हैं। स्त्रियाँ मदोन्मत्त हो गई हैं, वायु में सुगंध आने लग गई है। संध्याकाल सुहावना हो गया है और दिन लुभावने हो गए हैं। सचमुच सुंदर वसंत में सबकुछ सुहावना लगने लगता है—

द्रुमा: सपुष्पा: सलिलं सपद्मं
स्त्रिय: सकामा: पवन: सुगन्धि:
सुखा प्रदोषा दिवसाश्च रम्या:
सर्वं प्रिये चारुतरं वसन्ते।

पद्माकर पवन से पराग तक, वनों से बागों तक परिव्याप्त वसंत की छटा का सरस वर्णन कुछ इस तरह करते हैं—

कूलन में केलि में कछारन में कुंजन में
क्यारिन में कलिन में कलीन किलकत है।
कहे पद्माकर परागन में पौनहू में
पानन में पीक में पलासन पगंत है
द्वार में दिसान में दुनी में देस-देसन में
देखौ दीप-दीपन में दीपत दिगंत है
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगर्‌यो बसंत है।

महाप्राण निराला का वाग्देवी सरस्वती और वसंत से अनुराग अनूठा है। भारतीय साहित्य जगत् में वसंत के अग्रदूत के रूप में चर्चित रहे हैं सूर्यकांत त्रिपाठी निराला। उन्होंने वाग्देवी सरस्वती और वसंत के कई रूपों की अभिव्यक्ति अपनी रचनाओं में की है। उनके लिए ये दोनों सृजन के अजस्र प्रेरणास्रोत और कई प्रकार के प्रतीकार्थों का संवहन करते हैं। सरस्वती निराला की आराध्या हैं तो वसंत उन्हें सर्वप्रिय ऋतु है।

निराला ने वाग्देवी की विविधमुखी महिमा को नए रूपों में विस्तार दिया है। निराला द्वारा सरस्वती की आराधना का तात्पर्य है रसानुभूति रूप सौंदर्य का अधिष्ठान करना। वसंत को प्रेम करने का अर्थ है नव सृजन और सौंदर्य को प्रेम करना। निराला का काव्य अलौकिक आनंद रूप सौंदर्यानुभूति-रसानुभूति का काव्य है, जिसे वे अपने युग और चिंतन की अनुरूपता में नित नया रूप देते रहे।

वसंत न केवल निरालाजी की सर्वाधिक प्रिय ऋतु है, उनका जन्म दिवस भी वसंत पंचमी को मनाया जाता है। महाप्राण निराला का जन्म वैसे तो माघ शुक्ल एकादशी, संवत् १९५५ तदनुसार २१ फरवरी, १८९९ ई. को हुआ था, लेकिन उन्होंने अपने निश्चय द्वारा वसंत पंचमी को अपना जन्मदिन घोषित किया। गंगा पुस्तकमाला के प्रकाशक दुलारेलाल भार्गव ने सन् १९३० में वसंत पंचमी के दिन गंगा पुस्तकमाला का महोत्सव और अपना जन्मदिन मनाया। इस अवसर पर निराला ने उनका परिचय देते हुए निबंध पढ़ा। समालोचक रामविलास शर्मा बताते हैं—"उन्होंने देखा कि दुलारेलाल भार्गव वसंत पंचमी को अपना जन्मदिवस मनाते हैं। उन्होंने निश्चय किया कि वह भी वसंत पंचमी को ही पैदा हुए थे। वसंत पंचमी सरस्वती पूजा का दिन, निराला सरस्वती के वरद पुत्र, वसंत पंचमी को न पैदा होते तो कब पैदा होते? नामकरण संस्कार से लेकर जन्मदिवस तक निराला ने अपना जन्मपत्र नए सिरे से लिख डाला।"

ठंड की लंबी रातें जैसे-जैसे छोटी होती हैं, धरती के भीतर की नई गंध, नए रंग लिये फूलों और पत्तियों का विकास होता है। ऐसे में निराला की प्रतिभा भी नए गीतों को रचने की प्रेरणा पाती थी। इसीलिए वसंत उनकी समूची काव्य-यात्रा में बार-बार उभरकर सामने आता है। उनकी प्रिय ऋतु वसंत कई छवियों और अनुभूतियों को समेटती हुई जीवन और दर्शन को प्रतिफलित करती है। निराला के लिए वसंत आनंद और उल्लास की ऋतु तो है ही, उनके जीवन के विविधरंगी अनुभवों को प्रतिबिंबित करने वाली ऋतु भी है।

वाग्देवी सरस्वती की आराधना के पर्व वसंत पंचमी पर निराला प्रकृति में व्याप्त नवता को जीवन के हर क्षेत्र में संचरित करने का आह्वान वीणावादिनी से करते हैं। 'वीणावादिनी वर दे' कविता को विख्यात संगीताचार्य पंडित ओंकारनाथ ठाकुर ऋग्वेद के पश्चात् सरस्वती की अभ्यर्थना में लिखी गई सर्वश्रेष्ठ रचना मानते थे। ज्ञान की देवी सरस्वती का आह्वान करती निराला की कविता क्रांति का स्वप्न देखती है। 'वर दे, वीणावादिनी वर दे' में निराला ने नए भारत के निर्माण का स्वप्न देखा। आजादी के बाद देश के अब तक की यात्रा को देखें, तो महाकवि की यह आकांक्षा आज भी अधूरी नजर आ रही है। एक राष्ट्र के तौर पर भारत के लिए भी और राष्ट्र की इकाई के तौर पर प्रत्येक भारतवासी के लिए भी। आज हम इतिहास के उस मोड़ पर खड़े हैं, जहाँ यह दायित्व हम पर है कि हम नए भारत के निर्माण की अधूरी रह गई संकल्पना को साकार करें। निराला का नया भारत उनकी कविताओं में कई रूपों में स्पंदित हुआ है। रवींद्रनाथ टैगोर एक ऐसे देश का स्वप्न देखते हैं—

जहाँ दिमाग भय रहित है और सिर गर्व से ऊँचा है,
जहाँ ज्ञान मुक्त है,
जहाँ दुनिया संकीर्ण दीवारों से विखंडित नहीं हुई है,
जहाँ शब्द, सच्चाई की गहराई से निकलते हैं,

जहाँ अथक संघर्ष पूर्णता की ओर ले जाता है,
जहाँ तर्क की धारा मृत रूढ़ियों में गुम नहीं हुई है,
जहाँ दिमाग सतत विस्तार लेते विचार और क्रियाओं के सहारे आगे बढ़ता जाता है,
हे परमपिता! स्वतंत्रता के उस स्वर्ग में मेरे देश को ले चलो।

टैगोर की महनीय कल्पना में रचा-बसा यह भारत मुक्त ज्ञान से ही संभव है। विद्या की सार्थकता मुक्ति में ही है, सा विद्या या विमुक्तये। टैगोर की कविता में जिस देश की कल्पना की गई है, वह मुक्त करने वाले ज्ञान से ही संभव है। मुक्त करने वाला ज्ञान, अर्थात् समस्त प्रकार की रूढ़ियों से मुक्त करने वाला, असमानता के बंधन से मुक्त करने वाला ज्ञान। निराला पर टैगोर का गहरा प्रभाव है। ऐसे में यह अनायास नहीं है कि नए भारत के निर्माण के लिए निराला सरस्वती का आह्वान करते हैं—

वर दे, वीणावादिनी वर दे!
प्रिय स्वतंत्र, रव अमृत-मंत्र नव
भारत में भर दे।
काट अंध उर के बंधन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर
कलुष-भेद-तम हर प्रकाश भर
जगमग जग कर दे।
नव गति, नव लय, ताल-छंद नव,
नवल कंठ नव जलद-मंद्र रव
नव नभ के नव विहग-वृंद को
नव पर, नव स्वर दे। वीणावादिनी वर दे

उनका स्वर है, हे माँ! देश में स्वतंत्रता का अमृत मंत्र भर दो। देश में प्रकाश की ऐसी धारा बहा दो, जो सारी बुराइयों, पापों का नाश करने वाली हो। वे सरस्वती से देश की जड़ता भंग करने और देश में नई गति, नया ताल देने का आह्वान करते हैं। आलोचक विश्वनाथ त्रिपाठी कहते हैं, 'यहाँ स्वतंत्रता शब्द का इस्तेमाल बहुत महत्त्वपूर्ण है। यह पहली बार है, जब ज्ञान को स्वतंत्रता से जोड़ा गया है। स्वतंत्रता बहुत व्यापक अवधारणा है, वह स्वयं ब्रह्मा है। यह सबकुछ को अपने में समाहित कर लेती है।' यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या हमारे समाज में ऐसा ज्ञान मौजूद है? क्या यह ज्ञान हमें स्वतंत्र करता है? वस्तुत: बिना स्वतंत्र हुए किसी भी प्रकार की सर्जना संभव नहीं है। अपने लघु गीत 'वरद हुई शारदाजी हमारी/पहनी वसंत की माला सँवारी।' में वे वसंत की सुषमा रूपी सुसज्जित माला पहनकर आई सरस्वती के वरदायी स्वरूप को प्रत्यक्ष करते हैं। यहाँ वह साक्षात् कल्याणमयी है, जो सब की आँखों में आकाश सी निर्मलता उमड़ा देती है, समस्त प्रकार के प्राणी जीवन का सुख लूटते हैं। वह सभी में उमंग की तरंग उत्पन्न कर देती है। वसंत की देवी सरस्वती का स्तवन उनकी कविता में बार-बार किया गया है। वे सरस्वती और मधुऋतु को सदा एक साथ देखते हैं—

अनगिनत आ गए शरण में जन, जननि,
सुरभि-सुमनावली खुली, मधुऋतु अवनि।

निराला वसंत की हर गति, हर लय, हर स्पंदन में संगीत का अनुभव करते हैं। ऐसे ही लयपूर्ण अंदाज में उन्होंने 'वासंती' का आह्वान किया है—

अति ही मृदु गति ऋतुपति की
प्रिय सालों पर, प्रिय, आओ,
पिक के पावन पंचम में,
गाओ, वंदन-ध्वनि गाओ।
प्रिय, नील-गगन-सागर तीर,
चिर, काट तिमिर के बंधन,
उतरो जग में, उतरो फिर,
भर दो, पग-पग नव स्पंदन।

वसंत के समीर में भी उन्हें इसी प्रकार के संगीतमय प्रवाह की अनुभूति होती है—

आओ, आओ, नील सिंधु की
कंप, तरंगों से उठकर
पृथ्वी पर, वन की वीणा में
मृदु मर्मर भर मर्मर स्वर।
भरो पुलक नव-प्रेम प्रकंपित
कामिनियों के नव तन में
खोलो नवल प्रात मुख ढक-ढक
अलख बादलों से क्षण में

निराला ने वसंतकालीन रात्रि को परी के रूप में व्यक्त किया है, जिसके आगमन की प्रतीक्षा में मनुष्य अपने कष्टों को भुलाए रहता है—

आओ, आओ फिर, मेरे वसंत की परी-छवि-विभावरी,
सिहरो, स्वर से भर-भर अंबर की सुंदरी छवि-विभावरी!

निराला सही अर्थों में वसंत के अग्रदूत की तरह साहित्य-कानन में प्रविष्ट हुए थे, किंतु लंबे समय तक उन्हें उपेक्षा ही मिली। ऐसे में निराला ने हिंदी के सुमनों के प्रति पत्र में वसंत के बहाने अपनी पीड़ा को व्यक्त किया है—

मैं जीर्ण साज बहु छिद्र आज,
तुम सुंदर सुरंग सुवास सुमन
मैं हूँ केवल पदतल-आसन,
तुम सहज विराजे महाराज।
ईर्ष्या कुछ नहीं मुझे, यद्यपि
में ही वसंत का अग्रदूत।

निराला की कल्पना धरा के सौंदर्य से जुड़ी हुई है। वे यह देखते हैं कि वंसत के आगमन से चहुँ ओर व्यापी जड़ता और स्थिरता टूटती है और धरती पर अनंत सौंदर्य आ जाता है, तब वे भी उसकी लय में डूबकर अपनी कविता को सार्थकता देते हैं। वसंत उनके लिए नवजीवन का संचार करता है। वे मृत्यु-भय से मुक्ति का अनुभव भी इसी ऋतु में पाते हैं।

अभी न होगा मेरा अंत
अभी-अभी ही तो आया है

मेरे वन में मृदुल वसंत—
अभी न होगा मेरा अंत।
हरे-हरे ये पात, डालियाँ, कलियाँ, कोमल गात।
मैं ही अपना स्वप्न-मृदुल-कर फेरूँगा निद्रित कलियों पर
जगा एक प्रत्यूष मनोहर
अभी न होगा मेरा अंत

वसंत के आते ही कोयल पंचम स्वर में गाने लगती है। उससे मनोरम वन गूँज उठते हैं, भौंरे बौरा जाते हैं, पत्तों का शरीर प्रमुदित हो उठता है। निराला तन्मयता के साथ इन बिंबों को मूर्तिमंत करते हैं—

आज प्रथम गाई पिक पंचम
गूँजा है मरु विपिन मनोरम
मरुत-प्रवाह, कुसुम-तरु फूले,
बौर-बौर पर भौंरे भूले,
पात-गात के प्रमुदित झूले,
दायी सुरभि चतुर्दिक् उत्तम।

वसंत के माध्यम से निराला ने मानव मन की सूक्ष्म और कोमल भावनाओं की मार्मिक अभिव्यक्ति भी की है। तरु के साथ नव यौवन लतिका का मिलन उनके यहाँ मोहक प्रभाव छोड़ता है—

सखि, वसंत आया
भरा हर्ष वन के मन
नवोत्कर्ष छाया। सखि, वसंत आया।
किसलय-वसना नव-नव-लतिका
मिली मधुर प्रिय-कर-तरु-पतिका
मधुप-वृंद बंदी-पिक-स्वर भी सरसाया।
सखि, वसंत आया।

धरती स्वयं वसंत के आगमन से नूतन सौंदर्य को पाकर धन्यता का अनुभव करती है, ऐसे में निराला लिखते हैं—

रँग गई पग-पग धन्य धरा,
वर्ण गंध धर, मधु-मरंद भर,
तरु-उर की अरुणिमा तरुणतर
खुली रूप-कलियों में पर भर
स्तर-स्तर सुपरिसरा।
रँग गई पग-पग धन्य धरा।
गूँज उठा पिक-पावन पंचम,
खग-कुल-कलरव मृदुल मनोरम,
सुख के भय काँपती प्रणय- क्लम
वन श्री चारुतरा।
रँग गई पग-पग धन्य धरा।

निराला ने वसंत की माला से शारदा के शृंगार, होली जैसे पर्व के माध्यम से राष्ट्र-प्रेम की अभिव्यक्ति और वसंत से उपजे मुक्ति के वैविध्यपूर्ण अनुभवों को अपनी कविताओं में मर्ममधुर स्वर दिए हैं। वसंत प्रेम और यौवन की भी ऋतु है। निराला उसके इस रूप को भी कविता में व्यक्त करते हैं—

हँसी के तार होते हैं ये बहार के दिन।
हृदय के हार के होते हैं ये बहार के दिन।
नवीनता की आँखें चार जो हुई उनसे,
कहा कि प्यार के होते हैं ये बहार के दिन।

'आए महंत वसंत' कविता के माध्यम से सर्वेश्वरदयाल सक्सेना एक सुंदर रूपक के जरिए वसंत की महिमाशाली आमद को जीवंत करते हैं, जहाँ प्रकृति का कण-कण आनंदविभोर दिखाई देता है—

मखमल के झूल पड़े हाथी-सा टीला
बैठे किंशुक छत्र लगा बाँध पाग पीला
चँवर सदृश डोल रहे सरसों के सर अनंत
आए महंत वसंत
श्रद्धानत तरुओं की अंजलि से झरे पात
कोंपल के मुँदे नयन थर-थर-थर पुलक गात
अगरु धूम लिये घूम रहे सुमन दिग-दिगंत
आए महंत वसंत
खड़-खड़ खड़ताल बजा नाच रही बिसुध हवा
डाल-डाल अलि पिक के गायन का बँधा समा
तरु-तरु की ध्वजा उठी जय-जय का है न अंत
आए महंत वसंत

केदारनाथ अग्रवाल बसंती हवा कविता के माध्यम से समस्त प्राणियों को प्रेम-आसव पिलाने में रत वासंती वायु की गति और लय को पकड़ते हैं—

हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ!
वही हाँ, वही जो युगों से गगन को
बिना कष्ट-श्रम के सँहाले हुए हूँ;
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ।
वही हाँ, वही जो धरा का बसंती
सुसंगीत मीठा गुँजाती फिरी हूँ;
हवा हूँ, हवा, मैं बसंती हवा हूँ।
वही हाँ, वही, जो सभी प्राणियों को
पिला प्रेम-आसव जिलाए हुए हूँ,
हवा हूँ, हवा मैं बसंती हवा हूँ।

वस्तुत: वाग्देवी सरस्वती, वसंत पंचमी और वसंत के विविध रूपों का अर्थपूर्ण अंकन भारतीय शास्त्रों और साहित्य को वैशिष्ट्य देती है। आधुनिक युग के कवियों जैसे निराला के लिए वाग्देवी की आराधना आत्मोन्नति से ज्यादा सार्वजनीन प्रगति के लिए है, जो हमारे समस्त प्रकार के कलुष, अंधकार, बंधन और जड़ता को मिटाकर जीवन को शुभ्र, आलोकमय, मुक्त और गतिमय बना दे। वाग्देवी की उपासना और वसंत के मर्म मधुर अंकन के विविध स्वर आज भी प्रासंगिक बने हुए हैं।

सा.अ.

'सृजन' ४०७, साईनाथ कॉलोनी
सेठी नगर, उज्जैन-४५६०१० (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२६०४७७६५

तीन लघुकथाएँ

● बलराम अग्रवाल

मिलना एक योद्धा से

राजधानी एक्सप्रेस में सवार थे दोनों। परस्पर अजनबी। टू टीयर कोच था और सवारियाँ भी इनी-गिनी। कंपार्टमेंट के अपने हिस्से में वे ही दोनों थे। आमने-सामने की सीट। ट्रेन चले काफी समय बीत गया था। सिर्फ दो के बीच अबोला लंबे समय तक कायम नहीं रह सका। एक ने पहल की—

"माफ कीजिए, क्या मैं आपका नाम जान सकती हूँ?"

"जी, क्यों नहीं!" युवक ने कहा, "मैं शेखर आर्य! आप?"

"मैं शिखा, शिखा वार्ष्णेय! हैप्पी टु मीट यू।"

"मुझे भी बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर!" शेखर ने कहा; फिर पूछा, "किसी जॉब में हैं आप?"

"जी, मैं असिस्टेंट प्रोफेसर हूँ! आप?"

"इत्तिफाक से मैं भी!" शेखर हँसा।

"विषय?"

"हिंदी! आपका?"

"हिस्टरी! ब्लडी बंडल ऑव ऑल फेक इंफॉर्मेशंस।"

"क्यों?"

"इसलिए कि गणित में, कैमिस्ट्री में, फिजिक्स में एक फॉर्मूला है, जिसके बारे में तय है कि कभी नहीं बदलना! हिंदी में, अंग्रेजी में घात-प्रतिघात नहीं है···"

"घात-प्रतिघात नहीं है, मतलब?" शेखर ने टोका।

"देखिए, गणित में, कैमिस्ट्री में, फिजिक्स में कुछ डिजिट्स के ऊपर कुछ पावर्स होती हैं, हिंदी में उन्हें घात कहते हैं! वैसे घात का असली मतलब आप हिंदी वाले अच्छी तरह जानते ही हैं। अब प्रतिघात, यानी कोई मारा-मारी नहीं है। कबीर, रहीम, तुलसी, नागार्जुन, ज्ञानरंजन, राजेश जोशी, स्वप्निल श्रीवास्तव···सबकी व्याख्याएँ निर्धारित हैं, जीवनियाँ निर्धारित हैं। यानी जैसे वे कल थे, वैसे ही आज हैं, वैसे ही कल रहेंगे। जो कुछ भी इनके बारे में लिखा है, अपरिवर्तनीय है।"

"हिस्टरी में परिवर्तनीय है?" शेखर ने पूछा।

"बिल्कुल!"

"कैसे?"

"जो इतिहास हम बच्चों को पढ़ा रहे हैं, हमें पता है कि वह झूठ का पुलिंदा है!" शिखा ने कहा, "सही इतिहास दरअसल, पाठ्यपुस्तकों से बाहर अन्य किताबों में है, जो विद्यार्थियों को पढ़ने के लिए उपलब्ध ही नहीं है!"

जाने-माने रचनाकार। 'चन्ना चरनदास', 'दूसरा भीम' (बालकथा-संग्रह), ग्यारह अभिनेय बाल एकांकी। अंग्रेजी पुस्तकों का हिंदी में अनुवाद तथा कई संपादित पुस्तकें। १२ खंडों में प्रकाशित 'प्रेमचंद की संपूर्ण कहानियाँ' में संपादन सहयोग; हिंदी साहित्य कला परिषद्, पोर्टब्लेयर की साहित्यिक पत्रिका 'द्वीप लहरी' को अद्यतन संपादन सहयोग।

"आपको तो उपलब्ध है! आप बताइए उन्हें।" शेखर ने उत्तेजित स्वर में कहा।

"मेरे बताने से क्या होगा? परीक्षा में प्रश्न तो पाठ्यपुस्तक से आने हैं और उत्तर भी उसी के अनुरूप दिए जाने जरूरी हैं!"

"तब?"

"पाठ्यपुस्तकों में सुधार किया जाए, और क्या!"

"प्रामाणिकता का आधार क्या रहेगा?"

"वही, जो फेक इंफॉर्मेशंस वाली अब की पाठ्यपुस्तकों का रहा था। पाठ-निर्धारण समिति, और क्या!"

"बात तो आपकी ठीक है!" शेखर बोला, "ऐसा नहीं हो सकता कि बच्चों को गलत इतिहास पढ़ाए जाने के खिलाफ आप सुप्रीम कोर्ट में आवाज उठाएँ! वही यह निर्धारित करे-कराए कि इतिहास गलत पढ़ाया जा रहा है या नहीं!"

"वहाँ से तो निर्णय आने तक ही कई सेशन निकल जाएँगे।" शिखा ने क्षुब्ध स्वर में कहा, "वैसे तैयारी चल रही है उसकी भी!"

"शिक्षा का मामला है न, शिखाजी! जबरदस्ती नहीं की जा सकती।"

"गलत पढ़ाना भी तो जबरदस्ती है। गलत पढ़ाते समय सही जानकारी वाले की आत्मा पर कितना बोझ पड़ता है, जानते हैं?"

"जानता तो नहीं हूँ, लेकिन महसूस कर सकता हूँ!" शिखर बोला।

"मैंने इस बारे में सरकार को पत्र लिखे हैं, प्रमाण भी दिए हैं! देखिए क्या होता है।" शिखा ने कहा।

"यानी कि आप हर रास्ते से वार कर रही हैं!" शिखर ने ठहाका लगाया।

"बेशक!" शिखा भी बेझिझक हँसी, फिर गंभीर स्वर में बोली, "हमारी कोशिश रहनी चाहिए कि अपने बच्चों को हम अपने जातीय गौरव की सही जानकारी दें! यह मेरे बच्चों का हक है और इसे मैं दिलाकर रहूँगी।"

"वॉव! इस समय मैं इतिहास की लक्ष्मीबाई के सामने बैठा हूँ!"

रोमांचित अंदाज में शिखर बोला, "बुरा न मानें शिखाजी, तो एक सेल्फी हो जाए! मैं इस लम्हे को सहेजकर रख लेना चाहता हूँ।"

"क्यों नहीं!" शिखा ने हथेली से ही अपने बाल ठीक किए और सँभलकर बैठ गई। शेखर ने मोबाइल निकाला। उसकी ओर जाकर दो-तीन सेल्फी लीं और अपनी सीट पर आ बैठा।

बातों का नया सिलसिला शुरू हो गया।

वंदे मातरम्

दोनों युवा थे। दोनों भारतीय। दोनों विदेश यात्रा पर, हवाई जहाज में सवार।

"एक्सक्यूज मी, यू.एस. ?" एक ने दूसरे से पूछा।

"यस; और आप ?"

"मैं भी!"

"यू.एस. में कहाँ ?"

"कैलिफोर्निया! आप ?"

"मैं भी!"

"कैलिफोर्निया में कहाँ ?"

"सेन फ्रांसिस्को! आप ?"

"लॉस एंजिल्स!"

उनमें से एक ने देखा कि दूसरा कपड़े की एक छोटी सी पोटली को अपनी गोद में सहेजकर रखे हुए है।

"इस थैली को ऊपर लगेज के साथ रख दीजिए, अन-ईजी लग रहा होगा!"

"नहीं, इसे मैं लगेज के साथ नहीं रख सकता!"

"क्यों ?"

"इसमें मेरे देश की पूजनीय माटी है!" पहले ने कहा; फिर दूसरे से पूछा, "आप भी लाए होंगे ?"

"मैं!" उसका सवाल सुनकर दूसरा मुसकराया। फिर पहले को लाजवाब करता-सा बोला, "पूरा का पूरा यह शरीर ही देश की मिट्टी से बना है दोस्त, एक और मिट्टी को अलग से ले जाने की क्या जरूरत है!"

उसके कथन पर पहला भी मुसकरा दिया। हाथ के इशारे से अपने शरीर और गोद में सहेज रखी पोटली की ओर इशारा करता हुआ बोला, "इस माटी के माथे को हर सुबह इस माटी पर टिकाऊँगा तो देश के प्रति जिम्मेदारी का अहसास बना रहेगा!"

मनोहर से बातचीत

"यह वाहियात हरकत करने की क्या जरूरत आ पड़ी तुझे ?"

"वाहियात हरकत! मतलब ?"

"वही तो मैं भी जानना चाहता हूँ! मतलब क्या है इस दूसरे नाम का ?"

"एक पैगंबर का नाम है, जो···।"

"तुम्हारा अपना नाम क्या है ?"

"मनोहर!"

"इसका मतलब पता है ?"

"मन को हरने वाला!"

"यह जो दूसरा नाम तूने रखा है, उसके मुकाबले कहाँ से कमतर है यह ?"

"चचाजान, क्यों बात का बतंगड़ बना रहे हैं!" किलसकर मनोहर बोला, "यूसुफ ने दिलीप नाम रख लिया था तो किसी को मिर्ची नहीं लगी! मनोहर ने यूसुफ रख लिया तो पहाड़ टूट पड़ा!"

"उन दिनों यूसुफ नाम से बिजनेस नहीं मिलता था, इसलिए वह दिलीप बना! कोई दिलीप उन दिनों यूसुफ बना हो तो बता? आज तो वैसी हालत है ही नहीं। आज अमिताभ से, अक्षय से, अजय से कम काम सलमान को, शाहरुख को, आमिर को नहीं मिल रहा है। मजहबी नाम का दबाव आज है ही नहीं।"

"चचा, मैं फिल्मी दुनिया की नहीं, शायरी की, अदब की दुनिया का आदमी हूँ! यहाँ यही तखल्लुस चलता और फलता-फूलता है। गुलजार को देख लो।"

"शायरी में भी वे दिन गए बेटा, जब आनंद नारायण को 'मुल्ला' होना जरूरी लगता था!"

"मुल्ला उनका पारिवारिक उपनाम था चचा, अदबी तखल्लुस नहीं था!"

"गुलजार की बात की तूने। वह भी तो पुराने ही जमाने का आदमी है! लेकिन, संपूरन रहकर वह कुछ खराब लिखता क्या? गजल में भी अब आनंद नारायण ज्यादा बोलता है, मुल्ला कम। इसलिए मेरी सलाह है कि तू आधा तीतर आधा बटेर मत बन। मनोहर है, मनोहर ही रह।"

साअ

एफ-१७०३, आर जी रेजीडेंसी,
सेक्टर-१२०, नोएडा-२०१३०१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ८८२६४९९११५

स्वच्छता का महत्त्व एवं संपोषित भविष्य के लिए स्वास्थ्य स्वच्छता

• प्रेमलता देवी

स्वच्छता व स्वास्थ्य का आपस में अभिन्न संबंध है। स्वच्छता जहाँ साधन है तो उसका लक्ष्य है स्वास्थ्य। सर्वप्रथम हम स्वास्थ्य या स्वस्थ पर विचार करते हैं। स्वस्थ दो शब्दों के संयोग से बनता है—स्व+स्थ, अर्थात् जो स्वयं में स्थित हो। इसका तात्पर्य यह है कि वह अवस्था, जिसमें व्यक्ति अपने मूल रूप में स्थित हो, स्वास्थ्य कहलाता है।

प्रचलित चिकित्सा पद्धतियों में स्वास्थ्य की कोई सर्वमान्य परिभाषा नहीं दी गई है। साधारणतया यह माना जाता है कि किसी प्रकार का शारीरिक और मानसिक रोग न होना ही स्वास्थ्य है। यह एक नकारात्मक परिभाषा है, परंतु सत्य के निकट होते हुए भी यह पूरी तरह सत्य नहीं। वास्तव में स्वास्थ्य का सीधा संबंध क्रियाशीलता से है। जो व्यक्ति शरीर और मन से पूरी तरह क्रियाशील है, उसे ही पूर्ण स्वस्थ कहा जा सकता है। कोई रोग हो जाने पर क्रियाशीलता में कमी आती है, इसलिए स्वास्थ्य भी प्रभावित होता है। आचार्य सुश्रुत अपने ग्रंथ 'सुश्रुत संहिता' के (सूत्र-१५/४५) में इसकी सम्यक् परिभाषा करते हुए कहते हैं कि जब त्रिदोष (वात, पित्त, कफ), सप्तधातु (रस, रक्त, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा, शुक्र) तथा १३ अग्नियों (५ भूताग्नि, ७ धात्वाग्नि, १ जठराग्नि) सम अवस्था में हों और इंद्रियों, मन व आत्मा प्रसन्न हो, वही स्वास्थ्य है। (सम दोषः समाग्निश्च समधातु मल क्रिया, प्रसन्नात्म इंद्रिय मनाः स्वस्थ इत्याभि धीयते)।

चूँकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन के दो पहलू होते हैं—व्यक्तिगत व सामाजिक। इस तरह उसका व्यक्तिगत जीवन सामाजिक जीवन का ही अंग होता है, अतः उस पर दोनों पक्षों को संतुलित बनाए रखने का दायित्व भी होता है। यह तभी हो सकता है, जब उसका शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक व सामाजिक पक्ष दृढ़ हो और यह तभी संभव है, जब उसका शरीर, मन, इंद्रियाँ आत्मभाव से संतुलित होकर कार्य करें। इस प्रकार हम देखते हैं कि स्वास्थ्य का आशय सिर्फ बीमारियों की अनुपस्थिति ही नहीं, बल्कि इसका संबंध आनेवाली सभी शारीरिक, वैचारिक, भावनात्मक व सामाजिक चुनौतियों के प्रबंधन से है, जिससे व्यक्तिगत व सामाजिक जीवन निरापद व सुखमय हो सके। चरक संहिता (सूत्र-१/१५) में सूत्रवत् यह कहा गया है कि स्वास्थ्य, पुरुषार्थ चतुष्ट्य का मूल माध्यम है (धर्मार्थ काम मोक्षाणाम् आरोग्यं मूलं उत्तम)।

भारत एक प्राचीन राष्ट्र है और इसकी अपनी लोक हितकारी परंपराएँ भी हैं। लाखों-करोड़ों वर्षों की लंबी परंपरा वाले इस राष्ट्र की स्वास्थ्य संचेतना व प्रणाली भी विलक्षण रही है, जो कि यहाँ के स्थानीय परिवेश, पारिस्थितिकी और लोगों के अनुकूल रही है। यह प्रणाली है आयुर्वेद की। आयुर्वेद अन्य चिकित्सा पद्धतियों की तरह रोगों के होने पर उसकी चिकित्सा करने तक अपने को सीमित नहीं करता है, वरन् वह नीरोग रहने के सभी उपायों का भी निर्देश देता है। अपने इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर आयुर्वेदाचार्यों ने औषधियों का ही अन्वेषण नहीं किया, अपितु लोक के सामने एक आदर्श जीवन-शैली का दृष्टांत भी प्रस्तुत किया, जिसके पालन द्वारा व्यक्ति स्वस्थ रहकर दीर्घजीवन को प्राप्त कर सकता है। आयुर्वेद द्वारा निर्देशित जीवन-शैली में दिनचर्या रात्रिचर्या-ऋतुचर्या के नियमों का पालन, भोजन-पान-व्यायाम-योग, स्नान, निद्रा, व्रत आदि का सविधि व उपयुक्त प्रयोग, हितकर आहार-विहार, विरुद्ध आहार, स्वच्छतापूर्ण संयमित जीवन-शैली, ऋतुजन्य रोगों से बचे रहने का उपाय आदि का विस्तृत निर्देश सम्मलित है। इसी से अभिप्रेरित होकर महाकवि भास ने किस माह में क्या न खाने से रोग की संभावनाएँ बहुत हद तक कम हो सकती हैं, को एक कविता के माध्यम से लोक के समक्ष रखा—"चैते गुड़ बैसाखे तेल, जेठे पंथ असाढ़े बेल, सावन साग न भादों दही, क्वार करेला कार्तिक मही, अगहन जीरा पूषे धना, माघे मिसरी फागुन चना, जो ये बारह देय बचाय, ता घर वैद्य कभो न जाय।" शास्त्रों के अनुसार कार्तिक माह में नियमित रूप से कच्चे केले की सब्जी का सेवन करने से शरीर की रोग प्रतिरोधात्मक क्षमता पूरे वर्ष तक अक्षुण्ण बनी रहती है। स्वस्थ रहना सबसे बड़ा सुख है। कहावत भी है—"पहला सुख निरोगी काया।" कोई आदमी तभी अपने जीवन का पूरा आनंद उठा सकता है, जब वह शारीरिक और मानसिक रूप से स्वस्थ रहे। ऋषियों ने

सहायक आचार्य, हिंदी अध्ययन केंद्र, केंद्रीय विश्वविद्यालय गुजरात, गांधीनगर। सेंट्रल यूनिवर्सिटी इलाहाबाद से पी-एच.डी., ८ वर्षों का अध्यापन अनुभव। राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय स्तर पर २८ लेख प्रकाशित। लगभग ३५ सेमिनार में सहभागिता। एक पुस्तक 'कश्मीर का सांकृतिक एवं ऐतिहासिक महत्त्व : एक दृष्टि' प्रकाशित। संप्रति विश्वविद्यालय की कई शैक्षणिक कमेटियों की जिम्मेदारी।

कहा है—शरीरमादयं खलु धर्मसाधनम्, अर्थात् यह शरीर ही धर्म का श्रेष्ठ साधन है। स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। इसलिए मानसिक स्वास्थ्य के लिए भी शारीरिक स्वास्थ्य अनिवार्य है और इसके लिए आयुर्वेद व अन्य शास्त्रों में बताए गए दिशा-निर्देशों के अनुरूप स्वच्छता के प्रति सचेष्ट रहना नितांत अपरिहार्य है।

स्वच्छता का अर्थ है—सफाई से रहने की आदत। सफाई से रहने से जहाँ शरीर स्वस्थ रहता है, वहीं स्वच्छता तन और मन दोनों की खुशी के लिए आवश्यक है। भारतीय पर्व व त्योहारों में दीपावली का पर्व विशेषतया स्वच्छता से ही संबंधित है। हम सभी इस अवसर पर घर व घर के सभी सामानों तथा आसपास के सभी जगहों की साफ-सफाई कर अनुपयोगी हो चुकी चीजों को कबाड़ी बुलाकर बेच कुछ धन लक्ष्मी के आगमन के रूप में संचय कर रख लेते हैं। स्वच्छता सभी लोगों को अपनी दिनचर्या में अवश्य ही शामिल करनी चाहिए।

जीवन में स्वच्छता से तात्पर्य स्वस्थ होने की अवस्था से भी है। स्वच्छता एक अच्छी आदत है, जो हमारे जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाती है। यह हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारे लिए शरीर की भी स्वच्छता बहुत जरूरी है, जैसे प्रतिदिन सुबह-सबेरे उठने के बाद नित्य क्रिया से निवृत्त होकर योग, व्यायाम करना, नहाना, स्वच्छ कपड़े पहनना, प्राणायाम व ध्यान करना, पौष्टिक अल्पाहार लेना आदि। शरीर व मन परस्पर संबंधित हैं और एक के अस्वस्थ होने से दूसरे का अस्वस्थ हो जाना स्थापित सत्य है। चरक संहिता व वाग्भट्ट द्वारा रचित 'अष्टांग हृदय' में ब्रह्ममुहूर्त में जगने से लेकर रात्रि के प्रथम प्रहर में सोने के महत्त्व के साथ दिनचर्या की वैज्ञानिक दृष्टि से की गई अचूक व्यवस्था का उदाहरण किसी भी अन्य चिकित्सा पद्धति में नहीं मिलता है। इसी तरह नियमित स्नान के महत्त्व को बताते हुए भारतीय शास्त्रों में कहा गया है कि स्नान से "काया पवित्रं कुर्यात, मनसा निर्मलं शुचि।" यही नहीं, बल्कि सभी अनुष्ठानों में हमारा पवित्रीकरण जल की आचमनी से व सभी संकल्प बिना हाथ में शुद्धतम जल लिये पूर्ण नहीं होता है। इन्हीं कारणों से जल के सभी स्रोतों को स्वच्छ रखने के साथ-साथ नदियों में गंदगी डालने के स्थान पर ताँबे के सिक्के फेंकने की प्रथा रही, कारण हमारे पूर्वजों को यह ज्ञात था कि ताँबा एक जलशोधक धातु है। अष्टांग योग में भी शरीर व मन को स्वस्थ व सुदृढ़ बनाए रखने के लिए प्रारंभ के चार अंगों, यथा—यम, नियम, आसन व प्राणायाम का निर्देश किया गया है। प्राणायाम में ईडा (चंद्र नाड़ी) व पिंगला (सूर्य नाड़ी) अर्थात् बाएँ व दाहिने नाक छिद्रों से श्वास-प्रश्वास की क्रिया के माध्यम से मेरुदंड के मध्य स्थित सुषुम्ना नाड़ी को सक्रिय कर इसके सातों चक्रों मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा चक्रों से होते हुए ऊर्जा को सहस्त्रार तक पहुँचाकर सुसुप्त कुंडली शक्ति को जाग्रत् कर अतींद्रिय ज्ञान को समझा जा सकता है। पौष्टिक व शुद्ध सात्त्विक आहार की विशेषता को बताते हुए छांदोग्य उपनिषद् (७/२६/२) में कहा गया है कि "आहार शुद्धौ चित्त शुद्धि, चित्त शुद्धि धुवा स्मृति।" इन सभी का पालन करने से न केवल स्वास्थ्य ठीक रहता है, बल्कि रोगों के संक्रमण से भी सुरक्षित बचा जा सकता है।

जीवन में स्वच्छता से तात्पर्य स्वस्थ होने की अवस्था से भी है। स्वच्छता एक अच्छी आदत है, जो हमारे जीवन की गुणवत्ता को बढ़ाती है। यह हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अंग है। हमारे लिए शरीर की भी स्वच्छता बहुत जरूरी है, जैसे प्रतिदिन सुबह-सबेरे उठने के बाद नित्य क्रिया से निवृत्त होकर योग, व्यायाम करना, नहाना, स्वच्छ कपड़े पहनना, प्राणायाम व ध्यान करना, पौष्टिक अल्पाहार लेना आदि।

महर्षि वेदव्यास ने महाभारत में लिखा है कि मनुष्य से श्रेष्ठतर कोई भी नहीं है (न हि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्)। दुर्भाग्य से जिसे श्रेष्ठतर प्राणी कहकर जैविक सृष्टि का संरक्षक माना गया, वही लाभ-लोभ की भोगवादी मानसिकता का शिकार हो धरती के प्राकृतिक तंतुओं के सामंजस्य को अस्थिर करने की भूमिका में लिप्त हो स्वयं के मरण के वरण में ही विकास व समृद्धि की मृगमरीचिका का गर्व अनुभव करने लगा है। पाश्चात्य अवधारणाओं पर विकसित कृत्रिम अभियांत्रिक कल-करखानों व आटोमोबाइल की बहुतायत से निसृत विषाक्त गैसों व एअर कंडीशनों के अतिशय प्रयोग से निकलने वाले मीथेन गैसों के परिणामस्वरूप ओजोन परत में बने छिद्रों से कास्मिक विकिरणों का प्रवेश जीका वायरस, इबोला, निपाह, मैडकाऊ, बर्ड फ्लू, स्वाइन फ्लू, चिकनगुनिया, डेंगू जैसे नई व असाध्य बीमारियों के रूप में मानव जीवन संकटग्रस्त कर रहा है। वहीं औद्योगिक कचरों, शहरों के वाहित मल, अपमार्जक तथा कृषि में प्रयुक्त रासायनिक पदार्थों के अपशिष्ट व कीटनाशकों से जलचक्र व खाद्यान्न विषाक्त हो रहे हैं। प्लास्टिक व इलेक्ट्रॉनिक गैजटों के कचरों से क्रमश: निकलने वाले कैंसरजनित बी पी ए व बैरियम हवा में मिश्रित होकर सार्वभौमिक संकट उत्पन्न कर रहे हैं।

इन्हीं कारणों से चिंतित हो वैज्ञानिकों ने चेतावनी दी है कि यदि स्थिति में सुधार नहीं किया गया तो आगामी दो शताब्दियों के भीतर धरती जीवन के अनुकूल नहीं रह जाएगी। अत: ऐसी आत्मघाती परिस्थिति से निपटने के लिए मात्र आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा सांस्कृतिक संचेतनाओं की ही नहीं, बल्कि इसके साथ-साथ व्यक्ति को अपने मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक चिंतन द्वारा स्वास्थ्य व स्वच्छता के प्रति भी सजग होना; तभी जाकर हम समवेत भाव से आसन्न संकट से अपने को उबार पाने में तथा स्वच्छता के आधार पर विकसित स्वास्थ्यवर्धक संपोषित भविष्य के लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल हो पाएँगे।

"अपनी हिफाजत हमें अब खुद ही करनी है,
इस दौर में अबाबील की लश्कर नहीं आने वाली।"

सहायक आचार्य,
हिंदी अध्ययन केंद्र,
केंद्रीय विश्वविद्यालय,
गांधीनगर (गुजरात)

दो बूढ़े

● राकेश भ्रमर

दिसंबर की वह एक सर्द शाम थी। थोड़ी देर पहले हल्की बूँदाबाँदी हुई थी, इसलिए ठंडक कुछ अधिक बढ़ गई थी। इसके बावजूद धवन साहब पार्क में टहलने आए थे। घर में बैठकर भी क्या करते ? अकेले में टी.वी. कितनी देर देखते। आँखों पर जोर पड़ता था। लिहाजा मौसम खराब होते हुए भी पार्क में आ गए थे। चार चक्कर लगाकर एक बेंच पर बैठकर आराम करने लगे थे।

आज पार्क में टहलने वाले इक्का-दुक्का व्यक्ति ही थे। उनके मित्र नहीं आए थे। सभी घर-बार और बाल-बच्चे वाले थे। गरम-गरम पकौड़ियों के साथ भाप छोड़ती चाय का मजा ले रहे होंगे। बाल-बच्चे वाले तो धवन साहब भी थे, परंतु उनसे इतनी दूर थे कि न होने के बराबर थे। पत्नी भी साथ छोड़ गई थी।

धवन साहब बेंच पर बैठकर इधर-उधर देख रहे थे। खराब मौसम के कारण पार्क में कोई रौनक नहीं थी, परंतु ठंडी हवा के साथ मिट्टी की सोंधी खुशबू हृदय को आह्लादित कर रही थी। धवन साहब प्रकृति की छटा का आनंद लेकर मन-ही-मन विभोर हो रहे थे कि उनकी नजर सामने की बेंच पर बैठे एक अपरिचित बुजुर्ग के ऊपर जाकर टिक गई।

वह बुजुर्ग कुर्ते-पाजामे के ऊपर एक सदरी डाले हुए थे। अंदर गरम कपड़े थे या नहीं, इसका अंदाजा धवन साहब नहीं लगा सके। उनकी बगल में एक पुराना एयरबैग रखा हुआ था। इससे पता चलता था कि बुजुर्गवार कहीं बाहर से आए थे और अभी अपने गंतव्य तक नहीं पहुँचे थे।

धवन साहब की पारखी नजरों ने पहचान लिया कि वह बुजुर्ग कुछ परेशान से हैं। वह बार-बार भटकी हुई निगाहों से इधर-उधर ताक रहे थे। फिर हाथ में पकड़े मोबाइल को देखते, कोई नंबर डायल करते, परंतु उधर से कोई उत्तर न पाकर पहले से अधिक उदास हो जाते।

ऐसा लग रहा था, थकान और उदासी ने उनके शरीर को अत्यधिक पस्त कर दिया है। चेहरा बर्फ की तरह सफेद पड़ गया था। धवन साहब को उनके ऊपर दया आ गई। शायद वह किसी मुसीबत में हैं। वह उनके बारे में जानने के लिए उत्सुक हो उठे। शायद उनकी कुछ मदद कर सकें।

अपनी बेंच से उठकर वह उस बुजुर्ग की बेंच के पास आए। दो क्षण तक उनको निहारते रहे, फिर बेंच के एक किनारे बैठ गए। उस बुजुर्ग ने धवन साहब की तरफ ध्यान नहीं दिया। वह इतना परेशान थे कि उन्हें अपने आसपास की स्थिति का कुछ भी पता नहीं चल रहा था।

कुछ देर तक धवन साहब उनकी गतिविधियों को देखते रहे। फिर

सुपरिचित साहित्यकार। 'जंगल बबूलों के', 'हवाओं के शहर में' (गजल-संग्रह), 'उस गली में' (उपन्यास), 'अब और नहीं' (कहानी-संग्रह)। 'प्राची' मासिक पत्रिका का संपादन। पत्र-पत्रिकाओं में सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। दूरदर्शन लखनऊ तथा आकाशवाणी रामपुर, जबलपुर और मुंबई से रचनाओं का प्रसारण। संप्रति केंद्र सरकार में अधिकारी।

बातचीत का सिलसिला शुरू करते हुए पूछा, "माफ करना भाई, आप कुछ परेशान-से लग रहे हैं।"

वह बुजुर्ग चौंके। पलटकर उनकी तरफ देखा। वह सहम से गए थे। उनकी आँखों में आश्चर्यमिश्रित भय पसरा हुआ था। उन्हें लगा, सामने कोई चोर-उचक्का तो नहीं था।

धवन साहब मुसकराते हुए बोले, "डरो नहीं भाई, मैं कोई चोर-उचक्का नहीं हूँ। पास की सोसायटी में रहता हूँ। सुबह-शाम पार्क में टहलने आता हूँ। आज मौसम खराब होने के कारण मेरे साथी नहीं आए। मैं अकेला हूँ। आपको परेशान हालत में यहाँ बैठे देखा तो आपके पास चला आया। अगर आपको उचित लगे, तो अपनी परेशानी बताइए। शायद मैं कुछ मदद कर सकूँ।"

धवन साहब का व्यक्तित्व प्रभावशाली था। उनकी वाणी में मधुरता थी। उनके आश्वासन भरे शब्द सुनकर उस बुजुर्ग के चेहरे पर तनाव के चिह्न कुछ कम हुए। आँखों में आशा की एक किरण-सी चमकी।

वह एकटक धवन साहब की आँखों में देखते रहे। विश्वास-अविश्वास के बीच झूलते हुए वह सोच रहे थे, बताएँ या न बताएँ, परंतु किसी को बताए बिना उनकी परेशानी दूर भी नहीं हो सकती थी। उन्हें सचमुच इस समय किसी की मदद की आवश्यकता थी।

"बताइए, बताइए, संकोच मत करिए। मनुष्य-ही-मनुष्य के काम आता है।" कहते हुए धवन साहब की मुसकराहट और गहरी हो गई।

बुजुर्ग को लगा, उसके सामने कोई फरिश्ता बैठा है, जो अपनी प्यारी मुसकान से उन्हें सम्मोहित करता जा रहा है। इस फरिश्ते के सामने वह अपनी परेशानी बयान कर सकते हैं। क्या पता, यही उनको परेशानी से मुक्ति दिला दे। भगवान् और फरिश्ते किसी भी रूप में मनुष्य के सामने आ सकते हैं। वह तो न जाने कितनी देर से अपने बेटों और भगवान् को याद कर रहे थे।

सामने बैठा व्यक्ति भगवान् न भी हो, तब भी उसके सामने अपना

दुखड़ा रोने में कोई हर्ज नहीं था। मदद नहीं करेगा, तो भी उनका कोई नुकसान नहीं होने वाला। वह तो पहले से ही परेशान हैं। अपनी परेशानी बताकर कुछ तो दु:ख कम होगा। क्या पता, उन्हें रात भर ठहरने का सहारा ही मिल जाए। कल सुबह फिर से अपनी यात्रा आरंभ करेंगे।

बुजुर्ग ने रुकते-रुकते रुँधे स्वर में धवन साहब के सामने अपनी जो व्यथा-कथा बयान की, उसका सार-संक्षेप यह है।

बुजुर्ग का नाम हरीओम था। वह बुंदेलखंड क्षेत्र के महोबा जिले के रहने वाले थे। रिटायर्ड प्रधानाध्यापक थे। शिक्षा के प्रति रुचि थी, अत: अपने दोनों बेटों और इकलौती बेटी को उचित शिक्षा प्रदान की थी। बेटों और बेटी की शादियाँ हो गई थीं। बेटी अपने पति के साथ बेंगलुरु में रहती है। दोनों बेटे इंजीनियर हैं और नोएडा में अलग-अलग कंपनियों में नौकरी करते हैं तथा अपने-अपने परिवार के साथ वसुंधरा में रहते हैं। रहते तो अलग हैं, परंतु उनके फ्लैट पास-पास ही हैं। वे अपनी पत्नी के साथ महोबा में पुश्तैनी मकान में रहते हैं।

कुछ समय पश्चात् पत्नी की एक गंभीर बीमारी में मृत्यु हो गई। वृद्धावस्था में पत्नी के साथ छोड़ जाने से वह नितांत अकेले रह गए। बेटी साल-छह महीने में आ जाती और कुछ दिन उनके साथ रहती। तब उन्हें लगता, जीवन बहुत सुखमय है, परंतु बेटी के जाते ही आँगन सूना हो जाता। उनके जीवन में पतझड़ का मौसम आ जाता। तब उन्हें लगता, सुख उनके जीवन का स्थायी अंग नहीं है। पतझड़ ही स्थायी है और यही अंत तक उनका साथ देगा।

दोनों बेटे बहुत कम महोबा आते थे। दिल्ली-नोएडा जैसे सुख वहाँ कहाँ थे—भीषण गरमी, वर्षा का अभाव, बिजली की आँख-मिचौली आदि ऐसी समस्याएँ थीं, जिनको झेलना महानगरों के लोगों के वश का नहीं था। भले ही उन्होंने अपना बचपन गाँवों में व्यतीत किया हो। यही हरीओम के बेटे-बच्चों के साथ था। उन्हें समस्याओं से ग्रसित अर्ध-शहरी जीवन पसंद नहीं था।

एकाकी जीवन एक बीमारी के समान होता है। जब मनुष्य के आस-पास कोई सगा-संबंधी नहीं होता, तो दिन उदासी से भरे होते हैं, रातों का अँधेरा साँप की तरह डसता है और मनुष्य तिल-तिल कर घुटता हुआ मृत्यु की ओर अग्रसर होता रहता है।

ऐसा एकाकी जीवन किसी वृद्ध व्यक्ति का हो तो उसके लिए और अधिक कष्टदायक हो जाता है। वृद्धावस्था में बीमारियाँ भी धूल के छोटे कणों की तरह मनुष्य के शरीर में प्रवेश करती रहती हैं, जो खुली आँखों से दिखाई तो नहीं पड़तीं, परंतु शरीर को अंदर-ही-अंदर दीमक की तरह खाती रहती हैं। हरीओम के साथ भी ऐसा ही हो रहा था। आए दिन डॉक्टर के क्लीनिक में बैठे रहते थे।

बुढ़ापे का शरीर, कहाँ तक बीमारियों से लड़ता। दवाइयों के साथ पौष्टिक भोजन भी आवश्यक था। वह अकेले थे, जैसे-तैसे खाना बना लेते थे। उनके लिए खाना खाना न खाने के बराबर था। ऐसे में हरीओम का शरीर अशक्त हो गया था। बीमारी और सांसारिक झंझटों को झेलने में वह स्वयं को असमर्थ पा रहे थे। हारकर दोनों बेटों को फोन किया और अपनी हालत बताई, तो दोनों ने एक सुर में कहा, 'दिल्ली आ जाओ। यहाँ इलाज करवा देंगे।'

'मैं अकेला कैसे आ पाऊँगा? तुम दोनों में से कोई यहाँ आ जाए तो साथ चल पड़ूँगा।' उन्होंने दीन स्वर में कहा।

दोनों बेटों ने अपनी व्यस्तता का बहाना बनाया और उदासीन भाव से कहा कि किसी तरह आ जाओ। उनमें से कोई एक बेटा स्टेशन पर लेने आ जाएगा। बेटों की उदासीनता से उनके दिल को धक्का लगा। क्या वे नहीं चाहते थे कि मैं उनके पास दिल्ली जाऊँ। परंतु बहुत ज्यादा उन्होंने इस पर ध्यान नहीं दिया।

स्वास्थ्य कुछ अच्छा हुआ, तो उन्होंने हिम्मत बाँधी और दिल्ली के लिए प्रस्थान कर दिया। हरीओम ने फोन पर दोनों बेटों को गाड़ी का नाम तथा दिल्ली पहुँचने का समय भी बता दिया था।

आज सुबह वह निजामुद्दीन स्टेशन पर उतरे थे। स्टेशन पहुँचने के पहले ही उन्होंने बेटों से बात करने की कोशिश की, परंतु उनके फोन बंद थे। सुबह से वह लगातार दोनों बेटों को फोन मिला रहे थे, परंतु न तो उनके फोन मिल रहे थे, न उनको स्टेशन पर लेने के लिए कोई आया। उनके पास बेटों का पूरा पता भी नहीं था। आधुनिक युग में चिट्ठी-पत्री लिखने का चलन समाप्त हो गया है। उन्हें बस इतना पता था कि वह वसुंधरा में कहीं रहते हैं। फोन का ही आसरा था, वह भी नहीं मिल रहा था। दोनों बेटों के फोन बंद थे, यह अस्वाभाविक बात थी। फिर भी उनके मन में एक बार भी नहीं आया कि बेटों ने जान-बूझकर फोन बंद कर रखे हैं।

एक तो बूढा और बीमार शरीर, ऊपर से बेटों के न आने से मानसिक कष्ट···उनके दिल पर पत्थरों का बोझ रखा हुआ था। वह बिना खाए-पिए कई घंटे स्टेशन पर बेटों का इंतजार करते रहे। वह अत्यधिक अवसादग्रस्त हो गए थे। दोपहर तक वह पूरी तरह से हताश और निराश हो गए थे। उनकी सोचने-समझने की शक्ति समाप्त हो चुकी थी। शरीर तो पहले से ही अशक्त था। सोच रहे थे, व्यर्थ ही दिल्ली आया। अपने घर में था, तो अड़ोसी-पड़ोसी हाल-चाल पूछ लेते थे और यथासंभव मदद कर भी देते थे। अगर उनको कुछ हो जाता, तो भी परिजनों की तरह मेरी अंतिम यात्रा में सम्मिलित होते। दाह-संस्कार कर देते। मेरे मृत शरीर को सड़ने न देते, परंतु इस महानगर में दो सुखी-संपन्न बेटों के होते हुए भी मेरे लिए मरने का कोई ठौर नहीं है।

दोपहर बाद स्टेशन से बाहर निकले। उन्हें पता नहीं था, कहाँ और किधर जाना है। किसी तरह पूछते-पूछते मयूर विहार के इस पार्क तक पहुँचे थे। यहाँ बैठकर भी वह बार-बार बेटों से फोन पर संपर्क करने की

कोशिश कर रहे थे। उनकी समझ में नहीं आ रहा था, अगर किसी तरह पूछते-पूछते वह वसुंधरा तक पहुँच भी गए, तो क्या बेटों के फ्लैट ढूँढ़ पाएँगे और अगर ढूँढ़ भी लिया, तो क्या बेटे और बहुएँ उन्हें अपने घर में स्वीकार कर पाएँगे। वह तो जीते-जी मर गए थे।

जैसे-जैसे दिन ढलता जा रहा था, वैसे-वैसे हरीओम का मन बेटों की ओर से खट्टा होता जा रहा था। अब उनके पास जाने का मन नहीं था। वह घर लौट जाने के बारे में विचार कर ही रहे थे कि धवन साहब ने आकर उनके भीगे हुए मन पर अपने शब्दों के नरम फाहे रख दिए थे।

धवन साहब ने बुजुर्ग के कंधे पर हाथ रखते हुए कहा, "निराश न हो भाई, कमोबेश मेरी भी वही हालत है, जैसी आपकी है। इस देश के ज्यादातर बुजुर्गों की यही हालत है। परिवार और बेटों के होते हुए भी वे एकाकी जीवन व्यतीत करते हैं। धन उनको सुख नहीं देता, तो परिवार भी साथ नहीं देता। बूढ़ा व्यक्ति करे तो क्या करे?"

हरीओम ने भीगी आँखों से धवन साहब के चेहरे को देखा, वहाँ हल्की मुसकान थी। उस मुसकान में एक अद्‌भुत मिठास थी। हरीओम को लगा, जैसे उनका कोई सगा-संबंधी मिल गया हो। उनकी आँखों में आशा की चमक जाग उठी। उन्होंने उत्साह से पूछा, "क्या आप मुझे मेरे बेटों के घर पहुँचा सकते हैं?"

"कोई फायदा नहीं होगा, दोस्त," धवन साहब ने उनके कंधे को हल्के से दबाते हुए सांत्वना भरे स्वर में कहा, "आपके बेटे आपको अपने घर नहीं ले जाना चाहते। अब तक आपको यह बात समझ आ जानी चाहिए थी।"

यह सुनकर हरीओम का दिल डूब गया। बोले, "यह आप कैसे कह सकते हैं? उन्होंने ही मुझे दिल्ली बुलाया था।"

"हाँ, बुलाया होगा, परंतु बाद में उन्होंने ठंडे दिमाग से सोचा होगा और अपनी-अपनी पत्नियों से विचार-विमर्श किया होगा। उनके घर में कलह हुई होगी। सबको लगा होगा कि आप उनके लिए बहुत बड़ा बोझ हैं। वह अपनी नौकरी करेंगे कि आपको लेकर अस्पतालों के चक्कर लगाएँगे। घर में रहेंगे तो कौन आपकी तीमारदारी करेगा। इन्हीं सब बातों से उनके मन में आपके लिए विरक्ति का भाव जागा होगा और अंततः उन्होंने आपको आपकी नियति के भरोसे छोड़ देने का निर्णय लिया होगा।"

"क्या मेरे बेटे मेरे बारे में इस तरह सोचते होंगे?" लगा कि हरीओम की आवाज किसी अँधेरे कुएँ से आ रही है।

"हाँ, मैं अपने अनुभव के आधार पर कह रहा हूँ। इसमें रत्ती भर भी झूठ नहीं है। लेकिन आपके बेटों की इस सोच में आपकी बहुओं की घटिया सोच का तड़का है। बेटे अकेले होते तो कभी आपके बारे में ऐसा नहीं सोचते। परंतु आप इस बारे में अब बहुत अधिक मत सोचिए। इससे आपको ही दुःख होगा।"

"तो अब मैं क्या करूँ?" वह रोंआसे-से हो गए।

"आप निराश न हों। मनुष्य के लिए भगवान् कभी सारे रास्ते बंद नहीं करता है। वह एक रास्ता बंद करता है, तो दूसरा खोल देता है। परंतु कई बार हम दूसरे रास्ते को नहीं देख पाते और हताशा-निराशा भरे क्षणों में केवल बंद दरवाजे को ही देखते रहते हैं। तभी हम गलत निर्णय ले लेते हैं।"

बुजुर्ग हरीओम ने धवन साहब को इस तरह देखा, जैसे पूछ रहे हों कि उनके लिए कौन सा दूसरा रास्ता खुला है।

धवन साहब ने कहा, "मैं आपसे केवल इतना कह सकता हूँ, मैं भी अकेला हूँ और आप भी। मेरे पास तीन कमरों का फ्लैट है, रहने और खाने की कोई समस्या नहीं है। घर का काम करने और खाना बनाने के लिए सुबह-शाम एक बाई आती है। आपको एतराज न हो तो कुछ दिन मेरे साथ रहो। हम दोनों को एक-दूसरे का सहारा मिलेगा तो एकांत का सूनापन खुशियों में बदल जाएगा। सुख-दुःख की बातें करते हुए हम दिन काट लेंगे।"

हरीओम दुविधा में पड़ गए, वह तो केवल कुछ दिनों के लिए दिल्ली में रहने के लिए आए थे। महोबा में उनका घर-बार है। लौटकर जाना ही होगा।

धवन साहब उनकी दुविधा भाँप गए। बोले, "मैं आपको सदा के लिए नहीं रोकूँगा। आप स्वस्थ हो जाएँ। आपकी शारीरिक और मानसिक स्थिति ठीक हो जाए, तो भले चले जाएँ। बेटों का पता चलेगा, तो मैं आपको उनके पास भेजने की व्यवस्था भी करा दूँगा, वरना आप अपने गाँव जाने के लिए स्वतंत्र हैं; परंतु अभी आपको कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। आप अकेले रहने की स्थिति में नहीं हैं।"

हरीओम इतना ज्यादा थके और परेशान थे कि उन्हें धवन साहब में एक फरिश्ता नजर आ रहा था। फिर भी मन में संकोच था कि उनके साथ कैसे रहेंगे? कुछ पलों की ही तो जान-पहचान है। दुविधावश पूछा, "परंतु आपका परिवार?"

"बताया न, मैं अकेला रहता हूँ।"

"घर-परिवार में कोई नहीं है?"

धवन साहब हँसकर बोले, "सब हैं, परंतु साथ में कोई नहीं रहता। अभी आप अपने दिमाग पर ज्यादा जोर मत डालिए। धीरे-धीरे मेरे घर-परिवार के बारे में सबकुछ आपको पता चल जाएगा। मैं सबकुछ बताऊँगा आपको, परंतु अभी घर चलिए। आपको भोजन और आराम की आवश्यकता है।" उन्होंने हरीओम का हाथ पकड़कर उठाने का प्रयास किया।

दुःखी और परेशान व्यक्ति स्वयं कुछ करने की स्थिति में नहीं होता। जो भी उससे प्यार के दो शब्द बोलता है, वह उसी का हो जाता है। हरीओम के सगे बेटों ने एक तरह से उन्हें त्याग दिया था, त्याग ही नहीं, बल्कि नदी की तेज धारा में जीवित बहा दिया था। यह तो उनका सौभाग्य था कि भँवर में डूबकर मरने के पहले ही धवन साहब ने एक फरिश्ते की तरह प्रकट होकर उन्हें बचा लिया था।

वह लगभग कराहते हुए उठे और बैग को कंधे पर टाँगकर धीमे कदमों से धवन साहब के साथ उनके फ्लैट की ओर चल पड़े, जैसे अपने घर जा रहे हों।

साअ

९६-सी, प्रथम तल,
डी.डी.ए. फ्लैट्स, पॉकेट-४,
मयूर विहार, फेज-१, दिल्ली-११००९१
दूरभाष : ९९६८०२०९३०

ब्रजलोक की लघुकथाओं में सामाजिक चेतना

• हरदेव 'निमौतिया'

ब्रज का गद्य लोकसाहित्य लोक द्वारा रचित वह साहित्य है, जो लोक-जीवन को पूरी आस्था और विश्वास के साथ उसके प्राचीनतम रूपों की रक्षा करता हुआ कहानी एवं कथा रूप में अभिव्यक्त हुआ है। लघु कथाएँ ब्रज के गद्य लोकसाहित्य का एक बड़ा भाग हैं। ब्रज क्षेत्र में लघु लोककथाएँ इतनी लोकप्रिय रही हैं कि यहाँ कथा में से कथा निकालते हुए शृंखलाबद्ध रूप से कथाएँ सुनने व सुनाने की परंपरा रही है। ब्रज प्रदेश की लघु लोककथाएँ एवं कहानियाँ प्राय: समस्त दैनिक कार्यों से निवृत्ति पाकर शयन के समय सुनी और सुनाई जाती थीं। समाज के अलिखित संविधान के रूप में प्रचलित पारंपरिक संस्कारों, मान्यताओं, धारणाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पहुँचाने का एक प्रभावशाली साधन भी रही हैं। यद्यपि आज एकल परिवारों और महानगरीय व्यस्त जीवन के कारण इन लघु लोककथाओं को सुनने-सुनाने की परंपरा के अवसरों में क्षीणता आई है, परंतु इनकी लोकप्रियता में कोई कमी नहीं है और समाज को सचेत करने व संस्कारित करने की दृष्टि से पीढ़ी दर पीढ़ी चली आई हैं। ये लघु लोककथाएँ टेलीविजन पर नाट्य शृंखलाएँ, इंटरनेट पर कहानी और विविध पत्र-पत्रिकाओं में नंदन, चंदा मामा जैसी बाल पत्रिकाओं में पठनीय रूप में अभी भी प्रचलित हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों और बुजुर्गों वाले परिवारों में आज भी पीढ़ियों को जोड़ने और समाज के पारंपरिक संस्कारों आदि धारणाओं के प्रति अगली पीढ़ी को संस्कारित और चेतनावान बनाने के लिए इनका कथानक रुचिपूर्ण सुनना-सुनाना देखने को मिलता है। लघु लोककथाएँ ब्रज संस्कृति की सच्ची संरक्षक एवं संवाहक होती हैं। इन लोककथाओं में ब्रजवासियों के जीवन की बहुरंगी छवि देखने को मिलती है। ब्रज लोककथाएँ ब्रज के लोकमानस की स्वाभाविक उपज हैं। अत: ब्रज की लघु लोककथाओं में ब्रज लोकजीवन का सरल, सहज एवं स्वाभाविक चित्रण रोचक शैली में मिलता है। ब्रज की लघु लोककथाएँ किसी समाज के प्रसिद्ध व्यक्ति, स्थल, वस्तु से संबंधित होती हैं। इनका मुख्य उद्देश्य लोक में सामाजिक एवं नैतिक मूल्यों को पीढ़ी दर पीढ़ी स्थापित करना है।

लघु लोककथाओं की धारा का प्रसार दादी से पोती, नानी से धेवती तक श्रुतिमार्ग से होता आया है। इन लोककथाओं के माध्यम से समाज

संप्रति शोधार्थी। हरदेव निमौतिया (हिंदी शोधार्थी एवं शिक्षक) महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय भरतपुर राजस्थान) गत वर्षों से साहित्यिक लेखन एवं शोध कार्य में रत।

में व्याप्त सास-बहू का कटु-मधुर संबंध, ननद-भौजाई का वैमनस्य तथा विधवा की दशा आदि का मार्मिक एवं यथातथ्यपूर्ण परिचय मिलता है। लोककथाओं के संदेश हेतु समाज के लोग साक्षर न हो फिर भी जनता के ज्ञान में बराबर वृद्धि होती रहती है। इस ज्ञान को समाज के लोग कानों से ग्रहण करते हैं। लघु लोककथाएँ बचपन में बालसुलभ और बुढ़ापे में वृद्ध सुलभ तथा सामाजिक एवं नैतिक शिक्षा का प्रमुख केंद्र रही हैं। ये लघु लोककथाएँ शिक्षा वितरण का सर्वोत्तम साधन हैं। माता-पिता, भाई-बहन, दादा-दादी, अड़ोसी-पड़ोसी अबोध बालक की ज्ञान के झोले में कोई-न-कोई बिना माँगे ही ज्ञान रूपी रत्न डालते रहते हैं। आज परिवार के सदस्य शाम के समय बिजली के चले जाने पर बालकों का मन बहलाने के लिए लोककथा सुनाते हैं। दादी-नानी की घरेलू कहानियाँ या लोककथाएँ बालक को हुंकार के साथ कभी आश्चर्य, कभी उत्साह और कभी उदारता के पाठ पढ़ाती चलती हैं। इन लघु लोककथाओं में बालक के ध्यानाकर्षण हेतु परिचित कुत्ता, बिल्ली, कौआ, मोर, तोता, सारस, लोमड़ी, गीदड़ आदि पात्र जीवन की व्याख्या बालक की मातृभाषा में करते चलते हैं। डॉ. सत्येंद्र लिखते हैं कि वेदों की बीज-कहानियाँ ही पुराणों की कथाओं में पल्लवित-पुष्पित हुई हैं। इन कथाओं के मूल प्राय: वेदों में देखे जा सकते हैं।

लघु लोककथाओं में व्यक्त सामाजिक चेतना

लघु लोककथाएँ ब्रजलोक में प्रचलित वे कथाएँ हैं, जो मनुष्य की कथा प्रवृति के साथ चलकर विभिन्न परिवर्तनों को ग्रहण करती हुई वर्तमान रूप में प्राप्त होती हैं। ये लघु लोककथाएँ छोटे-छोटे वाक्य, सहज एवं स्वाभाविक शब्दावली से निर्मित एवं सामाजिक चेतना से परिपूर्ण होती हैं। विभिन्न विद्वानों ने इनका वर्गीकरण अपने-अपने मतानुसार किया है।

ब्रज की ये लघु लोककथाएँ कई वर्गों में वर्णित हैं, जैसे—पौराणिक एवं सामाजिक कथाएँ, व्रत एवं धार्मिक कथाएँ, उपदेशमूलक एवं मनोरंजक कथाएँ आदि। ब्रज की लघु लोककथाओं की कथावस्तु बहुत छोटी, परंतु अत्यंत प्रभावी होती हैं। ब्रज की लघु लोककथाएँ प्रेरणात्मक एवं शिक्षाप्रद होती हैं। लोककथाओं में अलौकिक तत्त्वों का समावेश पर्याप्त मात्रा में मिलता है। इनके प्रभाव क्षेत्र के संबंध में यह कहना उचित ही प्रतीत होता है—'देखन में छोटी लगें अरु घाव करें गंभीर', अर्थात् ये लोककथाएँ लघु होते हुए भी कम समय लेते हुए अधिक प्रभावी होती हैं।

ब्रज संस्कृति धर्मपरायण संस्कृति है और धर्म का स्वरूप कुछ भी हो मूल आशय मानवीय कर्तव्यों से ही जुड़ा है। ये पौराणिक लोककथाएँ भले ही चमत्कार और अलौकिक वृत्तांतों से भरी हुई है, तथापि जनमानस में इनकी पैठ इतनी गहरी है कि विद्यालयी शिक्षा में बहुत स्थान न होने पर भी घर, परिवार और समाज में ये बहुतायत से सुनी और सुनाई जाती हैं। ये सभी धार्मिक कथाएँ ब्रज लोक संस्कृति में प्रकृति और मनुष्य के साहचर्यपूर्ण संबंधों की कथाएँ हैं इसलिए इनमें प्रकृति के विविध उपादानों, जैसे नदी, वृक्ष आदि को मानवीकृत रूप में तो दिखाया ही गया है। इन लोककथाओं में ईश्वर को भी मानवोचित व्यवहार करते दिखाया गया है। उन्हें मानव समाज के हितों से जोड़कर भी प्रस्तुत किया गया है। धार्मिक लोककथाओं में व्रत, उपवास, जप-तप एवं उनसे प्राप्त उपलब्धियाँ अभिव्यक्त हुई हैं। सुखों की कामना के लिए कही गईं इन व्रत कथाओं से उपदेश ग्रहण कर संबद्ध पर्वों के अवसरों पर महिलाएँ व्रतों का पालन किया करती हैं। पति, पुत्र एवं भाइयों की कुशलता तथा संपत्ति प्राप्ति करना इनका उद्देश्य होता है।

'सत्यवान सावित्री' लोककथा जन-सामान्य में अपने सामाजिक दायित्व बोध के प्रति चेतना जाग्रत् करती है। सर्वप्रथम अपने हित से पहले पारिवारिक दायित्व-बोध के आधार पर सास-ससुर की नेत्र-ज्योति माँगती है, फिर सामाजिक दायित्व के आधार पर वह राज्य माँगती है। उसके बाद फिर उस राज्य के परिवार और व्यक्तिगत संबंध के दायित्व बोध के आधार पर अपने लिए सत्पुत्रवती होने का वरदान यमराज से माँगती है। बड़ी कुशलता से पूरी कथा ब्रज लोक में एक व्यक्ति के रूप में स्त्री की बुद्धिमत्ता, विवेकशीलता, कर्तव्यपरायणता और समाज में उसके अधिकारों में सम्मानजनक स्वीकृति की चेतना भी सुगम शैली में स्थापित करती है। इस लोककथा में सावित्री के माध्यम से ब्रज लोक में स्त्री के पातिव्रत्य धर्म एवं कर्तव्य-निर्वाह के प्रति सामाजिक चेतना व्यक्त की गई है।

ब्रज के गद्य लोकसाहित्य में अनेक व्रतोत्सव एवं नैतिकतामूलक कथाओं का समागम है। उन कथाओं में सोमवार व्रत कथा, अहोई अष्टमी, करवा चौथ आदि लोककथाएँ हैं, जो सामाज में अपनी लोकसंस्कृति के प्रति चेतना जाग्रत् करती हैं। ब्रज लोक की अनेक छोटी-बड़ी कथाओं में मानव कल्याण चेतना के विभिन्न उपदेश भरे पड़े हैं। ऐसी कथाएँ प्राय: अप्रत्यक्ष रूप से शिक्षा देती हैं। इनके माध्यम से हमें सामाजिक बुराइयों से बचने के लिए लोकचेतना मिलती है। ब्रज की लोकसंस्कृति और ब्रजभाषा के उन्नयन में ब्रजलोक में प्रचलित लघु लोककथाओं का विशेष योगदान रहा है। यहाँ कुछ महत्त्वपूर्ण लघु लोककथाओं में सामाजिक चेतना को व्यक्त किया गया है, जो लोकजीवन के विभिन्न पहलुओं से परिचय कराती हैं।

'सत्य की जड़ हरी' और 'दीन कौ न दोजख कौ' ब्रज की लघु लोककथाएँ इसी प्रकार की हैं, जिनमें सत्य को अच्छा तथा असत्य को बुरा ठहराया गया है तथा जो व्यक्ति अच्छे कर्म करता है, उसे स्वर्ग और बुरे कर्म करने वाले को दोजख मिलता है 'सत्त की जड़ हरी' में दान के महत्त्व का प्रतिपादन किया गया है। अत: अच्छे कर्म करने वाला समाज में प्रशंसा के योग्य है। समाज में उसे यश की प्राप्ति होती है। अगर हम सत्य का पालन करेंगे तो कठिन समय में भगवान् भी हमारा साथ देंगे। इस प्रकार इस लघु लोककथा में मानवोचित कर्तव्य को सच्चा धर्म बतलाया गया है। नर में ही नारायण का वास होता है। इस लोककथा के माध्यम से लोकसमाज में सतकर्म करने की सामाजिक चेतना व्यक्त की गई है। 'धरमराज' लघु लोककथा समाज में व्याप्त ढोंग व पाखंड के भय से मुक्त होने की चेतना देती है।

'सुसरार सुख की सार' लघु लोककथा द्वारा लोक समाज में व्यक्ति के मान-सम्मान के संबंध में सामाजिक चेतना अभिव्यक्त की गई है कि जिस प्रकार हमें ससुराल में कम समय तक रहने पर जो मान-सम्मान मिलता है वह ज्यादा दिनों तक रहने पर नहीं मिलता। अगर ज्यादा समय रहे तो कुछ समय बाद सामान्य जनों की भाँति व्यवहार होने लगता है। अत: इस लोककथा में स्वावलंबन व स्वाभिमानी की सीख दी गई है।

'सीख न दीजै बांदरा' लघु लोककथा द्वारा लोक समाज में यह चेतना व्यक्त की गई है हमें उन्हीं लोगों को सीख देनी चाहिए, जिन्हें सीखना अच्छा लगता हो। यदि हम बंदर जैसे स्वभाव वाले लोगों को सीख देने की कोशिश करेंगे तो उससे अपना ही नुकसान एवं निरादर होता है। जिस प्रकार बया द्वारा बंदर को सीख देने पर हुआ था। तबही तौ कहो जाय—

"सीख वकौ दीजिए, जाकौ सीख सुहाय।
सीख न दीजै बांदरा, घर बया कौ जाय॥"

'ढेले और पात' की लघु लोककथा हास्य एवं चेतनाप्रद कथा है। इस कथा में भविष्य की आकस्मिकता के प्रति सतर्क रहने का बोध है। जीवन की नश्वरता और भविष्य में विपद और संपद का आगमन भी अनिश्चय से भरा होता है, इसलिए समाज को सीख है कि जो भी समीप हैं, उन सभी के साथ सहयोग करके चलना चाहिए। अत: यह लोककथा हमें लोक समाज में परस्पर सामाजिक सहयोग की भावना जाग्रत् करती है।

'सुसरार के भोजन' लघु लोककथा हास्य के साथ-साथ चेतनाप्रद भी है। इसमें मेहमान अपने मान एवं शर्म के भाव से पापड़ न माँगकर अपनी सामाजिक समझ या चतुराई द्वारा अपनी सास को पापड़ परोसने की बात याद दिलाता है। यदि युक्ति और विवेक से कार्य किया जाए तो सम्मान और कार्य निष्पादन दोनों संभव है और समाज में शिष्टाचार का संबंध है। युक्ति से इन दोनों की रक्षा की जा सकती है। इस लघु लोककथा

में यह लोकचेतना अभिव्यक्त होती है कि हमारे लिए लोकसमाज में अपना सम्मान बनाए रखना ही सबसे बड़ी समझदारी है।

'भैया पाँचें' लघु लोक-कथा स्त्री-विमर्श पर अच्छा ध्यान केंद्रित करती है। सास स्त्री होने पर भी अपनी बहू को तिरष्कृत करती है, क्योंकि उसके भाई नहीं है। ब्रज संस्कृति में भाई को सदैव बहन के प्रति दायित्व-बोध से बाँधा गया है। ब्रजक्षेत्र में बेटी केवल एक परिवार की नहीं, पूरे गाँव की मानी जाती है। यह बोध समाज में स्त्री को अधिक सुरक्षित और सम्मानित जीवन देने के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। आज के दौर में पूँजीवाद के प्रभाव से इसी बोध की क्षीणता ने आज स्त्री को संकट में और पुरुषों को दुष्कृत्यों के गर्त की ओर धकेल डाला है। प्रतीकात्मक रूप में यह संकेत भी है कि सास की सताई बहू घर से बाहर निकलती है तो बाहर उसे साँप जैसे दुष्टजन भी मिल सकते हैं। यहाँ संयोगपूर्ण संस्कृति के प्रभाव से उस साँप ने भाई के समान उस बहू का सम्मान किया। इस लघु लोककथा में सास का बहू के साथ जो कटु व्यवहार था, उसे बतलाया गया कि किस प्रकार बहू अपनी सास से दु:खी होकर जीवन व्यतीत करती है और अंत में साँप उसे अपनी धर्म की बहन मानकर मदद करता है। जिससे उसके प्रति सास का व्यवहार ठीक होने लगता है। इस लघु लोककथा के माध्यम से लोकसमाज के सामाजिक संबंधों के प्रति चेतना व्यक्त की गई है।

महाराजा सूरजमल बृज विश्वविद्यालय
भरतपुर-३२१००१ (राज.)
दूरभाष : ९९८३५१९१४१

इंद्रधनुषी प्यार

लघुकथा

• रत्ना श्रीवास्तव

'अम्मा-बाबा की तरह मत लड़ो,' किसी भी पति-पत्नी में मन-मुटाव या तू-तू, मै-मैं होती तो परिवार के लोग यही ताना मारते। मतलब, झगड़ा और तू-तू, मैं-मैं के पर्याय बन चुके थे अम्मा-बाबा।

बनते भी क्यों नहीं? अम्मा अगर पूरब थीं तो बाबा पश्चिम। अम्मा को अगर ठंड लगती तो बाबा को गरमी। अम्मा को दरवाजा-खिड़की बंद कर सोना पसंद था तो बाबा को खोलकर। बाबा को टी.वी. देखना पसंद था, पर अम्मा को नहीं। बाबा सीरीयल, फिल्म, राजनीति सबमें दिलचस्पी रखते तो अम्मा को इन सबसे कोई सरोकार नहीं था। बाबा रात में भी मोबाइल पर सबका डीपी, स्टेट्स देखते और रिप्लाई भी करते, जो अम्मा को नागवार गुजरता और सोते-सोते भी लड़कर दोनों छत्तीस का आँकड़ा बिठाकर ही सोते।

बाबा की कोई भी बात अम्मा एक बार में नहीं मानती और अम्मा की बातों को भी बाबा का जल्दी समर्थन नहीं मिलता। लेकिन सदैव लड़ते-झगड़ते रहने और एक-दूसरे के विपरीत स्वभाव के बावजूद अम्मा बाबा का पूरा खयाल रखतीं और बाबा की जुबान पर भी—"सुन रही हो, कहाँ गईं?" शब्द हमेशा टँगे रहते। बाबा को कब चाय की जरूरत है, कब नाश्ते की और कब खाने की, अम्मा घड़ी की सुई की तरह उस समय उठकर बैठ जातीं और किचन में अंदर-बाहर करने लगतीं, तब बहुएँ समझ जातीं कि बाबा का टाइम हो गया है।

फिर भी चौबीस घंटों में बीस घंटा अम्मा-बाबा एक-दूसरे से मुँह फुलाए ही रहते। यही वजह थी कि अम्मा-बाबा पति-पत्नी के झगड़े का पर्याय बन चुके थे। देखते-ही-देखते एक दिन अम्मा गुजर गईं। सबने सोचा और शायद बाबा ने भी कि अब उनकी जिंदगी काफी शांति, चैन व सुकून से गुजरेगी। अब चाहे जितनी देर टी.वी. देखें, कोई टोकने वाला नहीं, चाहे जितनी देर मोबाइल चलाएँ, कोई मना करने वाला नहीं। दरवाजा चाहे बंद कर के सोएँ या खोलकर, कोई परेशानी नहीं। अम्मा नहीं रहीं, कोई लड़ने वाला नहीं रहा, अब शांति ही शांति है।

लेकिन इतनी शांति बाबा को हजम नहीं हो पा रही थी। वे दिनभर टी.वी., मोबाइल और बच्चों में अपना मन लगाने की कोशिश करते, लेकिन उनके मन को कहीं वह खुशी, वह शांति नहीं मिल रही थी, जो पहले थी। दबे स्वर में गाहे-ब-गाहे उनके मुँह से निकलने लगा—"वह लड़ती थी तो मेरा जीवन गुलजार था। वह चली गई, मेरे जीवन को खामोश कर वीरान कर गई। कोई मेरी बातों को काटने वाला नहीं रहा, लड़ने वाला नहीं रहा।" और इतनी आजादी, इतनी शांति, इतनी खामोशी और अथाह रिक्तिता बाबा झेल नहीं पाए। दो महीने बाद ही दोपहर में ठीक उसी समय बाबा भी चल बसे, जब अम्मा का देहांत हुआ था।

सोचने को विवश हूँ कि प्यार शायद इंद्रधनुषी होता है, जिसमें सात नहीं, बल्कि हजारों रंग होते हैं। उन्हीं रंगों में से एक अम्मा-बाबा के प्यार का भी रंग था। जो शायद हमें दिखता कुछ और था और था कुछ और।

हाथों में हाथ डाले घूमना, पिक्चर जाना, साथ रहना और सबसे बड़ी बात एक-दूसरे की हाँ में हाँ मिलाना ही प्यार नहीं है। एक-दूसरे की बात काटकर, एक-दूसरे से लड़ने में भी प्यार होता है और वास्तविक प्यार शायद आत्मा से ही होता है, चिकनी-चुपड़ी बातों और व्यवहार से नहीं। तभी तो बाबा···

आज परिवार के लोगों के नजरिए बदल चुके हैं। नम आँखों से सबकी जुबाँ से एक ही बात निकल रही है—"प्यार हो तो अम्मा-बाबा की तरह। एक-दूसरे के बिना वे जी नहीं सकते थे और जी नहीं पाए।"

साईं सदन, प्लॉट नं. ६६१, फ्लैट नं. ५००
शालीमार गार्डन, एक्सटेंशन-१
साहिबाबाद, गाजियाबाद-२०१००५ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९९११२१४५८५

आग और विकास

• गोपाल चतुर्वेदी

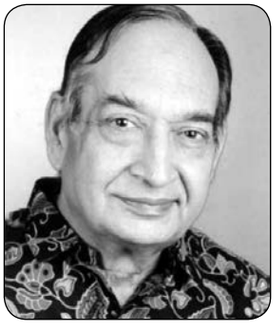

समय के साथ प्रवृत्तियाँ बदलती हैं। कोई यह नहीं सोचता कि मानव विकास का पहला साधन 'आग की खोज' रहा होगा। हम तो अकसर हैरान रह जाते हैं कि बिना आग के जीवन कितना कष्टप्रद रहा होगा, न पकाने की सुविधा, न रोशनी की? जानवरों और मानवीय अस्तित्व में अंतर ही क्या था? जब जिसका जोर चलता, वह उसे चबा जाता। यदि सुरक्षा थी तो वह सूरज का उजाला रहा होगा। क्या हम तभी से और इसी कारण सूर्य के उपासक हैं? एक बार मानव ने आग का रहस्य पा लिया तो फिर समस्या रही होगी, उसे बचा के रखने की। हजारों-लाखों वर्ष पूर्व आग की खोज मानवीय विकास का मूल और ऐतिहासिक कदम है। अभी तक किसी विद्वान् को हमने इस तथ्य को नकारते नहीं सुना है। जबकि विद्वत्ता का स्वभाव ही विवादी है। जब सारे विद्वान् एकमत हो उस स्थिति की कल्पना भी कठिन है। आग की खोज या उसका अन्वेषण एक सुखद अपवाद है, मतैक्य का।

एक बार आग आदमी के नियंत्रण में आ गई तो आधुनिक जीवन का जैसे प्रारंभ भी हो गया। वरना सूरज डूबने के पश्चात् पाषाण युग में इनसान का अस्तित्व कठिन क्या, असंभव था। कौन कहे, कब कोई जंगली जानवर दबे पाँव उसे अपना भोजन बना ले? अस्त्र-शस्त्र का विकास इत्यादि सब बाद में हुआ होगा। हम कभी-कभी सोचते हैं कि रोशनी के कितने लाभ हैं। नहीं तो मानवीय बस्ती के निवासी नर-भक्षियों से कितने त्रस्त रहे होंगे? पता लगा कि सूरज डूबने तक की चहल-पहल सबेरे तक ही हड्डियों के ढेर में बदल गई। रात को भूखे जंगली जानवरों का आहार सैकड़ों बन चुके हैं। यहाँ तक कि नर-नारी के स्वाभाविक आकर्षण के कारण जो जोड़ों में देखे जाते थे, उनमें से भी कोई शोक-पीड़ा जताने तक को नहीं बचा? हमें कभी-कभी संदेह होता है कि इनसान के अंतर्मन में तब की जो दबी-छुपी व्यथा है, वही उसे शिकारी बना देती है। हाथी के हौदे पर सवार शक्तिशाली शिकारी के समर्थक पहले हर तरह का शोर मचाकर वनराज का हाँका करते हैं और फिर जैसे ही वह बंदूक के दायरे में आता है, शिकारी सुरक्षित दूरी से उसे अपना निशाना बना लेता है। हमारा बचपन मध्य प्रदेश के एक छोटे से शहर देवास में बीता है। उसमें भी दो राजा थे, एक देवास सीनियर और दूसरा देवास जूनियर। घर के पास टेकरी की थोड़ी सी चढ़ाई के बाद देवी का मंदिर था। देवास की धरोहर, रज्जबअली खाँ साहब और कुमार गंधर्व जैसे गायक हैं। हमारे राजासाहब छत्रपति शिवाजी के कोई वंशज थे और उनका पूरा जीवन दारू और शिकार में बीत गया। वह दिन-रात नशे में धुत्त रहते और होश के दौरान शिकार में।

एक बार पिताजी के साथ मुझे उनके दर्शन का सौभाग्य मिला। उन्होंने हमें बताया कि अंग्रेजी के प्रसिद्ध उपन्यासकार, ई.एम. फॉर्स्टर उनके युवराज को अंग्रेजी पढ़ा चुके हैं। मैंने जितनी शिकार की तसवीरें उनके महल में लगी देखीं, वे जीवन भर के लिए काफी हैं। हर फोटोग्राफ समान था। राजा साहब बंदूक के सहारे मरे शेर-चीते पर अपना एक पैर रखे मुस्की छाँट रहे हैं। कौन कहे कि कहीं यह दुनिया का नियम तो नहीं है कि हर शक्तिशाली अपने से दुर्बल को सताकर इठलाता है? पाषाण-युग में क्या पता, नर-भक्षी जानवर भी इनसानों का शिकार कर इसी शैली में खीसें निपोरते हों?

इधर धीरे-धीरे विज्ञान और तकनीक ने ऐसी प्रगति की है कि एक बटन को दबाने से घर या दफ्तर आलोकित हो उठते हैं। जैसे छोटे से बिजली के लट्टू में नन्हा सूरज समाया हुआ है। ऐसे ही कई अन्य खोजें भी हैं, जो हमें आश्चर्यचकित करने को पर्याप्त हैं। यह दुर्भाग्य है कि इनमें से कई खोजें ऐसी भी हैं, जो शहर के शहर नष्ट करने को काफी हैं। क्या हम इन आयुधों में पाषाण युग की मानसिकता को दोहरा तो नहीं रहे? यह जीवन-दर्शन अपने से कमजोर पर रोब जमाने का है। चीन, रूस, अमेरिका जैसे देश क्या इस दूषित ग्रंथि से ग्रसित नहीं हैं? प्रजातंत्र, 'जनता का शासन सिर्फ जन-कल्याण के लिए' कहीं कोरा नारा तो नहीं रह गया है? कभी-कभी लगता है कि पाषाण युग का जानवरों द्वारा अस्तित्व के संकट का बदला, हम सभ्यता के विकास के पश्चात् भी आज तक लिए जा रहे हैं। तभी तो हमने जंगल के जंगल उजाड़कर शहरों के वन बसा लिए हैं। यहाँ जंगली जानवरों की खूँखार पशु-प्रवृत्ति इनसानों में झलकती है। अपने से कमजोर उनका स्वाभाविक शिकार है, उसका शोषण उनका पैदायशी अधिकार। प्रगति के नाम पर यह अवनति आग के आविष्कार के बाद हुई है।

कभी-कभी आग खुद-बखुद लगती है, जैसे बिजली के शॉर्ट-सर्किट वगैरह से, कहीं यह जानबूझकर लगाई जाती है। कई दफ्तर और उसके अफसर अपने भ्रष्टाचार से देशव्यापी ख्याति के धनी हैं। देखने में आया है कि यहाँ आग हर संभव अवसर पर खुद-बखुद लगाई जाती है। दूसरे दिन अखबारों की सुर्खियाँ होती हैं, "फलाने दफ्तर में भयावह आग से पूरा रिकार्ड रूम राख बना। वह तो कर्मचारियों का सौभाग्य है कि उन्हें कतई आँच तक नहीं आई।" वह भी इस कारण, क्योंकि ऐसी मानव-नियोजित दुर्घटना दफ्तर के समय के बाद घटी। कभी-कभी शक होता है कि फायर-ब्रिगेड का गठन भ्रष्टाचार की ऐसी ही आग से छुटकारे के लिए हुआ होगा। फायर ब्रिगेड के गठन से यह लाभ अवश्य है कि विनाश की आग रिकार्ड-रूम के आस-पास तक सीमित रह गई है।

हमें कभी-कभार खयाल आता है, यहाँ भी आग के कारण विकास हुआ है। नहीं तो पूरे एक विभाग का गठन क्यों होता? आग से खेलने आगे कोई क्यों आता? कभी-कभार भ्रष्टाचार की आग इनसानी वैमनस्य में बदल जाती है। सुनने में आता है कि दो संप्रदाय आपस में ऐसा भिड़े कि वर्षों का भाईचारा भुला बैठे। इसके लिए कोई खास वजूहात खोजने की दरकार नहीं है। कई धर्मगुरुओं और राजनीतिज्ञों का धंधा ऐसी हरकतों के कारण ही चलता है। किसी जाने-अनजाने मंदिर के सामने या अंदर किसी गौ-वंशी की लाश गिरवा दी। बस फिर क्या था, बवालियों की चाँदी हो गई। मंदिर के आस-पास तक न सीमित रह सांप्रदायिकता की आग पूरी बस्ती में फैल गई। कभी अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक के घर में पेट्रोल छिड़ककर माचिस दिखा दी। परिणाम अपेक्षित था। कई घर फुँके, कई जानें गईं। वे नौनिहाल भी मृत्यु के हवाले हो गए, जिन्हें खबर ही नहीं है कि वह किस संप्रदाय के हैं? या उसका अर्थ क्या होता है? क्यों वह एक-दूसरे के विनाश पर आमादा हैं? इतने दिनों का सहअस्तित्व क्या व्यर्थ हो गया? इस हादसे को रोकने या नियंत्रित करने में असफल सरकार कमेटी या कमीशन बनाने की विशेषज्ञ है। अपने कुछ समर्थकों को काम देना किसे खलता है? इसी बहाने कुछ अवकाश-प्राप्त न्यायाधीश भी उपकृत हो जाते हैं। कोई दंगों-हादसों की बात करे तो सरकार के पास एक सधा उत्तर है, "हमने कमीशन या कमेटी बना दी है। वह जाँच कर निष्पक्ष रिपोर्ट शीघ्र ही सरकार को सौंपेगी। उसके बाद हम सबको आश्वस्त करते हैं कि ऐसी उचित और कठोर काररवाई की जाएगी कि भविष्य में किसी को ऐसी हरकतों की हिम्मत न पड़ें।"

जानकार बताते हैं कि ऐसी दुर्भाग्य की घटनाएँ बहुधा चुनाव के पूर्व होती हैं। उसके बाद पाँच वर्ष तक तो अमन-चैन रहना ही रहना है। ऐसे अभी तक किसी कमेटी या कमीशन ने, किसी भी धर्मगुरु या नेता को व्यर्थ के इन दंगों के लिए दोषी नहीं ठहराया है। यों भी जब तक रिपोर्ट पर एक्शन की नौबत आती है, जनता इन दंगों के विषय में भूल चुकी होती है। रिपोर्ट के पहले और बाद में धर्मगुरु और नेता, अपनी अदृश्य मूँछों पर ताव देते घूमते नजर आते हैं कि वह सब कर गुजरे और क्या कर लिया किसी ने? वास्तविकता यह है कि उनके तार किसी-न-किसी सियासी दल से जुड़े हैं। बिना किसी जन-कल्याण के मिले वोटों से किसे ऐतराज होगा? जानें जाती हैं तो जाएँ? सार्वजनिक संपत्ति लुटती है तो लुटे, उनसे क्या? क्या उनका धेला भी लुटा है? उल्टे, उन्हें आशा है कि इस सुनियोजित विनाश से वह सत्ता की बड़की कुरसी के दावेदार बनेंगे। यह क्या कोई कम उपलब्धि होगी? जबकि उन्होंने इस पूरे प्रकरण में जुबानी जमा-खर्च के अलावा किया ही क्या है? नेतागीरी में जुबानी जमा-खर्च स्वयं में एक बड़ी पूँजी है। इसमें उन्हें महारत है। इसी के बल पर यदि एक संप्रदाय उन्हें अपना हितैषी माने तो उनका क्या जाता है? वह मन ही मन जानते हैं कि यदि उन्होंने कभी कल्याण किया है तो अपने परिवार या जात का। उनकी निष्ठा केवल अपनी जात है, बाकी तो सिर्फ सार्वजनिक मंच से घोषणाएँ हैं, जो बहुधा 'सर्वजन हिताय और सर्वजन सुखाय' के विषय की हैं। यह कर्णप्रिय बातें उन्हें देश का नेता बनाने को पर्याप्त है। चाहे भीतर-ही-भीतर वह दूसरों के लिए जहर घोलें। छल-कपट का हुनर ही वर्तमान नेता की खासियत है। वह वोट के लिए कुछ भी करने को प्रस्तुत है, कभी वह हिंदुओं का हित-साधक है, कभी अल्पसंख्यकों का। मदरसों पर पैसा लुटाने से उसे आपत्ति नहीं है, न हिंदुओं को सस्कारी खर्च पर तीर्थ-यात्रा करवाने से। इसके बावजूद वह 'सैक्युलर' है। केवल उसकी इकलौती हसरत वोट का जुगाड़ है। वह कैसे भी हो, दुपल्ली लगाकर या माथे पर चंदन पोतकर।

शुरू-शुरू और आज तक का, बिल्डर का सफर, उसका आवास, उजागर करने में समर्थ है। जैसे-जैसे बिल्डर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता गया, घर की मंजिलें बढ़ती गईं। आज तो वह शहर की सबसे शानदार इमारतों में एक है। उसकी चार चमचमाती गाड़ियाँ इस तथ्य की दुहाई हैं कि किस कार का नया मॉडल कब आया। हमारे दहेज के स्कूटर की तुलना में सब नया है, पर उन कारों से हमें लगता है कि अब तक हमारे स्कूटर के भी कितने नए अवतार बाजार में होंगे? बिल्डर ने अनधिकृत स्थान घेर कर एक पार्क भी बना लिया है। उसके सामने गाड़ियों का गैराज, यानी विश्राम स्थल है। उसके ड्राइवरों की अलग अलग यूनिफॉर्म हैं। मर्सिडीज के चालक की वर्दी नीली पोशाक है।

ऐसे सरकारी क्षेत्र का ऐसा प्रभाव है कि निजी धंधों में फैला और व्याप्त भ्रष्टाचार उससे कहीं अधिक है। यहाँ भी आग की अहम भूमिका है। पर यह मंगलकारी न होकर विनाशक है। हमारे मोहल्ले में शहर के एक मशहूर बिल्डर का आवास है। पूरे मोहल्ले में उसका

मुकाबला नहीं है। शुरू-शुरू और आज तक का, बिल्डर का सफर, उसका आवास, उजागर करने में समर्थ है। जैसे-जैसे बिल्डर सफलता की सीढ़ियाँ चढ़ता गया, घर की मंजिलें बढ़ती गईं। आज तो वह शहर की सबसे शानदार इमारतों में एक है। उसकी चार चमचमाती गाड़ियाँ इस तथ्य की दुहाई हैं कि किस कार का नया मॉडल कब आया। हमारे दहेज के स्कूटर की तुलना में सब नया है, पर उन कारों से हमें लगता है कि अब तक हमारे स्कूटर के भी कितने नए अवतार बाजार में होंगे? बिल्डर ने अनधिकृत स्थान घेर कर एक पार्क भी बना लिया है। उसके सामने गाड़ियों का गैराज, यानी विश्राम स्थल है। उसके ड्राइवरों की अलग अलग यूनिफॉर्म हैं। मर्सिडीज के चालक की वर्दी नीली पोशाक है।

बिल्डर की निजी तरक्की का प्रारंभ एक होटल बनाकर हुआ है। होटल छोटा है तो क्या हुआ? होटल तो है ही। बिल्डर ने निर्माण कार्य में खूब मिलावट की। सीमेंट में रेत मिलाया गया। लोहे के पिलर की जगह घटियाँ ईंट-सीमेंट का प्रयोग हुआ। उसका नाम ही 'स्वर्ग' था कि कब वह ढहे अपने मेहमानों को लेकर, इसका अनुमान तक कठिन है। इस दौरान ठेकेदार के आवस की दो नई मंजिलें बनीं, एक नई कार भी आ गई। अचानक ही एक दिन वह हो ही गया, जिसका अंदेसा था। 'स्वर्ग' में आग लग गई। न होटल में निकासी का प्रबंध था, न आग बुझाने का। सब बिल्डर की आशाओं के विपरीत हुआ। उसे कतई आग का डर नहीं था। उसे 'स्वर्ग' के भरभराकर गिरने की अधिक आशंका थी। हुआ उल्टा। 'शॉर्ट सर्किट' के कारण जानलेवा आग लग गई। आवासीय अतिथि तो जल मरे, आग बुझाने गई फायर ब्रिगेड के कुछ कर्मचारी भी घायल हो गए। तब से वह बिल्डर आते-जाते नजर नहीं आया। सुनते हैं कि वह फरार है, नहीं तो मर्सिडीज में बैठी उसकी शान ही निराली थी। खाकी से उसकी प्रारंभ से ही साँठ-गाँठ है। उन्हें उसकी गिरफ्तारी में खास रुचि नहीं है। सोने के अंडे देने वाली मुर्गी या मुर्गा जेल के बाहर ही ठीक है। तब तक और कुछ हो न हो, खाकी को अंडे तो मिल ही रहे हैं।

कुछ का विश्वास है कि अग्नि कल्याणकारी है। यज्ञ और हवन में अग्नि का प्रयोग इसीलिए होता है। अग्नि और अन्य सामग्री से वातावरण सुधरता है। यों अपने पल्ले आज तक नहीं पड़ा है कि ऐसी धारणा क्यों है? यज्ञ और हवन कौन से ऐसे साधन हैं, जो प्रदूषित माहौल को स्वच्छ करने में सहायक हैं? कौन जाने, इससे प्रदूषण में वृद्धि होती है कि नहीं? कुछ की मान्यता है कि हिंदू आस्था में इसी कारण शव को जलाने की व्यवस्था है। इससे स्वर्ग की संभावना बढ़ती है। ऐसे अपना संदेह है कि स्वर्ग किसने देखा है? स्वर्ग और नर्क की अवधारणा सिर्फ कल्पना भी हो सकती है? नहीं तो ईसाई और इसलाम धर्म को मानने वालों को क्या जन्नत नसीब नहीं है? ऐसी कल्पना तक कठिन है। हर धर्म की अपनी अलग मान्यता है। किसी-न-किसी लालच, प्रलोभन से सबका आशय समाज में कानून-व्यवस्था कायम रखना है। हम तो सिर्फ इतना कह सकते हैं कि अग्नि कुछ के लिए भले हो, अधिकांश इनसानों के लिए मंगलमय नहीं है। पोली-खोखली इमारत बनाकर बिल्डर का तो निजी कल्याण हुआ, पर इस चक्कर में जाने कितनी जानें चली गईं? हम कैसे मान लें कि आग मंगलमय है, जब कि हर अग्निकांड में प्राण न्योछावर होते हैं?

हमें भरोसा है कि प्रारंभ में आग का अन्वेषण आदिम पुरखों के लिए कल्याणप्रद रहा होगा। उसके बाद बिजली की खोज ने जीवन को आसान और आरामप्रद बना दिया। दोनों का विकास और प्रगति में अहम योगदान है। आज-कल का जीवन बिना आधुनिक उपकरणों के संभ नहीं है। फोन से लेकर टी.वी., कंप्यूटर तक सब बिजली पर निर्भर हैं। यहाँ तक कि भूजल अर्थात् धरती के अंदर के पानी की उपलब्धता भी पंप से है, जो बिना बिजली के चल ही नहीं सकता है। हमें कभी-कभी लगता है कि आग एक दुधारी तलवार है, जो विकास में भी सहायक है और विनाश में भी। यों हम एक आशावादी इनसान हैं। हमें विश्वास है कि आग की खोज की सकारात्मक भूमिका अधिक है और वह स्वाभाविक है। इसका दुष्प्रयोग एक इनसानी खामी है। कभी आग लगाई जाती है और लगती भी है तो मानव-निर्मित दूषित उपकरणों द्वारा जैसे बिजली के घटिया तार या शॉर्ट सर्किट से।

प्रजातंत्र का नियम है। विरोधियों के आकलन में सत्तापक्ष हमेशा गलत करता है। तभी तो सब विपक्षी दल एक स्वर में घोषित करते हैं—"जब से यह राष्ट्रीय दल सत्ता में आया है, इसने देश के विकास में आग लगा दी है।" सबका आरोप स्पष्ट है कि विकास इस दल ने ठप कर रखा है। वहीं सत्ता पक्ष का दावा है कि वर्तमान काल में मुल्क में चारों ओर विकास की आग लगी हुई है। न कहीं रार है न तकरार। बस पूरे देश में जो उजियार है, वह भी विकास का है।

जिसमें लेशमात्र भी देवत्त्व का अंश है, हमें उसे देवता बनाने में रत्ती भर संकोच नहीं है। कुछ अग्नि देवता के कट्टर उपासक हैं। यों हमें कट्टर लोगों से डर लगता है। एक 'कट्टर ईमानदार' पार्टी है। उसकी वास्तविकता से धीरे-धीरे सब परिचित हो रहे हैं। अग्निपूजक कोई इमारत आग से खाक हो अथवा इनसानों की जानें जाएँ, उसमें भी विकास देखते हैं। जिन्होंने प्राण गँवाए, उनके प्रति सहानुभूति जताना और रखना उचित है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि अग्नि विकास की विनाशक है। होटल पुराना था, उसके स्थान पर कुछ-न-कुछ नया बनना ही बनना, इसी प्रकार हमारी आबादी कौन कम है कि दस-बीस चल बसे तो मानव संसाधन का अभाव हो जाएगा? यह दीगर है कि इस दृष्टिकोण से कोई सहमत हो न हो।

साअ
९/५, राणा प्रताप मार्ग,
लखनऊ-२२६००१
दूरभाष : ९४१५३४८४३८

वह महान् बालक

● साजिद खान

२१ दिसंबर की वह रात बहुत ही ठंडी थी। कुहरे की एक परत बिछी हुई थी। अँधेरा इतना था कि हाथ को हाथ नहीं सूझ रहा था। रह-रहकर शीत-लहर हाड़ कँपा देती।

श्रीनिवास का मन नहीं लग रहा था। व्यापारी ने कहा, "मुनीमजी, इतनी रात हो गई है। किसी तरह यहीं बिता लीजिए। सुबह घर चले जाइएगा। इस समय घर जाना उचित नहीं होगा।"

"जैसा आप आदेश करें।" श्रीनिवास ने कहा और गोदाम में ही चारपाई पर लेट गए। रातभर नींद नहीं आई।

अगले दिन की वह सुहानी सुबह थी। कुहरे के बीच से सूरज का हलका उजास झाँक उठा था। कोयंबटूर के ईरोड नामक गाँव में आज एक बहुत बड़ी खुशी का दिन था। श्रीनिवास के घर एक पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई थी। वह फूले नहीं समा रहे थे। कभी अपनी पत्नी कोमलताम्मल को देखते, तो कभी अपने सुंदर पुत्र को। वस्तु-स्थिति जानकर व्यापारी ने उन्हें पहले ही कुछ पैसे दे दिए थे, सो उन्हें उत्सव मानने का अवसर भी मिल गया था।

पर यह अवसर बहुत दिनों तक नहीं रहा। चंद पैसों में भला क्या होने वाला था? फिर से पैसों की तंगी शुरू हो गई। श्रीनिवास अकसर चिंतित रहते कि आखिर धन की व्यवस्था कैसे की जाए। इसी चिंता में उन्होंने अपने प्यारे गाँव को भी त्याग दिया और कुंभकोणम में आकर बस गए। जीवन की नैया धनाभाव में जैसे-तैसे चल रही थी।

बालक सुंदर तो था, किंतु श्रीनिवास को लग रहा था कि उसका शारीरिक विकास अन्य बालकों-सा नहीं है। वह चिंतित रहने लगे। पत्नी भी अकसर कहा करती, "ऐ जी! मुहल्ले के सारे बालक तो खेलते-कूदते और मीठी-मीठी बातें करते हैं, किंतु अपने बालक को क्या हो गया है? तीन साल हो गए। यह कब बोलेगा?"

श्रीनिवास ने कहा, "धैर्य रखो भाग्यवान! यह बालक जरूर बोलेगा।" पर ऐसा कुछ भी नहीं हो रहा था। बालक जस का तस ही रहा।

काफी समय बाद उसने कुछ-कुछ बोलना आरंभ किया तो माता-पिता की बाँछें खिल गईं। बालक का बोलना उनके लिए किसी चमत्कार से कम नहीं था। किंतु चिंता भी थी कि आखिर उसका विकास अन्य बालकों जैसा क्यों नहीं है।

मूलतः बाल-साहित्यकार। कहानी, कविता, एकांकी आदि विविध विधाओं की अब तक लगभग ६४६ रचनाएँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। प्रथम भारतेंदु हरिश्चंद्र बाल-साहित्य पुरस्कार व राष्ट्रीय युवा कवि अवार्ड, प्रतिभा-अलंकरण सम्मान, पं. बृजबहादुर पांडेय स्मृति बालसाहित्य सम्मान एवं अन्य अनेक सम्मान।

श्रीनिवास अकसर कहते, "सोचा था, ईश्वर ऐसा पुत्र देगा, जो दुनिया में नाम करेगा, पढ़-लिखकर बड़ा बनेगा, अच्छी नौकरी पाएगा, हमारी निर्धनता समाप्त होगी···पर जाने ईश्वर की क्या इच्छा है!"

पत्नी समझाती रहती—"आप चिंता न करें। ईश्वर जो भी करता है, अच्छा ही करता है।"

इससे श्रीनिवास को कुछ बल मिलता।

सयम का चक्र चलता रहा। बालक अब पाँच वर्ष का हो गया था। एक दिन पत्नी ने कहा, "सुनोजी, आज आते समय हेडमास्टरजी से बात कर लीजिएगा। मुन्ना बड़ा हो गया है। इसका दाखिला करवा दीजिए।"

"ठीक कहती हो।" श्रीनिवास ने सोचते हुए कहा।

फिर उसी दिन उन्होंने हेडमास्टरजी से बात कर ली।

अगले दिन जब वह बालक को लेकर स्कूल गए, तो हेडमास्टरजी ने उसे गौर से देखा। वेश-भूषा और उसके हाव-भाव का आकलन करते हुए उन्होंने सोचा, 'देखो, जो यह पढ़-लिख भी पाए···।'

फिर उन्होंने कहा, "ठीक है, हम इसका दाखिला तो कर लेंगे, पर इसे रोज आना होगा।"

श्रीनिवास ने तुरंत हामी भर ली।

जब वह लौटकर घर आए, तो बहुत प्रसन्न थे। बालक का दाखिला जो हो गया था। पत्नी भी गद्‌गद थीं।

प्राथमिक स्कूल घर से थोड़ी ही दूरी पर था। बालक प्रतिदिन विद्यालय जाने लगा। पर उसका मन पढ़ाई में नहीं लगता। जब अध्यापक पढ़ाते, तो उसका मन कहीं और लगा रहता। उसे पारंपरिक पढ़ाई से जैसे कोई चाव ही नहीं था। हाँ, जब गणित के अध्यापक पढ़ाते तो उसे बहुत आनंद आता। वह ध्यान से उनकी बातें सुनता।

एक दिन यह बात घर तक पहुँची कि बालक स्कूल में मात्र समय व्यतीत करने के लिए जाता है, तो श्रीनिवास दु:खी हो गए। उन्होंने उसे समझाने का प्रयास किया। पर बालक पर इसका कोई असर नहीं हुआ। उसकी दिनचर्या में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

उस दिन गणित की कक्षा चल रही थी। अध्यापक गणित-विषय को रोचक ढंग से पढ़ा रहे थे। सभी तन्मयता से उनकी बातें सुन रहे थे। अध्यापक के पढ़ाने का ढंग इतना अच्छा था कि किसी का भी मन क्लास से बाहर नहीं था। पर जाने क्यों वह बालक गणित की किसी उधेड़बुन में व्यस्त था।

अध्यापक बच्चों से पूछ रहे थे, "अगर तीन केले, तीन विद्यार्थियों में बाँटे जाएँ, तो प्रत्येक के हिस्से में कितने आएँगे?"

कुछ बच्चों ने कहा, "गुरुजी, प्रत्येक को एक-एक केला मिलेगा।"

"और पंद्रह अमरूद पंद्रह बच्चों में बाँटे जाएँ तब?"

इस बार सभी बच्चे बोल उठे, "गुरुजी, तब भी सबके हिस्से में एक ही एक अमरूद आएगा।"

"शाबाश!" अध्यापक ने कहा, "इसका अर्थ यह हुआ कि किसी भी संख्या को उसी संख्या से भाग देने पर एक आता है।"

इस बार अध्यापक ने जान-बूझकर उस बालक से प्रश्न किया, क्योंकि उन्हें मालूम था कि वह कुछ और ही सोच रहा है। अध्यापक बोले, "तुम बताओ, यदि तीस केले तीस बच्चों में बाँटे जाएँ, तो प्रत्येक के हिस्से में कितने केले आएँगे?"

बालक कुछ नहीं बोला।

"तुम्हीं से पूछ रहा हूँ!" अध्यापक ने फिर से पूछा।

बालक खड़ा हुआ और उनके प्रश्न का उत्तर दिए बिना पूछ बैठा, "और गुरुजी, यदि कोई भी केला, किसी भी बच्चे को न बाँटा जाए, तो क्या तब भी सबको एक-एक केला मिलेगा?"

उसकी मूर्खतापूर्ण बातें सुनकर सभी हँस पड़े।

बालक ने विनम्रता से कहा, "तुम सब हँस क्यों रहे हो? मैंने उसी नियम के आधार पर पूछा है कि शून्य को शून्य से भाग देने पर क्या आएगा?"

सभी बच्चे शांत हो गए। अध्यापक भी उसके गूढ़ सवाल पर चकित रह गए। वह भी भाष्कराचार्य के सिद्धांत पर अटक गए कि शून्य को शून्य से विभाजित करने पर तो 'अनंत' आता है।

तब बालक ने कहा, "शून्य को शून्य से विभाजित करने पर परिणाम 'अनंत' ही नहीं, कुछ भी हो सकता है। उसे परिभाषित नहीं किया जा सकता है।"

बालक की बातों को सुनकर अध्यापक चिंतन करने को विवश हो गए। आज उस बालक ने यह सिद्ध कर दिया था कि वह अन्य बालकों से अलग है। वह मंदबुद्धि नहीं है। समय ने यहीं से रफ्तार पकड़ी और वह बालक प्रगति की सीढ़ियाँ चढ़ता गया।

उसने प्राइमरी शिक्षा में जिला-टॉप किया। आगे की पढ़ाई टाउन स्कूल में की। गणित के बहुत सारे सिद्धांतों को प्रस्तुत किया। हाई स्कूल की परीक्षा में उसे गणित और अंग्रेजी विषय में अत्यधिक अंक लाने के कारण छात्रवृत्ति भी मिली। उसके आर्थिक-संकट की समस्या कुछ कम हुई।

उसका गणित-प्रेम इतना बढ़ा कि उसने अन्य विषय पढ़ना ही छोड़ दिए। परिणामत: ग्यारहवीं की परीक्षा में गणित को छोड़कर उसे सभी में फेल होना पड़ा। छात्रवृत्ति बंद हो गई। आर्थिक तंगी ने फिर से मुँह फैला दिया। समस्याएँ बढ़ने लगीं। पर उसने हार नहीं मानी। इन समस्याओं के बावजूद उसने गणित विषय के प्रति अपने अनुराग को कम नहीं होने दिया। जीवन संघर्षमय हो गया। वह मित्रों के पास बैठता तो कुछ सलाह मिल जाती।

एक बार मित्रों की सलाह पर उसने प्रोफेसर हार्डी से संपर्क किया और अपने प्रमेयों की जानकारी दी। प्रोफेसर हार्डी बहुत प्रभावित हुए। उन्होंने उसे कैंब्रिज आने का न्योता दिया।

फिर तो इस बालक ने गणित के क्षेत्र में विश्व-स्तर पर अपना नाम कमाया। उसने बहुत सारे प्रमेयों की खोज की। अपने ३३ वर्ष के अल्प जीवन-काल में उसने ३,८८४ प्रमेयों का संकलन किया। वर्तमान में उस बालक के गणित-सूत्रों का प्रयोग 'क्रिस्टल-विज्ञान' में किया जा रहा है।

२६ अप्रैल, १९२० को इस बालक ने तपेदिक की बीमारी के कारण इस धरती से अंतिम विदा ली। उसके जाने से गणित-जगत् में एक अभाव पैदा हो गया। उसकी कमी अब कोई नहीं पूरी कर सकता था।

जानते हो गणित की अद्‌भुत प्रतिभा का यह धनी बालक कौन था? वह था गणित का महान् साधक—श्रीनिवास अयंगर रामानुजन! नमन करती है धरती ऐसे सपूतों को!

साअ

हिंदी-विभाग, जी.एफ. कॉलेज,
शाहजहाँपुर-२४२००१ (उ.प्र.)
दूरभाष : ९४५०३०३६९६

कण-कण में विराजते हैं राम

• सुमन बाजपेयी

राम धारणा हैं और धर्म भी! राम कारण हैं और कर्म भी! राम युग हैं और पल भी! राम आज हैं और कल भी! श्रीराम ही संपूर्ण सृष्टि के कण-कण में विराजमान हैं।

श्रीराम ही परब्रह्म परमेश्वर हैं। रामनाम लेने से पापों का नाश होता है और मनुष्य का कल्याण होता है। जीव का परम मार्ग राम का नाम है। रामनाम ही समस्त चराचर में रमण कर चेतना प्रदान करता है।

राम धर्म हैं, संस्कार हैं, संस्कृति हैं। वह मानवता के आधारस्तंभ हैं। उनका अवतार ही इस धरा पर धर्म के अवतार के रूप में हुआ। मानवता के कल्याण और समाज में आदर्श की स्थापना करने के लिए उन्होंने अपना पूरा जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित कर दिया। कहा जा सकता है, राम सिर्फ एक नाम नहीं हैं। राम हिंदुओं की एकता और अखंडता के प्रतीक हैं। राम सनातन धर्म की पहचान हैं। सृष्टि के हर रूप में समाहित राम सबको जोड़ते हैं। राम ने अपने व्यक्तित्व के द्वारा आदि से अंत तक धर्म का सही स्वरूप परिभाषित किया है।

राम हमारे आराध्य हैं। वह केवल मर्यादा पुरुषोत्तम ही नहीं, हमारे समग्र संस्कार में समाहित हैं। राम के बिना पूरी हिंदू संस्कृति अधूरी है। वह जीवन दर्शन हैं। राम हमारे संस्कार हैं, वह अत्याचार से लड़ने की ताकत देते हैं। विषम परिस्थितियों में भी जीवन को कैसे जिया जाए, इसका एक उदाहरण वह प्रस्तुत करते हैं। वह हमेशा मर्यादा में रहना चाहते हैं और हर प्राणी के सम्मान की रक्षा चाहते हैं। वह धर्म, विवेक और आदर्श के साथ मर्यादा और नैतिकता के प्रतीक हैं। वह मानवता के धर्मप्राण हैं। उपकार और परोपकार उनका जीवन-दर्शन है। इसलिए राम कण-कण में विराजमान हैं।

आज जो राम को यथार्थ रूप में जानता, भजता और पाता है, वही जुड़ता और जोड़ता है सबसे। राम सिर्फ दो अक्षर का नाम नहीं, राम तो प्रत्येक प्राणी में रमा हुआ है, राम चेतना और सजीवता का प्रमाण है। अगर राम नहीं तो जीवन नहीं है। इस नाम में वह शक्ति है, जो हजारों-लाखों मंत्रों के जाप में भी नहीं है। राम का उल्टा होता है म, अ, र अर्थात् मार। मार बौद्ध धर्म का शब्द है। मार का अर्थ है—इंद्रियों के सुख में ही रत रहने वाला और दूसरा आँधी या तूफान। राम को छोड़कर जो व्यक्ति अन्य विषयों में मन को रमाता है, मार उसे वैसे ही गिरा देती है, जैसे सूखे वृक्षों को आँधियाँ।

जानी-मानी लेखिका। छह कहानी-संग्रह समेत अन्य विषयों पर १७ पुस्तकें तथा १००० से अधिक कहानियाँ व लेख पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। चिल्ड्रंस बुक ट्रस्ट (हिंदी विभाग) में बतौर संपादक कार्य व जागरण सखी, मेरी संगिनी, फोर्थ डी वूमेन नामक पत्रिकाओं में विभिन्न संपादकीय पदों पर कार्य। १६० से अधिक पुस्तकों का अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद किया।

राम के आदर्श लक्ष्मण-रेखा की उस मर्यादा के समान हैं, जो लाँघी तो अनर्थ-ही-अनर्थ और सीमा की मर्यादा में रहे तो खुशहाल और सुरक्षित जीवन। वर्तमान संदर्भों में भी मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान् श्रीराम के आदर्शों का जनमानस पर गहरा प्रभाव है। त्रेतायुग में भगवान् श्रीराम से श्रेष्ठ कोई देवता नहीं, उनसे उत्तम कोई व्रत नहीं, कोई श्रेष्ठ योग नहीं, कोई उत्कृष्ट अनुष्ठान नहीं। संपूर्ण भारतीय समाज के जरिए एक समान आदर्श के रूप में राम को उत्तर से लेकर दक्षिण तक संपूर्ण जनमानस ने स्वीकार किया है। उनका तेजस्वी एवं पराक्रमी स्वरूप भारत की एकता का प्रत्यक्ष चित्र उपस्थित करता है। राम के चरित्र में पग-पग पर मर्यादा, त्याग, प्रेम और लोक-व्यवहार के दर्शन होते हैं। राम ने साक्षात् परमात्मा होकर भी मानव जाति को मानवता का संदेश दिया। उनका पवित्र चरित्र लोकतंत्र का प्रहरी, उत्प्रेरक और निर्माता है। इसीलिए तो भगवान् राम के आदर्शों का जनमानस पर इतना गहरा प्रभाव है और युगों-युगों तक रहेगा।

राम जन-जन के हैं। वह विश्व के हर इनसान के अंदर रचे-बसे हैं। राम लोगों के दिलों में बसते हैं, तभी उन्हें लोकनाथ कहा जाता है। इस भूलोक और संस्कृति दोनों में राम समाहित हैं। तभी तो कहा जाता है कि राम से बड़ा राम का नाम। जनमानस में रामकथा इसीलिए रची-बसी है, क्योंकि राम का चरित्र आदर्श पुत्र, आदर्श शिष्य, आदर्श भाई, आदर्श

मित्र, आदर्श वीर और आदर्श राजा के रूप में सभी को आकर्षित करता है।

राम केवल एक नाम भर नहीं, बल्कि वे जन-जन के कंठहार हैं, मन-प्राण हैं, जीवन-आधार हैं। भारत का कोटि-कोटि जन उनकी आँखों से जग को देखता है। उनके दृष्टिकोण से जीवन के संदर्भों-परिप्रेक्ष्यों-स्थितियों-परिस्थितियों-घटनाओं-प्रतिघटनाओं का मूल्यांकन-विश्लेषण करता है। राम निर्विकल्प हैं, उनका कोई विकल्प नहीं।

राम का जीवन न सिर्फ अपने समय में, बल्कि आगे के समय में भी मानवता का मार्गदर्शक रहा है। और आने वाले समय में भी रहेगा। आज हमारे समाज में अनेक बुराइयों ने अपने पाँव पसार लिये हैं। काम, क्रोध, लोभ, ईर्ष्या और स्वहित के भावों ने मनुष्य के भीतर की तमाम अच्छाइयों और मानवीयता का हरण कर लिया है। ऐसे में राम का जीवन हमारा मार्गदर्शन करता है। राम के जीवन से हमें सीख मिलती है कि किस तरह हम क्षुद्र भावों से निकलकर अपने हृदय को विशाल बना सकते हैं। उसमें प्रेम, भक्ति, करुणा, परोपकार जैसे भावों को स्थान दे सकते हैं। राम अपने विनम्र स्वभाव और निश्छल हृदय के कारण अपने शत्रुओं के भी मन में विराजमान रहे। वे अपनी छोटी माता कैकेयी की मंशा को जानते थे। फिर भी पिता के वचन को निभाने के लिए उन्होंने सहर्ष वनवास स्वीकार कर लिया। इस तरह उन्होंने समाज के समक्ष एक आदर्श पुत्र होने का प्रमाण दिया। इसी तरह भरत को राजगद्दी के प्रस्ताव के बाद भी उन्होंने अपने छोटे भाई के लिए मन में कोई भी शत्रुता नहीं पाली। जब भरत वन में राम से मिलने पहुँचे तो वह पूरी आत्मीयता से भरत के गले मिले।

राम मानवता की सबसे बड़ी निधि हैं। वह संसार में अद्वितीय प्रेरणापुंज हैं। राम जीवन के ऐसे आदर्श हैं, जिनकी सामयिकता हर युग में रहेगी। मर्यादा, शील, संयम, त्याग, लोकतंत्र, सामरिक शास्त्र, वैश्विक जवाबदेही, सामाजिक लोकाचार, परिवार प्रबोधन, आदर्श राज्य और राजनीति तक लोकजीवन के हर पक्ष हमें राम के चरित्र में प्रतिबिंबित और प्रतिध्वनित होते हैं। हमें बस राम की व्याप्ति को समझने की आवश्यकता है।

अयोध्या श्रीराम की जन्मभूमि तो है ही, वह संपूर्ण जीवन संस्कार है। हिंदू धर्म की पौराणिक मान्यता के अनुसार अयोध्या सप्त पुरियों—मथुरा, माया, काशी, कांची, अवंतिका और द्वारका में शामिल है। श्रीराम की नगरी अयोध्या को अथर्ववेद में भगवान् की नगरी कहा गया है। अयोध्या के शाब्दिक विश्लेषण से पता चलता है कि अ से ब्रह्म, य से विष्णु और ध से रुद्र, यानी त्रिदेव का स्वरूप है अयोध्या। जहाँ ब्रह्मा, विष्णु और शंकर स्वयं विराजमान हैं। अयोध्या के कण-कण में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम बसे हैं।

वास्तव में राम भारत की चेतना का शाश्वत आधार हैं। जिस अंतिम छोर तक राम लोगों को प्रेरित करते हैं, वही राम की वास्तविक अक्षुण्ण शक्ति भी है। उनकी भक्ति, शक्ति, सभी तो जन-जन में, कण-कण में व्याप्त है।

मुझ में राम, तुझ में राम, कण-कण में राम समाया।

साअ

१२, एकलव्य विहार, सेक्टर-१३
रोहिणी, दिल्ली-११००८५
दूरभाष : ९८१०७९५७०५

लेखकों से अनुरोध

- मौलिक तथा अप्रकाशित-अप्रसारित रचनाएँ ही भेजें।
- रचना फुलस्केप कागज पर साफ लिखी हुई अथवा शुद्ध टंकित की हुई मूल प्रति भेजें।
- पूर्व स्वीकृति बिना लंबी रचना न भेजें।
- केवल साहित्यिक रचनाएँ ही भेजें।
- प्रत्येक रचना पर शीर्षक, लेखक का नाम, पता एवं दूरभाष संख्या अवश्य लिखें; साथ ही लेखक परिचय एवं फोटो भी भेजें।
- डाक टिकट लगा लिफाफा साथ होने पर ही अस्वीकृत रचनाएँ वापस भेजी जा सकती हैं। अतः रचना की एक प्रति अपने पास अवश्य रखें।
- किसी अवसर विशेष पर आधारित आलेख को कृपया उस अवसर से कम-से-कम तीन माह पूर्व भेजें, ताकि समय रहते उसे प्रकाशन-योजना में शामिल किया जा सके।
- रचना भेजने के बाद कृपया दूरभाष द्वारा जानकारी न लें। रचनाओं का प्रकाशन योजना एवं व्यवस्था के अनुसार यथा समय होगा।

सीमाहीन तुम्हारी छाया

● वीरेंद्र प्रसाद

देश की सबसे प्रतिष्ठित सिविल सेवा परीक्षा २००४ में उत्तीर्ण कर भारतीय प्रशासनिक सेवा में अपना योगदान दिया। बहुमुखी प्रतिभा के धनी डॉ. वीरेंद्र ने कई महत्त्वपूर्ण पदों पर अपनी सेवाएँ दी हैं। प्रकृति से इन्हें अगाध प्रेम है। प्रशासनिक कार्यों में दक्ष वीरेंद्रजी को बागवानी पसंद है। पशु चिकित्सा विज्ञान में स्नातकोत्तर। दूरस्थ शिक्षा द्वारा अर्थशास्त्र एवं वित्तीय प्रबंधन में स्नातकोत्तर।

एक दीप जला लूँ

चाँद जरा उसको भुला लूँ
फिर से एक दीप जला लूँ।

क्षितिज बंधन तोड़कर अब
आ रही सुधि उन्मत्त अंधड़
रोकने से भी नहीं रुकती
तन्मय विद्युतवाही बवंडर
सुधि में सुरभित नेह धुले
मत्त रागिनी अपनी जगा लूँ
चाँद जरा उसको भूला लूँ।

ज्योति नयन, मधुवात वह
स्मित हृदय का सबेरा
तम गति न रोक पाता
अटल लहर स्वप्न मेरा
छाँह में आ गए उसके
मृदु सुकुमार सपने बचा लूँ
चाँद जरा उसको भूला लूँ।

ये मधु पतझर, साँझ-सबेरे
नाप शून्य का हर कोना
बिन पथ, उस पथ ले आता
मुग्ध पुलक बंधन का दोना
आहटहीन चला जब हौले
चिर क्षार में उसको सुला लूँ
चाँद जरा उसको भुला लूँ।

उड़ रहे हैं पृष्ठ पल के
उर अथक गति पार देना
प्रलय गर्जन में मुझे बस
एक बार यों ही पुकार लेना
उर उष्णता को तरी बना
सदियों की अतल दूरी मिटा लूँ
फिर से एक दीप जला लूँ
इस जीवन को पार पा लूँ।

मधुमास आया

तुम आए, मधुमास आया
कनकाचल का है अवगुंठन
नव किसलय मधु लहराया
तुम आए, मधुमास आया।

शत वल्लरियाँ नत मस्तक
पल्लव में रस, अनंत तक
विमल मदन मद है अभी
स्तव रव के विहर पुस्तक
तन मन सर्वस्व वारकर
मधुकर पुष्पाधर मुसकाया।
तुम आए, मधुमास आया।

प्रणय अगणन यौवन उपवन
नभ में मेघों का आमंत्रण
हरिण नयन सुरभिमय झंझा
कर उर कंपन का अभिनंदन
मधु के पावन, सरसे सावन
सीमाहीन तुम्हारी छाया
तुम आए, मधुमास आया।

इंद्रधनु है चितवन के रंग
तनु दीपित मृदु अंग-अंग
नव नील चीर उड़ता तेरा
है लाल कपोल किरण संग
रवि शशि सब तारा दल
नृत तेरे काया की छाया
तुम आए, मधुमास आया।

दिल में है नाम तुम्हारा

दिल में है नाम तुम्हारा
घनसार सा अलाम तुम्हारा।

शरद चाँद किरणों में चिर
सित-सित है छवि तेरे
अब पुलक के हैं बसेरे
मुखर इंद्रधनु के चितेरे
साध पाषाण का स्पंदन
द्युतिमय अंजाम तुम्हारा
दिल में है नाम तुम्हारा।

उड़ते रंगों के अंचल से
मेरी मृदु पलकें मूँद-मूँद
शत-शत वीचि गूँद-गूँद
छलका आसव की बूँद-बूँद
मरकत नीलम शृंग वितान
मृदु सौरभ शाम तुम्हारा
दिल में है नाम तुम्हारा।

मेरे हृदय की शून्यता को
तेरे तरल निश्वास भरती
तृष्णा को वरदान करती
पीर लहरी पर निखरती
जड़ चेतन हो जाता पल में
दर्शन अक्षरधाम तुम्हारा
दिल में है नाम तुम्हारा।
घनसार सा अलाम तुम्हारा।

८/६० ऑफसर्स फ्लैट, निकट हड़ताली मोड़,
बेली रोड, पटना (बिहार)
दूरभाष : ९३०४७९०९५४, ७२९४८२०४९५

घोंघे

● उपमा शर्मा

बगीचे में पानी देते श्याम बाबू वहाँ अनचाहे ही घुस आए, घोंघों को एकटक देखने लगे। बगीचे की मखमली घास पर धीमे-धीमे खिसकते ये घोंघे दूर से ही अपने कमरे की खिड़की से झाँकती उनके बेटे की बहू मीता को नजर आ जाते। मीता ने बहुत चाव से यह बगीचा बनवाया था। क्यारियों में लगे सुर्ख गुलाब और आँखों को भाते गेंदों के बड़े-बड़े बसंती पीले फूल दूर से ही मन को आकर्षित कर लेते।

बहू ने दूर-दूर की नर्सरी से देशी-विदेशी पौधों से अपनी यह फुलवारी पूरे मन से सजाई थी। ग्लोडिया, एडनियम, अपराजिता, लिली, रजनीगंधा, रात की रानी, बेला, चमेली, कनेर क्या नहीं था उसकी फुलबगिया में! इन्हीं क्यारियों की अगली कतारों में रंग-बिरंगे क्रॉटन, क्लोरोफाइटम, स्नेक प्लांट, जेड प्लांट, विभिन्न पाम जैसे कम छाया वाले पौधे भी थे। ये सब नाम उन्हें उनके पोते ने रटवा दिए थे। उन्हें तो बस रंगों से सजा बगीचा है और ढेरों फूलों से महकता है, यही बात बहुत आकर्षित करती थी। बहू के घर की यह जगह उनकी पसंदीदा जगह थी। जहाँ वे पानी डालने के बहाने थोड़ा वक्त बिता लेते थे। अब इतनी खूबसूरत जगह में ये घोंघे भला बहू को बर्दाश्त भी कैसे हों? बहू ही क्या, घोंघे शायद ही कभी किसी को अच्छे लगते हों। बदबूदार, बदसूरत जीव। यह क्यों बनाया प्रकृति ने? इसकी क्या उपयोगिता है? जिसको भी देखो, उन्हें देख हिकारत और नफरत से मुँह ही फेर लेता है। कुछ बेध्यानी और बीमारी के कारण हाथ में पकड़े पाइप से पानी की धार क्यारियों की जगह बीच में उगाई घास से इतर जमीन में पड़ने लगी। खिड़की से इधर ही देखती बहू हाथ में मुट्ठी भर नमक लेकर गार्डन में चली आई। पहले हाथ में पकड़ा नमक घोंघों पर डाला, फिर श्याम बाबू पर चिल्लाना शुरू कर दिया।

"ध्यान कहाँ रहता है आपका? मैं आपसे तंग आ चुकी हूँ। एक काम जो आप से ठीक से होता हो। सारा पानी जमीन पर बहा दिया।"

"बहू! जरा ध्यान भटक गया था। अब सँभालकर लगा रहा हूँ।"

"हुँह! ध्यान भटक गया। काम करते वक्त ध्यान हमेशा भटका ही रहता है। खाते वक्त तो कभी नहीं भटकता। उसमें सब अच्छा-अच्छा चाहिए। मजाल है कुछ खराब खा लें। सारा पानी फालतू बहा दिया।

नवोदित रचनाकार। कथाक्रम, कथाबिंब, हंस, वागर्थ, साहित्य अमृत, नया ज्ञानोदय, अमर उजाला, प्रभात खबर, लोकमत आदि पत्र-पत्रिकाओं में समय-समय पर रचनाएँ प्रकाशित।

समरसेबिल कितनी देर से चल रहा है। अब बिजली का बिल फालतू भरें हम। रोज की कहानी है। अब ध्यान से लगाइए पानी और समरसेबिल का स्विच बंद कर दीजिए। पता नहीं मेरे सिर पर यह मुसीबत कब तक रहेगी।" बड़बड़ाती हुई बहू वापस कमरे में चली गई। कमरे में पहुँचकर भी उसकी बड़बड़ाहट जारी थी। उसके ताने-कोसने की आवाजें उनके कानों में स्पष्ट पड़ रहे थे। पता नहीं बहू उनको सुना ही रही थी या इस घर में रहने वालों के दिल की तरह घर भी इतना छोटा था कि कोई भी बात कानों में पड़े बिना रह नहीं सकती थी।

"मेरी समझ नहीं आता, काम कराऊँ भी तो कौन सा? इनके हाथों का छुआ मुझसे कुछ खाया भी नहीं जाता। जब देखो, खाँसना-थूकना। कँपकँपाते से हाथ। पता नहीं इन घोंघों में क्या दिखता है इन्हें? जब देखो, इन्हीं को निहारते रहेंगे। इन बदसूरत बेकार के जीव से भी लगाव। हद ही है। खुद कौन से घोंघे से कम हैं। बेकार ही पड़े रोटी तोड़ते रहते हैं।"

उनकी आँखों में अनायास ही आँसू छलछला आए। मन किया, पूछें बहू से, ऐसा क्या अच्छा खिला देती है? लेकिन चुप रहने की आदत ने मुँह खोलने ही नहीं दिया और मुँह खोल भी देते तो कौन-सा बहू सुनती। दस बातें और सुना देती। नजर वापस उन्हीं घोंघों पर चली गई। घोंघों के शरीर से नमक के प्रभाव से पानी निकल रहा था। वे सिकुड़कर अपने आपको बचाने की कोशिश कर रहे थे। उनके शरीर से छूटता लिजलिजा झाग वाला पानी। उन्हें भी अब वहाँ खड़े होने से उकताहट होने लगी। उन्हें लगा, वह भी घोंघा ही हैं। अनचाहा अस्तित्व। ईश्वर बुढ़ापा क्यों देता है? इस अवस्था से पहले उठा क्यों नहीं लेता? बहू के तानों-उलाहनों के नमक से आँखों से पानी टपके जा रहा था। वृद्धावस्था में शिथिल

पड़ती इंद्रियाँ और उच्च रक्तचाप के चलते पड़े ब्रेन स्ट्रोक से बिस्तर पर कुछ महीने गुजारने के बाद वे अब चलने-फिरने लगे थे, लेकिन मुँह से लार जब-तब टपक जाती थी। वे अपने काम खुद ही करने के आदी थे। हाथ में साफ-सुथरा रूमाल हर वक्त रहता। लेकिन बहू देखकर नाक-भौं सिकोड़ ही लेती थी। गाँव में अच्छे-भले दिन कट रहे थे। जब तक पत्नी थी, उन्हें कभी बेटे के यहाँ ऐसे पड़े रहने की जरूरत ही नहीं पड़ी। पहले भी कभी दिन-दो दिन को पत्नी के साथ आते थे, तब भी बहू का व्यवहार बहुत अच्छा नहीं था, लेकिन तब पत्नी के सामने ऐसा बरताव तो था ही कि दो वक्त की रोटी थोड़े सलीके से दे देती थी। तब शरीर की यह स्थिति भी नहीं थी। बहू बेकार आदमी को रोटी देने को भी तैयार नहीं थी और किचन के किसी काम में हाथ लगवाने को भी नहीं। पहले सब्जी काट देते थे। सब्जी का प्याज-लहसुन काटना उन्हीं की जिम्मेदारी थी। बच्चों को स्कूल छोड़कर आना और वापस लाना, ये छोटे-मोटे काम वे खुशी-खुशी कर लेते थे। अब कुछ कदम चलकर ही थक जाते हैं, फिर बहू चाहती भी नहीं कि बच्चे उनके पास रहें। गाँव से शहर तक का पत्नी के जाने के बाद का यह कुछ सालों का सफर उन्हें बेहद थका गया था। अपना गाँव का घर और साथ के लोग बहुत याद आते थे। धीमे कदमों से चलते हुए अपने कमरे में आ गए। पानी के चंद घूँट पी गला कुछ तर हुआ। डॉक्टर की बताई दवा खाकर अपने बह आए आँसुओं को पोंछा। सामने पत्नी की तसवीर मुसकरा रही थी। मानो कह रही हो—बस हार गए हिम्मत! अभी तो कष्टों का यह पहला ही पड़ाव है। अभी हाथ-पैर पूरी तरह चलना बंद नहीं हुए हैं। अभी कितनी दूरी तय करनी है। अपने घर अपने गाँव की मिट्टी सबसे अच्छी है। तुम तानों के बाद भी कैसे इस घर में पड़े हो? अपने गाँव वापस चलो। वहाँ की हवा-पानी, संतू की निस्स्वार्थ सेवा तुम्हें फिर पहले जैसा कर देगी। उदास चेहरे पर एक फीकी मुसकान आ गई।

तसवीर से जब-तब बातें करते थे। बहू यह देखकर उन्हें पागल ही कहती थी कि बुद्धि पूरी तरह सटक गई है बुढ़ऊ की। उसे क्या पता तसवीर में ही सही, उसे पत्नी के पास होने का अहसास रहता है। कोई तो उनसे बात करने वाला था नहीं, ऐसे में पत्नी की यह तसवीर ही उनके बोलने-बतियाने का सहारा थी।

"तू सही कह रही है ममता। यहाँ क्यों पड़ा हूँ? अपना घर अपने खेत, अपनी मिट्टी की खुशबू! सही आँखें खोली तूने। यहाँ बिटुवा का चेहरा देखने को मिल जाता है। बच्चों की बातें दूर से ही सुनकर खुश हो लेता था, लेकिन इस मोह के बीच अपना आत्मसम्मान कहीं भूल गया था। तूने हमेशा मेरे बारे में ही सोचा, ममता।" कहकर तसवीर पर उँगलियाँ फिराते हिचकियों से रो पड़े।

हाथ-पैरों में पहले जैसी जान न सही, लेकिन अब चल-फिर लेते थे। पहले से काफी बेहतर थे। कुछ निश्चय के साथ बेटे के आने का इंतजार करने लगे। आज लग रहा था, दिन बहुत लंबा हो आया। प्रतीक्षा के पल वैसे भी बहुत लंबे ही लगते हैं। दोपहर बीती, दिन ढला। शाम का सिंदूरी सूरज शनैः-शनैः आसमान में डूब रहा था। वे एकटक सूरज को निहार रहे थे।

आग का तपता गोला इस वक्त शांत होकर सुरमई बादलों की गोद में बड़ा सुंदर लग रहा था। बगल के कमरे से बच्चों की आवाजें आ रही थीं। आखिर प्रतीक्षा के पल समाप्त हुए। बेटा ऑफिस से घर वापस आ गया था। वे कमरे से बाहर निकल आए। उन्हें देख बहू ने मुँह बनाया। उन्हें लगा, उसी पल वापस कमरे में लौट जाएँ। बहू की वो जलती आँखें उन्हें बर्दाश्त नहीं हुईं। लेकिन कैद से रिहाई के लिए यह अपमान सहन करना भी जरूरी था। बेटे ने पिता को देखा। वे सहमे से नजर आए। अपनी पत्नी की आदत और पिता के प्रति व्यवहार से वह वाकिफ था। इसलिए ऑफिस से आ कुछ देर आराम के बाद पिता के कमरे में स्वयं ही चला जाता था। लेकिन आज उसके आते ही पिता कमरे से बाहर, जरूर पिता आज ज्यादा आहत हैं।

उसने मुसकरा कर कहा, "आइए पापा! तबीयत पहले से बेहतर लग रही है आज।"

"हाँ बेटा! अब काफी बेहतर हूँ। चल-फिर रहा हूँ। तेरी माँ के सजाए घर की बहुत याद आ रही है। सोचता हूँ, जिंदगी का कोई भरोसा नहीं। कुछ दिन उस घर में बिताना चाहता हूँ।"

"लेकिन आपकी तबीयत पापा! और अब इस उम्र में वहाँ अकेले रहना। यहाँ बच्चे हैं, मीता है। आपका मन भी लगा रहता है बच्चों में।" आखिरी के शब्द खुद ही धीमे हो गए।

"बेटा! यहाँ सब अच्छा है, लेकिन घर की बहुत याद आ रही है।"

पिता के शब्दों की कातरता से उसका मन पिघल गया। यहाँ कौन सा सुख है? दो सूखी रोटी भी स्वाभिमान की नहीं। सब जानता है, लेकिन कर्कशा पत्नी के आगे बेबस है। ऐसा नहीं, कुछ बोल नहीं सकता। सारी कोशिश कर ली। लेकिन कोई सुखद परिणाम नहीं निकला। उसने पत्नी को प्यार से समझाया, कोई परिणाम नहीं। गुस्सा दिखाया तो पत्नी ने बच्चों को मारना-पीटना शुरू कर दिया। पिता को यह सब देख बहुत तकलीफ होती थी। उन्होंने ही बार-बार रिश्ते बचाने के लिए उसे इतना झुकना सिखा दिया कि वह अब चाहकर भी बोल नहीं पाता। जब वो पत्नी को डाँटता, वह उसके घर से निकलते ही पिता को और ज्यादा सताती। उसने पिता की बात मान उन्हें गाँव छोड़ने का निश्चय कर लिया। यहाँ जैसी सुख-सुविधाएँ नहीं हैं वहाँ, लेकिन कम-से-कम ताने-कोसना तो नहीं मिलेगा। तबीयत में सुधार है। संतू काका के संपर्क में रहेगा और कुछ हुआ तो फौरन यहाँ ले आएगा।

"ठीक है पापा। मैं छुट्टी के लिए एप्लाई करता हूँ। और जल्द ही आपको घर छोड़ आता हूँ। हवा-पानी बदलेगा तो शायद स्वास्थ्य पर अच्छा असर पड़े।"

पिता का मुरझाया चेहरा खिल गया। अपने घर जाने के नाम पर ही जो चमक उसने पिता के चेहरे पर देखी, ऐसी यहाँ गुजरे दो सालों में कभी

नहीं दे पाया। पिता अपने कमरे में चले गए। उसे अपने बचपन के दिनों से लेकर शादी तक का वक्त याद आ गया। उसकी खुशी के लिए पिता ने क्या नहीं किया ? हर छोटी-बड़ी इच्छा पूरी की। कैसे भी कहीं से व्यवस्था की, लेकिन उसे कभी एक छोटी सी इच्छा के लिए भी नहीं तरसाया। और वो··· बाकी सब तो छोड़ो, सम्मान तक नहीं दिलवा पाया। उसके आँसू पलकों का बाँध तोड़ बह चले। इन आँसुओं में दु:ख, पछतावा और कुछ न कर पाने के अहसास घुले थे। वह घर से बाहर निकल आया और बिना मतलब सड़कों पर यों ही घूमता रहा। देर रात घर में घुसा, तब पिता के कमरे में दरवाजे की झिरी से झाँककर देखा। पिता का सामान बँधा रखा था। सामने कुरसी पर रखी माँ की फोटो भी गायब थी। पिता के चेहरे पर एक अलग ही भाव नजर आ रहा था। शायद जेल से छूटने का। खुली बयार में साँस लेने का या बेटे को अपनी नजरों में और अपराधी न बनने देने का।

वह अपने कमरे में चला आया और बिस्तर पर करवट बदलकर लेट गया। पत्नी उसकी मनोदशा समझकर भी अनजान बन रही थी। वह भावनाओं में उलझ फिर से इस अनचाही मुसीबत को झेलने को तैयार नहीं थी। पिता के चेहरे पर फैले असीम संतोष के रंगों को देख उसने अगले दिन सुबह ही निकलने का निश्चय कर लिया।

सुबह-सवेरे ही दोनों पिता-पुत्र घर से निकल पड़े। आकाश में पक्षियों का झुंड एक कतार में उड़ा जा रहा था। सूरज एक अधखिली कली के जैसे आसमान के कटोरे में पूर्ण पुष्प बनने को तैयार था। कुछ ही देर में सूर्य की असंख्य रश्मियाँ फैलने लगीं। धरती पर उजास ने अपने सतरंगी पर फैला दिए। अँधेरा सिमटकर आकाश में कहीं विलीन हो गया। आज का सूरज श्याम बाबू को बहुत अच्छा लग रहा था।

सुबह-सवेरे ही दोनों पिता-पुत्र घर से निकल पड़े। आकाश में पक्षियों का झुंड एक कतार में उड़ा जा रहा था। सूरज एक अधखिली कली के जैसे आसमान के कटोरे में पूर्ण पुष्प बनने को तैयार था। कुछ ही देर में सूर्य की असंख्य रश्मियाँ फैलने लगीं। धरती पर उजास ने अपने सतरंगी पर फैला दिए। अँधेरा सिमटकर आकाश में कहीं विलीन हो गया। आज का सूरज श्याम बाबू को बहुत अच्छा लग रहा था। ऐसा ही उजास उनके चेहरे पर भी फैल गया। उन्हें लग रहा था, मानो उनके गाँव के तालाब से कमल निकल आज आसमान में अपनी पूरी खूबसूरती से खिल उठा हो। गाड़ी धीरे-धीरे गाँव की सीमा में प्रवेश कर गई। वे बच्चों के सदृश किलक उठे। अपने घर की देहरी पर आ उनमें नई जान आ गई, जैसे किसी नन्हे छौने ने अभी-अभी आँखें खोली हों। वे आँगन में आ उसकी मिट्टी को माथे से लगा चिहुँक उठे। उनको देखते ही आस-पास के लोग उनसे मिलने दौड़े चले आए। बहू के घर का वह अजनबीपन अपने आँगन में आ पल भर में तिरोहित हो गया। अपने भरे हुए आँगन को देख रही-सही चिंता भी जाती रही। गाँव और गाँव के लोगों ने उनका भरपूर स्वागत किया। वे उतनी तेज अभी नहीं चल पाते थे, लेकिन अपने घर में आ जैसे उन्हें पंख मिल गए थे। सबकुछ वैसा ही था, जैसा वे छोड़ गए थे। संतू ने सबकुछ पूरे जतन से सँभाला हुआ था। घर में मिट्ठू तोते की आवाज वैसे ही गूँज रही थीं। घर से सटे हुए तालाब में मछलियाँ जैसे उन्हें ही पुकार रही थीं। उनके तालाब में हाथ डालते ही वे उछल-उछल बाहर आने लगीं। तालाब की सतह पर तैरती वे नन्ही मछलियाँ उन्हें जीने की उमंग दे रही थीं। आँगन में लगे नीम पर दौड़ लगाती हुई गिलहरियाँ और दिन भर बाहर रहने वाले पंछी आज जैसे जल्दी अपने घोंसले में आ उसका स्वागत कर रहे थे।

बेटे ने पिता के चेहरे पर ऐसा आह्लाद बरसों बाद देखा था। वे सारी व्यवस्था कर और संतू को दवाइयाँ समझा वापस लौट गया। पिता से रोज अब वीडियो कॉल पर बात होती। वह थोड़ा ही समय दे पाता, लेकिन यह समय उस समय से कहीं ज्यादा और खुशियों भरा होता, जो वह उन्हें अपने आलीशान बँगले में नहीं दे पाता था। उसे समझ नहीं आता था कि पत्नी को उसके पिता से किस जनम का बैर था। घर में रुपए-पैसे की कमी न थी। गाँव से खेतों से भी अन्न और पैसे खूब आते। फिर भी उसके वृद्ध पिता से कामों की अपेक्षा और काम के बदले सूखी रोटी। उसकी आँखें भरी ही रहतीं कि वह बेटे का फर्ज नहीं निभा पाया। पिता के स्वास्थ्य में गाँव जाकर अभूतपूर्व सुधार हुआ था। खेती पहले भी संतू ने सँभाली हुई थी। अब पिता के जाने से उसमें और निखार आ गया। वे दिन भर खेतों में टहलते, काम करते। शाम को अपने संगी-साथियों में बैठ जाते। जिंदगी हँसी-खुशी गुजरने लगी थी। संतू ने श्याम बाबू में एक नई आदत देखी। वे जहाँ कहीं भी घोंघे देखते, उन्हें उठा लाते, तालाब में डाल देते और बड़े जतन से उनकी देखभाल करते। एक दिन संतू ने पूछ ही लिया कि मालिक, आप बहुत रहमदिल हैं। सबके लिए आपके दिल में बहुत प्यार है। लेकिन ये घोंघे किस काम के! जिनके लिए आपके मन में इतना स्नेह उपज आया है।

श्याम बाबू ने कुछ उदासी से जवाब दिया—"संतू! प्रकृति ने कुछ भी फालतू नहीं बनाया। इनमें भूमि को उर्वरा करने की असीम शक्ति होती है। कुछ खनिज इसमें प्रचुर मात्रा में होते हैं। कुछ जनजातियाँ इन्हें उबालकर भी खाती हैं, लेकिन अफसोस, लोग इनकी बदसूरत शक्ल देख इन्हें भगा देते हैं।" कहते हुए श्याम बाबू की आवाज भारी हो गई। श्याम बाबू के शब्दों से संतू समझ गया, श्याम बाबू के मन को गहरी चोट लगी है। फिर उसने कभी इस बारे में उनसे कुछ नहीं पूछा। कहीं घोंघा मिल जाता तो भी उसे उठाकर एहतियात से तालाब में डाल आता।

□

उधर कोठी में एक चुप्पी-सी पसर गई थी। बच्चे माँ के डर से दादा के पास नहीं जा पाते थे, लेकिन माँ से छुपकर दादा से मिल अवश्य आते थे। मीता को छोड़ उनके इस घर से चले जाने से सब परेशान थे। समय बीतता गया। साल होने को आया। श्याम बाबू अब बिल्कुल स्वस्थ थे। बच्चे दादा के नाम की रट लगाए हुए थे। पोते ने बहुत जिद करके दादा को अपने जन्मदिन पर बुलाया। श्याम बाबू बहू का रवैया भूल छुटके के जन्मदिन पर आए थे। गाँव के ताजा-रसीले फलों से टोकरियाँ भरी हुई थीं।

बहू उन्हें देख हैरान थी। बीमारी का एक लक्षण भी नजर नहीं आ रहा था। वे पूरी तरह स्वस्थ थे। अब यह सिलसिला बन गया। साल में एक बार किसी एक बच्चे के जन्मदिन पर आते और एक रात रहकर लौट जाते। समय का चक्र अपनी गति से बीत रहा था। बहू के पिता बहुत बीमार रहने लगे थे। श्याम बाबू उनसे फोन पर लगातार हालचाल लेते रहते थे। वे बार-बार क्रोनिक बीमारी के चलते अस्पताल में एडमिट हो रहे थे। बहू अपने पिता से मिलने के लिए बेचैन थी। एक शहर में रहकर भी मिलना मुश्किल हो रहा था। पति अपने ऑफिस में व्यस्त और बच्चों के एक्जाम होने वाले थे, इसलिए स्कूल से छुट्टी संभव नहीं थी। फिर पति का कहना था, यह बार-बार अस्पताल में एडमिट हो रहे हैं। ये तुम्हारे भैया-भाभी की जिम्मेदारी है। वे तो सब छोड़ इनके पास रहेंगे, लेकिन मैं तुम्हें कितनी बार ले जाऊँ।

वह अपने पिता के साथ होने वाला अत्याचार भूला नहीं था, फिर भी पिता के दिए संस्कार थे, जो हर बार मिलवा लाता था। छुटके का जन्मदिन कुछ दिन बाद था। श्याम बाबू को उसके जन्मदिन पर गाँव से आना था। इधर बहू के पिता की तबीयत काफी खराब थी। आज अस्पताल में आठ दिन हो गए थे। तबीयत लगातार गिरती जा रही थी। बच्चों को कहाँ छोड़ वे पिता के साथ रुके, समझ नहीं पा रही थी। पति को कहा, पिता को कुछ दिन पहले बुला लो, बच्चों के पास रह लेंगे। कुछ दिन बाद तो उन्हें आना ही है। पति ने कहा कि रहने दो, उनके आने से तुम बहुत परेशान हो जाओगी। तुम्हें बहुत परेशान करते हैं, इसलिए यह विकल्प मत सोचो। मीता परेशान थी। पति से मदद की उम्मीद नहीं थी। खुद ही ससुर को फोन कर आने को कहा, जिससे वह अपने पिता के पास रह सके।

ससुर ने कहा कि बेटी, अभी यहाँ बहुत काम है। उसे निपटाकर मैं जरूर तुम्हारे घर रुक जाऊँगा। मीता चुप हो गई। किस मुँह से उन्हें जोर देकर आने को कहती। पिता का कुछ पता नहीं था। हालात बहुत खराब चल रही थी। अपना ही बोया हुआ काट रही थी। उधर पिता की स्थिति लगातार बिगड़ती जा रही थी। मीता की रात पलकों पर कटी। सुबह बच्चों को स्कूल छोड़ कुछ देर मिल आऊँगी, लेकिन उन्हें स्कूल से वापस कौन लाएगा? एक्जाम भी अभी होने थे। मीता को अपनी उलझनों का कोई सिरा ढूँढ़े से भी नहीं मिल रहा था। वह भीगी पलकें लिये बिस्तर पर लेटी थी। सुबह पौ फटते ही गेट पर गाड़ी का हॉर्न गूँजा। वह अनमनी सी कमरे से बाहर निकली। इस वक्त इतनी सुबह कौन आया होगा? दरवाजे पर उससे पहले पति ने पहुँच दरवाजा खोल दिया था। श्याम बाबू अपना सामान लिये उतर रहे थे। वह अविश्वास से उन्हें देख रही थी। उन्होंने आगे बढ़ बहू के सिर पर हाथ फेरा।

"बेटी, अपना सामान ले पिता के पास अस्पताल चली जाओ और चिंता मत करो, तुम्हारे भाई से मेरी बात हुई है। कुछ दिनों में ठीक हो तुम्हारे बाबूजी घर आ जाएँगे। पहले से स्वास्थ्य बेहतर है। यहाँ की चिंता मत करना। मैं सब सँभाल लूँगा। तुम तो जानती ही हो, खाना भी बना लेता हूँ। इसलिए मेरे रहते कोई फिक्र मत करना। जब तक दिल करे मायके भी रहकर आना।"

बहू की नजरें झुक गईं। गार्डन में इस वक्त भी घोंघे घुस आए थे। लेकिन इस बार बहू ने उन्हें नमक डालकर नहीं भगाया।

बी-१/२४८
यमुना विहार, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ८८२६२७०५९७

पाठकों से निवेदन

- जिन पाठकों की वार्षिक सदस्यता समाप्त हो रही है, कृपया वे सदस्यता का नवीनीकरण समय से करवा लें। साथ ही अपने मित्रों, संबंधियों को भी सदस्यता ग्रहण करने के लिए प्रेरित करने की कृपा करें।
- सदस्यता के नवीनीकरण अथवा पत्राचार के समय कृपया अपने सदस्यता क्रमांक का उल्लेख अवश्य करें।
- सदस्यता शुल्क यदि मनीऑर्डर द्वारा भेजें तो कृपया इसकी सूचना अलग से पत्र द्वारा अपनी सदस्यता संख्या का उल्लेख करते हुए दें।
- चैक **साहित्य अमृत** के नाम से भेजे जा सकते हैं।
- ऑन लाइन बैंकिंग के माध्यम से बैंक ऑफ इंडिया के एकाउंट नं. 600120110001052 IFSC-BKID 0006001 में **साहित्य अमृत** के नाम से शुल्क जमा कर फोन अथवा पत्र द्वारा सूचित अवश्य करें।
- आपको अगर **साहित्य अमृत** का अंक प्राप्त न हो रहा हो तो कृपया अपने पोस्ट ऑफिस में पोस्टमैन या पोस्टमास्टर से लिखित निवेदन करें। ऐसा करने पर कई पाठकों को पत्रिका समय पर प्राप्त होने लगी है।
- सदस्यता संबंधी किसी भी शिकायत के लिए कृपया फोन नं. 011-23257555, 8448612269 अथवा sahityaamritindia@gmail.com पर इ-मेल करें।

उजड़े हुए लोगों के बिखरे हुए ख्वाब

● देवी प्रसाद तिवारी

विभाजन इतिहास का वह काला अध्याय है, जिस पर प्रकाश डाले बिना आगे बढ़ना उचित नहीं है। विभाजन मनुष्य के संवेदनहीन होने की गवाही भी है। रोते-बिलखते बच्चों तक से उनके जीने का अधिकार छीना गया। उनके साथ तो और बुरा हुआ, जो अनाथ हुए। विश्व के ताकतवर देश अवाक् देखते रहे। जिन्हें हस्तक्षेप करना चाहिए था, वे मौन रहे। उजड़े हुए लोगों के बिखरे हुए ख्वाबों के साथ एक नए देश का सफर शुरू होता है, जहाँ हर गली में विस्थापितों की भीड़ है। विस्थापित सर्दियाँ तानकर सो रहे थे। रात किसी बामदे में बारिश से जद्दोजहद करते हुए बीत जाती थी। अखबार जिन कहानियों को जगह नहीं दे पाए, वे कहानियाँ गलियों में ऐसी बिखरी कि अखबार गलियों के लिए बासी हो गए। विभाजन का सच अखबारों से ज्यादा हिंदुस्तान की गलियों में था, जहाँ हर रोज विस्थापितों की संख्या बढ़ती जाती थी।

सबकुछ छूट जाने के बाद भी बहुत कुछ बचाए रखने की उम्मीद लिये धूल और धुएँ के गुबार के बीच से होकर गुजरी जिंदगियाँ जब बेपरवाह नेतृत्व के छलावे का शिकार होती हैं, तब जाकर उनका दर्द 'वाह कैंप' जैसे उपन्यास के रूप में छलक उठता है। ताव से ताँगा लिये पिडीं की गलियों में दौड़ते हिंदुओं और सिखों की उम्मीदों के विपरीत विभाजन की एक ऐसी भूमिका लिखी जाती है, जिसमें स्पष्ट कुछ भी नहीं था और इसी अस्पष्टता के कारण लाखों लोग बेघर हुए। हत्यारों, बलात्कारियों, अपहरणकर्ताओं और दंगाइयों पर किसी का कोई नियंत्रण नहीं रहा। यदि पहले से लोगों को पता होता कि उन्हें देश के किसी दूसरे हिस्से में जाकर बसना पड़ेगा तो शायद लोग विकल्पों पर विचार करते। विभाजन के दौरान पाकिस्तान में सबकुछ सुनियोजित था। पुलिस के सहयोग से हिंदुओं और सिखों को डरा-धमकाकर या फिर सुरक्षा का हवाला देकर कैंपों की ओर लाया जाता था और फिर वहाँ से यह कहकर उन्हें उनके शहरों से, उनके गाँवों से दूर कर दिया जाता था कि स्थिति बेहद तनावपूर्ण है, जिसे देखते हुए उन्हें और अधिक सुरक्षित जगहों पर भेजा जा रहा है। हिंदुओं और सिखों के घरों को आनन-फानन में खाली कराया गया, जिससे कि वे अपना जरूरी सामान तक अपने साथ नहीं ला सके। उन्हें इसकी उम्मीद ही नहीं थी कि वे सदा-सदा के लिए अपने आँगन से विदा हो रहे हैं। कितनों के मिट्टी में छुपाए धन मिट्टी में ही रह गए, कुछ की पोटलियाँ रास्ते में छीन ली गईं और जो कुछ बच भी गया था, वह कैंपों में खर्च हो गया। थोड़े सहयोग के नाम पर लोगों ने मोटी वसूली शुरू कर दी थी। थोड़े ही दिनों में माहौल ऐसा बना दिया गया कि अपने घर की ओर लौटने की तो छोड़िए, लोगों को जीवन के लाले पड़ गए। भारत की ओर जाने वाली किसी गाड़ी की अफवाह मात्र से रेलवे स्टेशनों पर भीड़ मानो उमड़ पड़ती थी। कैंपो में सिमटी जिंदगियाँ वृत्तांतों के सहारे आगे बढ़ रही थीं। किसने कितना खोया, क्या-क्या खोया, इस पर चर्चा आम थी। लोगों को सगे-संबंधियों को खो देने की पीड़ा ज्यादा थी। बिछड़े संबंधियों के लौट आने की उम्मीद लिए कैंप के मुख्य द्वार की ओर टकटकी लगाए लोगों को हर रोज निराश होना पड़ता था और धीरे-धीरे यही निराशा नाउम्मीदी में बदल जाती थी। प्राय: होने वाले दंगों के वृत्तांत सुनकर दिल दहल उठता था। विभाजन के दौरान कैंपों तक पहुँच चुके लोग भोजन और दवा के अभाव में मरने लगे। कैंप में कोई-न-कोई घटना हर रोज होती थी। जो दंगों में न मरे, उन्हें भूख मार गई। भारत की ओर आने की उम्मीद लिये बैठे कितनों की धड़कन थम गई, इसका कोई निश्चित आँकड़ा बता पाना मुश्किल है, लेकिन कैंपों में दिन व्यतीत कर लौटे द्रोणवीर कोहली जैसे कथाकार विभाजन के वर्षों बाद उस आपबीती को लिखते हैं, जिसके भीतर से वह सच निकलकर आता है, जो किसी भी आँकड़े पर भारी है। कैंप के बाहर जाते ही किसी घटना का शिकार हो जाने का भय लिए कैंपों में कैद होकर रह गई जिंदगियों में जब कभी कुछ सुबबुगाहट होती, सभी चौकन्ने हो जाते। कैंप सुरक्षित थे ऐसा नहीं था, हमला कहीं भी हो सकता था। बारिश में बजबजाते कैंप की अपनी अलग दुश्वारियाँ थीं। नहाने का तो छोड़िए, पीने का पानी भी बमुश्किल उपलब्ध हो पाता था। रूखा-सूखा खाकर खुली हवा में साँस लेने को बेताब बेघर परिंदों को बस एक ही आस थी कि जिंदगी की गाड़ी किसी तरह हिंदुस्तान में दाखिल हो जाए। कभी बेरोकटोक बसर करने आबादी ने इतने पहरे नहीं देखे थे। पहले भी फसाद हुए, स्थितियाँ

सुपरिचित लेखक। पी-एच.डी. (हिंदी साहित्य) काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी। शोध विषय : आधुनिक हिंदी कवियों का लोक भाषा साहित्य। संप्रति पोस्ट डाक्टोरल फेलो आई.सी.एस.एस.आर., नई दिल्ली। शब्द शिल्पी सम्मान, उ.प्र. भाषा संस्थान लखनऊ से सम्मानित।

अनियंत्रित हुईं, लेकिन लोगों की सकारात्मक पहल पर नियंत्रित भी हो गईं। विभाजन में नियति का खोट था। जिसकी धेले भर की भी गिरहस्ती नहीं थी, वह भी किसी विस्थापित के घर में आबाद हो गया। विस्थापितों के घर में विस्थापित ही पहुँच रहे थे, ऐसा नहीं था। खाली घर पर जिसकी नजर पहले पड़ी, उसका वही मालिक बन बैठा। कैंपों में बेबस भूखे कुछ ऐसे भी लोग हुआ करते थे, जिनके अपने गोदाम अनाजों से भरे पड़े थे, जिसकी चाभियाँ अब भी उनके छल्लों में दुरुस्त थीं, लेकिन वहाँ तक पहुँचा कैसे जाए, इसका उत्तर किसी के पास नहीं था।

भूख और लचारी से सुस्त पड़ चुके लोगों में रेलगाड़ी ही एक उम्मीद थी, जिसकी घरघराहट कानों में किसी संगीत की तरह सुनाई पड़ती थी। बिछड़े हुए लोगों की यादों के सहारे भारी मन से अपनी मिट्टी को अंतिम प्रणाम करने के वक्त भी लोगों में अपनों से मिल पाने की आखिरी उम्मीद खत्म नहीं हुई थी। रेलगाड़ी की बंद खिड़कियों की सुराख से भी बाहर की दुनिया को एक और बार देख लेने की जद्दोजहद में यात्रियों की भीड़ से उठती चीखें किसी भयावह दुर्घटना का संकेत हुआ करती थीं। दरअसल रेलगाड़ी की खिड़कियों में बने हुए सुराख बाहर से अचानक आ रही गोलियों के कारण हो जाया करते थे। विभाजन के दौरान ऐसी अव्यवस्था देखने को मिलती है कि रास्ते में भारत आने वाली गाड़ियों के बदले जाने का भी फरमान सुनाया जाता है। यह गाड़ी भारत की ओर नहीं जाएगी, ऐसी घोषणा के साथ ही यात्रियों में भगदड़ मच जाती थी। थोड़े-बहुत कपड़े और बरतन गाड़ी बदलने की प्रक्रिया में छूट जाते थे, अर्थात् गंतव्य तक पहुँचने तक ऐसी अनिश्चितता कि जिसका वर्णन करते हुए रूह काँप जाती है।

सूखी रोटी का टुकड़ा गंतव्य तक साथ बना रहे, इसलिए उसका प्रयोग कुछ इस प्रकार से करना था कि वह पेट में भले ही न जाए, लेकिन भूख को यह भ्रम बना रहे कि रोटियों के टुकड़े साथ हैं। अव्यवस्था इतनी चरम पर थी कि लाशों के साथ यात्रा कर रहे यात्रियों की गाड़ियाँ घंटों किसी बियाबान में रोक दी जाती थीं। रात के सन्नाटे में कहीं दूर से आती आवाज भी डरावनी लगती थी। दिल की धड़कन बढ़ जाती थी। घर से निकलकर राहत शिविरों में महीनों गुजारने वाली आबादी की सूखी आँखों में केवल दृश्य थे। उनके घरों की कच्ची दीवारें उनकी आँखों में ऐसे उतर आई थीं कि कोई भी संजीदा लेखक उनकी आँखों में आँखें डालकर वह दृश्य देख सकता था। घर से निकलते वक्त बेजुबान बछड़ों की आँखों में आँसू थे, लेकिन वे साथ नहीं आ सके। सरकारी रजिस्टर में विस्थापितों की एक लंबी सूची थी और उसी सूची के अनुसार उनकी व्यवस्था कर पाना बहुत कठिन था। विस्थापितों की संख्या इतनी अधिक थी कि राहत शिविरों में उनका पेट बमुश्किल भर पाता था।

विभाजन के गुनहगार कुछ ही थे, लेकिन भुक्तभोगियों की संख्या अनगिनत थी। क्या अमीर क्या गरीब, 'दो पाटन के बीच में साबुत बचा न कोय।' विभाजन के दौरान कराची से दिल्ली पहुँच लालकृष्ण आडवाणी अपनी आत्मकथा में लिखते हैं कि हम यह न भूलें कि यह कोई साधारण त्रासदी नहीं थी। विभाजन से जुड़े दंगों में जल्दबाजी में खींची गई सीमा-रेखा के दोनों ओर लगभग १० लाख हिंदू, सिख और मुसलमान कत्ल कर दिए गए। मानव इतिहास में आबादियों के अब तक के सबसे बड़े पारगमन में ब्रिटिश शासन द्वारा सीमांकन में की गई जल्दबाजी और अतार्किकता का बड़ा हाथ था। लगभग छह महीनों के भीतर एक करोड़ से अधिक लोग शरणार्थी बन गए। चाहे वे हिंदू थे या मुसलिम या सिख, उनकी यातना एक जैसी थी। विभाजन तो बुरा था ही, परंतु जिस संवेदनशून्यता से उसे कार्यान्वित किया गया, उसने उसे बेहद बदतर बना दिया, जिसकी दु:खद स्मृतियाँ लंबे समय तक बनी रहीं।" ये जो विभाजन की दु:खद स्मृतियाँ हैं, उन्हें भूल पाना न तो उन विस्थापितों के लिए संभव है और न ही उनकी आने वाली पीढ़ियों के लिए। हाँ, यह जरूर है कि धीरे-धीरे घाव भर जाता है, लेकिन उसके निशान रह जाते हैं। १४ अगस्त को विभाजन की विभीषिका दिवस पर आयोजित होने वाली संगोष्ठियाँ अनायास नहीं हैं। विभाजन की विभीषिका के शिकार हुए लोगों के लिए यह एक श्रद्धांजलि है।

एक देश से दो देश बनने के क्रम में लाखों जान गईं, जिनका कोई कसूर नहीं था। उनकी समस्याओं को सुनने के लिए कोई अदालत नहीं थी। बेजुबान पथराई आँखों पर बरसती गोलियाँ कब किसका मुकद्दर बनेगीं, कोई नहीं जानता था। माँ की गोद में चीखता दुधमुहा बच्चा भी माँ की लाचारी पर हैरान था। माँ अब उसे नहीं, उसका जीवन चाहती थी, इसीलिए भारत की ओर सुरक्षित जा रही लारियों में बैठे कुछ संपन्न लोगों से बच्चे को अपने साथ ले जाने का निवेदन करते हुए कुछ दूर तक लारियों का पीछा करती थी और फिर बेसुध। ऐसे ही दृश्यों का उल्लेख भारत के प्रतिष्ठित पत्रकार कुलदीप नैयर ने भी अपनी पुस्तक 'एक जिंदगी काफी नहीं' में किया है। कुलदीप नैयर भी उन विस्थापितों में शामिल थे, जिन्हें विभाजन के कारण सियालकोट छोड़ना पड़ा। विभाजन की उस भयावह त्रासदी के चश्मदीद कुलदीप नैयर। अपनी पुस्तक में कुलदीप नैयर उन दिनों को याद करते हुए लिखते हैं कि सड़क पर शरणार्थियों का एक सैलाब बहता हुआ दिखाई दे रहा था। अपने-अपने घरों से उजड़े और दूर-दराज के गाँवों-शहरों से चले आ रहे हिंदू-सिख शरणार्थी, जो अपने बच्चों और इक्का-दुक्का सामान के साथ भारत की तरफ बढ़े चले आ रहे थे। यह बड़ा हृदयविदारक दृश्य था। वे सब बहुत बदहवास और बेहाल दिखाई दे रहे थे, थके-टूटे परेशान और लाचार। उनके फटे हुए कपड़े रिसते घाव और सामान के नाम पर इक्का-दुक्का गठरियाँ उनके पलायन के दर्द की कहानी सुना रहे थे। वे 'दंगों' के शिकार नहीं थे, यह शब्द उनकी यातना को अभिव्यक्त करने के लिए नाकाफी था। वह उस दानवीय नरसंहार के शिकार थे, जो दोनों समुदायों पर एक जुनून की तरह हावी हो चुका था।" विभाजन की त्रासदी के बावजूद लोगों में अपने पूर्वजों की भूमि के प्रति एक आकर्षण बना रहा।

लालकृष्ण आडवाणी को जब पाकिस्तान जाने का मौका मिला तो उन्होंने उन स्थानों पर भी जाने का निर्णय लिया, जहाँ उनका बचपन व्यतीत हुआ था, ऐसे उल्लेख उन्होंने अपनी पुस्तक में किया है। विभाजन की विभीषिका दिवस पर आयोजित हो रही संगोष्ठियाँ उन तथ्यों का पुन:

पड़ताल करने का एक प्रयास है, जिनके कारण भारत को एक भयावह त्रासदी का सामना करना पड़ा। ऐसी संगोष्ठियों में विस्थापित परिवारों को शामिल करके उनके विचारों को सुनना जख्मों को ताजा करने के लिए नहीं है, बल्कि उस वास्तविकता से परिचित होना है, जिससे नई पीढ़ी अपरिचित है। विभाजन के दौरान संस्कृति, भाषा बल्कि कहिए कि एक सभ्यता की हत्या हुई। रोटियों के लिए तड़पकर मरे लोगों की आह ने धरती का सीना छलनी कर दिया। पक चुकी फसलें सिर्फ इसलिए जलाई गईं कि वह खेत किसी हिंदू या सिख का था। विभाजन हिंसा में उत्सव का गवाह भी है। ढोल, नगाड़ों का बजना उत्सव के लिए नहीं हिंसा के लिए था। डर पैदा करना और हिंदुओं व सिखों के घरों पर कब्जा करना पाकिस्तान में एक रीति बन गई थी, जिसमें पाकिस्तान का प्रशासन खुलेआम सहयोग कर रहा था। देश बँट गया, लोग डरकर वतन छोड़ने भी लगे, बावजूद इसके लोगों को मारा जाता रहा। लाशों से भरकर गाड़ियाँ भेजी जाने लगीं। कौन कितने लोगों की हत्या कर सकता है, इसकी शर्तें लगने लगीं। पूर्वी पाकिस्तान से लेकर पाकिस्तान तक हिंदुओं और सिखों पर भयानक अत्याचार हुआ। विभाजन एक ऐसा एजेंडा था, जिसके सामने कांग्रेस की लगभग नीतियाँ धरी की धरी रह गईं। देश बँट गया, लेकिन बँटकर भी एक ऐसा घाव दे गया, जिसे भरने में एक लंबा वक्त लगा।

भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध में विभाजन का घाव रह रहकर ताजा होता रहा। विभाजन के बाद जो हिंदू पाकिस्तान में रह गए थे या फिर किसी कारण हिंदुस्तान की ओर नहीं आ पाए थे, उनकी संख्या धीरे-धीरे घटती रही। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की स्थिति और अधिक बदतर होती चली गई। बहुत से हिंदू परिवार किसी-न-किसी बहाने भारत में शरण लेते रहे। पाकिस्तान में हिंदुओं पर अत्याचार की अनेक खबरें अखबारों में प्रकाशित भी होती रहती हैं।

भारत और पाकिस्तान के बीच हुए युद्ध में विभाजन का घाव रह रहकर ताजा होता रहा। विभाजन के बाद जो हिंदू पाकिस्तान में रह गए थे या फिर किसी कारण हिंदुस्तान की ओर नहीं आ पाए थे, उनकी संख्या धीरे-धीरे घटती रही। पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की स्थिति और अधिक बदतर होती चली गई। बहुत से हिंदू परिवार किसी-न-किसी बहाने भारत में शरण लेते रहे। पाकिस्तान में हिंदुओं पर अत्याचार की अनेक खबरें अखबारों में प्रकाशित भी होती रहती हैं। हिंदी के एक लेखक असगर वजाहत का पाकिस्तान जाना हुआ। उन्होंने वहाँ से लौटकर यात्रा-वृत्तांत लिखा। असगर वजाहत के यात्रा-वृत्तांत को पढ़कर पाकिस्तान में अल्पसंख्यकों की स्थिति क्या है, इसका अंदाजा लगाया जा सकता है। विभाजन के कारण भयभीत हिंदू भारत की ओर चले आए, लेकिन उनके घर आज भी ज्यों के त्यों हैं। पत्थरों पर उनके असली हकदारों का नाम है, लेकिन कब्जा दूसरों का है।

ऐसी ही एक हवेली का उल्लेख असगर वजाहत अपने संस्मरण में करते हैं—"पुरानी शानदार हवेली की तीसरी मंजिल पर हवेली के मालिक का नाम पत्थर पर पढ़ना मुश्किल काम था। मैंने दूसरा कैमरा निकाला, जिसमें काफी अच्छा जूम लेंस लगा था। हवेली की तीसरी मंजिल पर लगे पत्थर पर जूम इन किया तो (ॐ) के नीचे १९३१ लिखा था। कलात्मक ढंग से पत्थर में बेलबूटे बनाकर दाहिनी तरफ उर्दू में गोस्वामी ब्रज कुमार और उसके नीचे कृष्ण कुमार लिखा था। बाईं तरफ पहलवान गोस्वामी काशीराम लिखा था। ऐसी न जाने कितनी इमारतें थी।" ये हवेलियाँ आज भी विभाजन की गवाही हैं। इन हवेलियों को बनाने वालों ने कितने ख्वाब सँजोए होंगे, लेकिन उन्हें क्या पता था कि ये ख्वाब पत्तों की तरह बिखर जाएँगे। आज भी अनेक ऐसे विस्थापित परिवार हैं, जिनका यह प्रयास रहता है कि अपने जीवनकाल में एक बार अपने उसे मूल स्थान को देख आएँ, जहाँ से उन्हें उनकी इच्छा के विपरीत निकलना पड़ा था। यदा-कदा अखबारों में यह पढ़ने को भी मिलता है कि कुछ ऐसे बुजुर्ग, जिनकी स्मृतियों में अपना बचपन जीवंत रहा, वे अपने व्यक्तिगत प्रयासों से अपने उन गाँवों तक हो आए, जिसे कभी उन्होंने अलविदा कह दिया था। जो परिवार हिंदुस्तान चले आए, उनका पाकिस्तान के उन गाँवों तक पहुँचना बेहद मुश्किल था, जहाँ से वह आए थे, क्योंकि पाकिस्तान की सरकार उन्हें वीजा ही नहीं देती, लेकिन जो लोग विश्व के अन्य देशों की ओर चले गए, उनके लिए वहाँ तक पहुँच पाना थोड़ा आसान था, लेकिन घूमने भर के लिए, बसने के लिए नहीं।

१४ अगस्त को विभाजन की विभीषिका दिवस के रूप में मनाया जाने लगा है, जिसका उद्देश्य विभाजन को याद करने के साथ ही उस त्रासदी का शिकार हुए लोगों को श्रद्धांजलि भी अर्पित करना है। विभाजन की विभीषिका दिवस विभाजन की स्वीकार्यता पर एक सवाल की तरह है। विभाजन की विभीषिका दिवस पर कुछ ऐसे भी सवाल आते हैं कि आखिर विभाजन हुए वर्षों बीत गए तो फिर विभाजन पर चर्चा करने से पुराने घाव ताजा हो जाते हैं, इससे दो समुदायों में दूरियाँ बढ़ सकती हैं। ऐसा भी इसलिए कहते हैं कि वे जिस विचारधारा को मानने वाले लोग हैं, विभाजन को लेकर वे हमेशा कठघरे में खड़े किए जाते रहे हैं। विभाजन पर बातचीत होने से उनकी हताशा और निराशा साफ छलकने लगती है, जिसकी विचारधारा की विफलता विभाजन को रोकने में रही। विभाजन पर संगोष्ठियों के आयोजन में सिर्फ राजनीतिक मुद्दों पर ही बातचीत नहीं होती, बल्कि हम उस अखंड भारत पर चर्चा करते हैं, जिसकी गवाही हमारे ऐतिहासिक ग्रंथ करते हैं। जिस भूमि से हमारे पूर्वजों के रिश्ते हों, जहाँ के देवालयों में घंटे घड़ियाल बजते हो उससे हमें कोई एक निर्णय अलग कर देगा, यह संभव नहीं था।

विभाजन के खिलाफ खड़े हुए लोगों की आवाजों पर कुछ ऐसे लोगों का पहरा था, जिसके कारण विभाजन का विरोध उस स्तर पर नहीं हो सका, जैसा कि होना चाहिए था। विभाजन का निर्णय यदि सही रहा होता, अर्थात् जनता की उसमें सहमति रही होती तो इतनी हत्याएँ कदापि न होतीं। विभाजन का निर्णय लेते वक्त असहमति को अनसुना किया गया। सांप्रदायिक तनाव को नजरअंदाज किया गया। आपस में किसी ऐसे निर्णय पर पहुँचने के बजाय उन अंग्रेजों पर भरोसा किया गया, जिसकी

नीतियाँ पूर्व से ही विघटनकारी थीं। विभाजन पर मुहर लगने से पूर्व ही दंगों की शुरुआत हो गई। यह सुनियोजित था, क्योंकि जब इस प्रकार का माहौल बन जाता कि दो समुदाय किसी भी कीमत पर साथ रहने को तैयार नहीं हैं तो विभाजन पर मुहर लगने में ज्यादा सहूलियत होती और यही हुआ भी। जम्मू पर कबाइलियों का सुनियोजित हमला हो या फिर विस्थापित परिवारों का कत्लेआम, यह सबकुछ तब घटित हो रहा था, जबकि दोनों देशों के वरिष्ठ सैन्य अधिकारी अंग्रेज थे। हिंदुओं पर हमले के पीछे का कारण सांप्रदायिक था या फिर उसके पीछे भी कोई अन्य अंतरराष्ट्रीय साजिश थी, जिसका अध्ययन नहीं किया गया। विभाजन के बाद अनेक ऐसी घटनाएँ होती रहीं, जिसकी कोई प्रामाणिक जानकारी जनता के बीच नहीं आ सकी। श्रीनगर की जेल में श्यामा प्रसाद मुखर्जी की मृत्यु हो या फिर पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु, दोनों पर परदा डाल दिया गया। श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने कश्मीर को लेकर आंदोलन शुरू किया था, उनका ऐसा मानना था कि एक ही देश में दो विधान नहीं चल सकते और देश के पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री के नेतृत्व में पाकिस्तान को मुँह की खानी पड़ी थी।

विभाजन से दु:खी लोगों ने अपने-अपने ढंग से सरकार से सवाल किए, इसलिए नहीं कि उन्हें उनके सवाल का उचित उत्तर मिलेगा, बल्कि इसलिए कि नेतृत्व हाँफते हुए ही सही, लेकिन कुछ प्रयास तो करे। लालकृष्ण आडवाणी अपनी पुस्तक में लिखते हैं—"अधिकांश विस्थापित यह सोच रहे थे कि देश से अंग्रेजों का निष्कासन, क्यों उनके अपने पैतृक घरों और गाँवों से, जहाँ उनके परिवार सदियों से रह रहे थे, उनका स्वयं का निष्कासन बन गया। विभाजन पर लिखे गए प्रचुर साहित्य, जो मैंने पढ़ा है, में से दो साधारण विस्थापितों द्वारा की गई, ये टिप्पणियाँ मुझे भीतर तक छू गईं।" मुल्क ने कई हुकूमतों को बदलते देखा है, पंजाब की एक वृद्ध ग्रामीण मुसलिम ने कहा, "कई हुक्मरान आए और चले गए, लेकिन यह पहली बार हुआ है कि हुकूमत के बदलने के साथ ही अवाम को भी बदलना पड़ रहा है।" इसी प्रकार बुजुर्ग हिंदू महिला ने पं. नेहरू से यह सवाल किया कि "हर परिवार में बँटवारा होता है, संपत्ति बाँट ली जाती है, परंतु यह सब शांतिपूर्वक हो जाता है। फिर यह कसाईपना, लूट और अपहरण क्यों? क्या आप इसे थोड़ी समझ से नहीं कर सकते, जैसा बँटवारे के समय परिवार करते हैं?"

सा.अ.
पोस्ट-डाक्टोरल फेलो
आई.सी.एस.एस.आर, नई दिल्ली
दूरभाष : ९४५२५६२८४७

गीत

वसंत ऋतु है

• सुनील त्रिपाठी निराला

सुपरिचित कवि। देश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में कविताओं का प्रकाशन एवं दूरदर्शन व आकाशवाणी से प्रसारण। अनियतकालीन साहित्यिक पत्रिका 'उजास' का संपादन। राज्यपाल मध्य प्रदेश तथा महामहिम राष्ट्रपति द्वारा उत्कृष्ट सेवाओं के लिए सम्मानित।

खिले हैं तरुवर मगन है डाली,
नवीन कोपल, नवीन पत्ते।
पुनीत पावन, वसंत ऋतु है,
गगन, धरा को करे नमस्ते॥

लुभा रही, उसकी चित्रकारी,
धरा-गगन का, मिलन क्षितिज में,
दशों दिशाएँ, महक रही हैं,
सजीव-निर्जीव, सब बहकते।

तरंगिणी का प्रवाह अद्‌भुत,
लहर लहरती उछल रही है,
जलधि की बाँहों में झूमने को,
चली है द्रुतगति से वे मचलते।

नियति नटी के क्रियाकलापों,
में भर गया है नवीन चिंतन,
छिड़ी है उपवन में ध्वनि वसंती,
उठा है कलरव विहग विहँसते।

लुटा रहा रवि उजास जग को,
किरण सुशोभित ललाम नभ में,
मगन हुआ मन सुनील ऐसे,
मिला हो जैसे, वह चलते-चलते।

सा.अ.
जैतपुरा मढ़ी, भिंड (म.प्र.)
दूरभाष : ९८२६२३६२१८

...गंगासागर एक बार

● प्रेमपाल शर्मा

अंतरराष्ट्रीय ख्याति प्राप्त, महामारी विशेषज्ञ डॉक्टर स्मरजीत जैना ८ मई, २०२१ को कोरोना की भेंट चढ़ गए, उन के व्यक्तित्व और कृतित्व पर लिखी जा रही पुस्तक के संदर्भ में एक बार फिर मित्र आनंद शर्मा के साथ मेरा कोलकाता जाना हुआ। ९ अप्रैल, २२ को सायं ५:४० बजे पूर्वा एक्सप्रेस से नई दिल्ली रेलवे स्टेशन से यात्रा आरंभ हुई। सो खाना खाकर रात में सो ही गए। प्रात: की वेला में मैं देख रहा हूँ, उत्तर में गेहूँ की कटाई और मढ़ाई का काम साथ-साथ चल रहा है, जहाँ तक नजर जाती है, खेतों में सोना बिखरा पड़ा है। इस बार जल्दी ही सूर्य भगवान् ने आग बरसाना शुरू कर दिया है। इधर बिहार में भी गेहूँ की फसल की कटाई हो रही है। बिहार में हर गाड़ी का हाल कुछ दूसरा ही हो जाता है। यहाँ पर लोकल यात्री आरक्षित सीटों पर भी बड़े रुआब से बैठते हैं। हॉकरों की तो रेलमपेल हो जाती है, प्रतिबंधित गुटखा धड़ल्ले से बिकता है। यहाँ पर टी.सी. लोग गधे के सींग की तरह गायब हो जाते हैं।

लोकल यात्री गुटखा-तंबाकू थूक-थूककर वाश बेसिन बेतरह गंदा कर देते हैं, शौचालयों में सामान भर देते हैं, पूरी बोगी में बदबू फैल जाती है। हिजड़ों का यहाँ अपना ही राज चलता है, जबरिया वसूली करते हैं। शायद इन सब बातों को ध्यान में रखकर रेलवे यहाँ के प्लेटफॉर्म तथा अन्य सुविधाओं की ओर ध्यान नहीं देता। ज्यादातर प्लेटफॉर्म टूटे पड़े हैं, यहाँ सफाई तो शायद ही कभी होती हो। अभी गाड़ी बिहार में दौड़ रही है।

बिहार-झारखंड के बाद गाड़ी खाली-खाली सी हो गई। अभी तक मैं यही समझता था कि मर्द लोग ही दबंगई करते हैं, यहाँ ट्रेन में चार औरतों की दबंगई हैरान करने वाली थी। हुआ यों कि दो जोड़ा बंगाली महिलाएँ गयाजी स्टेशन से गाड़ी में चढ़ीं, शायद आपस में माँ-बेटी थीं—दो जवान, दो अधेड़। हमारे कैबिन में हम दो के अलावा एक मजदूर महिला अपने बच्चे के साथ बैठी थी, सीटें खाली होने की वजह से बच्चा पूरी सीट पर खेल रहा था। दो माँ-बेटी तो एक सीट पर पसर गईं, पर दो माँ-बेटी, जो पढ़ी-लिखी और संभ्रांत लग रही थीं, उस मजदूर महिला को हड़काने लगीं, बिल्कुल बिहार वाले अंदाज में, 'ऐ चलो, हटो यहाँ से, बैठने दो'; उसने कहा, 'बैठ जाओ, जगह तो बहुत है।' इस पर वे दोनों बोलीं, 'हम इधर ही बैठेंगी, तुम बहुत बैठ लिए, अब हमको बैठने दो; हम क्या खड़ी-खड़ी ही जाएँगी? चलो इधर से, अपने बाबू को भी ले जाओ।' आखिर उस मजदूर महिला को वहाँ से हट जाने को मजबूर कर दिया। बेचारी क्या कर सकती थी।

सुपरिचित लेखक-संपादक। बुलंदशहर (उ.प्र.) के मीरपुर-जरारा गाँव में जन्म। देसी चिकित्सा लेखन में विशेष दक्षता। 'जीवनोपयोगी जड़ी-बूटियाँ', 'स्वास्थ्य के रखवाले', 'घर का डॉक्टर', 'स्वस्थ कैसे रहें?' तथा 'शुद्ध अन्न, स्वस्थ तन' एवं 'नगरी-नगरी, द्वारे-द्वारे' (यात्रा-संस्मरण) कृतियाँ चर्चित। 'साहित्य मंडल' नाथद्वारा द्वारा 'संपादक-रत्न' एवं 'हिंदी साहित्य-मनीषी' की मानद उपाधियाँ। आकाशवाणी मथुरा तथा नई दिल्ली से परिचर्चा, वार्त्ता आदि प्रसारित।

आँखों पर काला चश्मा चढ़ाई, लिपी-पुती, फैशन में डूबी दोनों माँ-बेटी ऐसा दिखा रही थीं, जैसे वे गलती से इस धरती पर उतर आई हैं। दरअसल जगह तो बहुत थी, पर वे उस मजदूर महिला के साथ बैठकर अपना स्टेटस खराब नहीं करना चाहती थीं; उनमें से दो तो आसनसोल पर उतर गईं, फिर वे दोनों माँ-बेटी हमारी सीटों पर अधलेटी हो गईं। अपनी दबंगई पर वे कितना इतरा रही थीं, सो कैसे लिखूँ। महिला ही महिला की दुश्मन होती है, यह उक्ति आज भी बदली नहीं है। मर्द हो या औरत, सब अपने से कमजोर और गरीब पर अपना रोब गालिब कर अपने अहं की तुष्टि करते हैं।

उधर उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड में जहाँ खेतों में सोना बिखरा पड़ा था, यहाँ बंगाल में दुर्गापुर के बाद तो दृश्य ही बदल गया। जहाँ तक नजर जा रही है, हरियाली का विस्तार है; खेतों में धान की बालियाँ मस्ती में झूम रही हैं। बंगाल के ग्रामीण जीवन के भी दर्शन होने लगे हैं। आखिर रुकते-चलते दस अप्रैल को सायं सात बजे हम लोग हावड़ा जं. पर उतर गए। दुर्बार (DMSC) की ओर से अविनाश लेन वाली ऑफिस की इमारत में ही चौथे माले पर यहाँ के केयर टेकर लाड़ले ने हमारे ठहरने की व्यवस्था कर दी थी। स्टेशन से हमने कलकत्ता की चिर परिचित पीली टैक्सी यानी प्री पेड टैक्सी ली और आधा घंटा में ही अपने डेरे पर आ गए। लाड़ले हमें यहाँ इंतजार करता हुआ मिला, उसने दौड़कर टैक्सी की डिक्की से हमारे बैग निकाले। दिनभर की भीषण गरमी से बदन चिपचिपा गया था, सो पहले गंगाजल से जी भर स्नान किया।

स्नान के बाद कुछ सुकून मिला। यहाँ के स्थानीय ढाबे से दाल-रोटी लाकर अपने डेरे पर बैठ क्षुधा शांत की। थके-माँदे तो थे ही, सो पंखे की हवा में सो गए। यह सोनागाछी रेड लाइट एरिया होने की वजह से रातभर यहाँ बड़ी रौनक और तेज-तेज गानों की भारी चिल्ल-पों मची रहती है। दलाल और भड़वे ग्राहकों की तलाश में रात भर खड़े-खड़े ही सड़क पर जागरण करते हैं। यौनकर्मियाँ अपने ग्राहकों को लुभाने के लिए खूब सज-सँवरकर भड़कीले कपड़ों में अपनी बाड़ी (कोठे) के बाहर खड़ी या बैठी नुमाइश लगाए रहती हैं, आँखें सेंकने के लिए मनचलों की टोलियाँ इधर टहलती हुई देखी जा सकती हैं। जैसे-जैसे रात्रि होती जाती है, वैसे-वैसे रौनक बढ़ती जाती है। शोरगुल कितना भी क्यों न हो, नींद कुछ भी नहीं देखती। मैं तो घोड़े बेचकर सोया, प्रात: सात बजे ही जागा, रात भर क्या हुआ, मुझे पता नहीं। यात्रा में भी मैं प्रात: में हलका व्यायाम जरूर करता हूँ। व्यायाम के बाद स्नान किया। आनंदजी जागे तो चाय पीने और अखबार पढ़ने नीचे उतर गए। बाद को मैं भी चाय पीने गया। यहाँ चाय कुल्हड़ में मिलती है; छोटे-छोटे बड़े प्यारे कुल्हड़ होते हैं, जो दिल्ली में नहीं मिलते। कलकत्ता में पोलीथीन का उपयोग नाममात्र को ही होता है, यह अच्छी बात है। मैं देखता हूँ, प्रतिदिन कुल्हड़ देने वाला अपनी लंबी हथठेली में कुल्हड़ भरकर लाता है, चाय की दुकानों पर सप्लाई करता है।

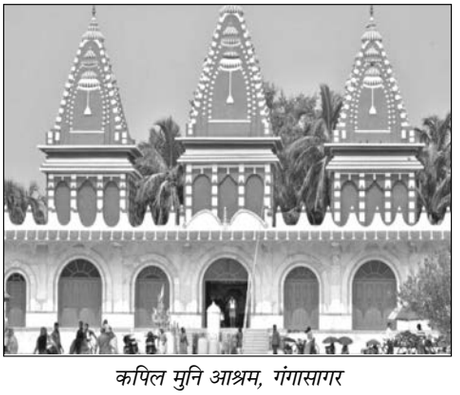

कपिल मुनि आश्रम, गंगासागर

आज अपनी इमारत के ठीक सामने बिहार के पांडेजी की दुकान से चाय पी, फिर कचौड़ी-सब्जी का नाश्ता किया। यहाँ पर हर चीज पीस (नग) के हिसाब से बिकती है, जैसे—एक कचौड़ी छह रुपया, एक समोसा दस रुपया, एक जलेबी का छत्ता छह रुपया, चाय दस रुपए। चाय-नाश्ते से निबट करीब साढ़े दस बजे हम दोनों मित्र दुर्बार के ऑफिस के लिए निकल गए। वैसे यहाँ कर्मचारी कार्यालय में ग्यारह बजे से पहले नहीं आते हैं। यहाँ दुर्बार के तीन ऑफिस हैं। एक, जिसमें हम ठहरे हुए हैं, इसमें नीचे टीआई का प्रोजेक्ट चलता है। दुर्बार की अध्यक्षा विशाखाजी समय से ऑफिस आ गईं। प्रणाम-पाती के बाद उन्होंने बताया कि भैया, हम लोग तो बारुईपुर जा रही हैं, वहाँ पर आज विजिट है। आपको जो भी जानकारी या कागज चाहिए, मेरे सेक्रेटरी पिंटू दा सब उपलब्ध करा देंगे। पुस्तक के लिए हमें तो डॉ. जैना से संबंधित जानकारी तथा उनके फोटोग्राफ जुटाने थे। पिंटू दा ने हमारी भरपूर मदद की। फिर अन्य दोनों कार्यालयों में जाकर हमने दुर्बार के आनुषंगिक संगठनों के जिम्मेदार लोगों से मिलकर जानकारी डायरी में नोट की।

श्रीमान विश्वजीतजी ने दुर्बार स्पोर्टस एकेडमी के बारे में विस्तार से हमें बताया। असीम सेनजी ने अमलासोल में दुर्बार एनजीओ कैसे पहुँचा और वहाँ क्या-क्या काम कर रहा है, सबकुछ सिलसिलेबार बताया। उत्तमजी ने पुरुलिया में नचिनी कम्युनिटी के लिए डॉ. जैना ने क्या-क्या, कैसे-कैसे किया, बड़े विस्तार से समझाया; वहाँ पर अन्य कौन से प्रोजेक्ट चल रहे हैं, यह भी बताया। सुश्री मौसमीजी ने बँगला का हिंदी अनुवाद कर तथ्यों को समझने में हमारी मदद की। व्यस्तता ऐसी रही कि दुपहर के भोजन का होश ही नहीं रहा और सायं के चार बज गए। आखिर अपने डेरे पर लौटे, एक-एक समोसे का नाश्ता किया। दिनभर खाली पेट रहने से गैस बनने लगी, सो रात को खाने की इच्छा जाती रही। इधर सोनागाछी में हर सड़क, हर गली में कई-कई ढाबे हैं, सब के पास मैदा की रोटी मिलती है, पर इस बार हमें निकट ही शाकाहारी गणेश ढाबा मिल गया, जहाँ आटे की रोटी, चने की दाल तथा अन्य व्यंजन मिलते हैं। रोटियाँ कोयले की आँच पर सेंकी जाती हैं। आनंदजी के प्रबल आग्रह पर इच्छा न रहते हुए भी मुझे एक चपाती खानी पड़ी, अन्यथा तो आनंदजी भूखे रहते। रात को आनंदजी बिना दवाई लिए सो नहीं पाते हैं। प्रात: जागकर समय से तैयार हो गए, आज शेष बचा काम भी निपटाना था। सो समय से दुर्बार के दफ्तर पहुँचे; विशाखाजी ने चाय पिलवाई और फिर आनंदजी की विशाखाजी और पुतुल सिंह से लंबी वार्त्ता हुई; दोनों ओर से शिकबे-शिकायत दूर कीं। विशाखाजी ने शेष बची जानकारी भी उपलब्ध कराने का वादा किया। दोपहर में सुस्वादु लंच भी करवाया। फिर वे बोलीं, शर्माजी, घूमने नहीं जा रहे हैं? अंतत: ड्राइवर कन्हाई को आदेश हुआ हमें घुमा लाने का।

आखिर अपराह्न तीन बजे हम लोग दुर्बार की गाड़ी में कन्हाई के साथ पहले दक्षिणेश्वर पहुँचे। यहाँ काली माता का भव्य मंदिर है, यह वही मंदिर, जहाँ स्वामी रामकृष्ण परमहंस काली माता की सेवा-आराधना किया करते थे और जहाँ पर जिज्ञासु नरेंद्र को परमहंस के रूप में एक सच्चा गुरु मिला था। दुनिया के इतिहास में अब तक गुरु ही ठोक-बजाकर, पात्रता-योग्यता देखकर अपना शिष्य बनाया करते थे, परंतु यह पहला मौका था, जब एक शिष्य नरेंद्र ने खूब जाँच-परखकर, कसौटी पर कसकर स्वामी रामकृष्ण को अपने गुरु के रूप में चयन किया। जहाँ पर स्वामी विवेकानंदजी की निजी चीजें एवं उनकी पूरी जानकारी बड़े व्यवस्थित ढंग से सहेजकर रखी गई है। यह बड़ा ही भव्य और जानकारियों से भरा म्यूजियम है। टिकट भी मात्र पाँच रुपए की है। बेलूड़ मठ में साफ-सफाई तथा प्राकृतिक सुंदरता मन मोह लेती है। रामकृष्ण मिशन के यहाँ पर बहुत सारे संस्थान हैं।

यहाँ से अब हम कालीबाड़ी के दर्शनार्थ कलकत्ता वापस लौटे। रास्ते में पड़ने वाले स्थानों के बारे में कन्हाई हमें बताता चल रहा है। कालीबाड़ी मंदिर भारत के ५१ शक्तिपीठों में गिना जाता है; परंतु यहाँ के पंडा और पुजारी अपनी ठगी और मक्कारी के लिए विश्व-विश्रुत हैं। यहाँ पर दर्शन के लिए मैं गया जरूर था, पर मन में बार-बार यही विचार उठ रहे थे कि काली माँ के अपने ही दरबार में उसके ये तथाकथित पंडा (सेवक) इतना अनाचार करते हैं, तीर्थयात्रियों को खुलेआम लूटते हैं, तब माँ इनको कोई सबक क्यों नहीं सिखाती, इनको क्यों दंडित नहीं करती? माँ के दरबार में मात्र दर्शनों के लिए पग-पग पर घूस चलती है; दुष्टों का संहार करने वाली माँ अपने यहाँ फैले अनाचार, भ्रष्टाचार और लूट पर

क्यों मौन रहती है ? भोले आस्थावान तीर्थयात्री लंबी-लंबी कतारों में लगे रहते हैं, पर पंडा रिश्वत लेकर पिछले द्वार से दर्शन कराते रहते हैं। यह सब देखकर मन दु:खी हो गया, दर्शनों की इच्छा जाती रही।

कन्हाई हमें अपने जिस परिचित पंडा के पास लेकर गया, उसने भी रास्ते में हमसे रुपए झटके, तब दर्शन कराए। मन खिन्न हो गया। माँ के दर्शनों की कोई इच्छा न रही, बस बेमन से दर्शन भर कर मंदिर से बाहर निकले। तुरंत गाड़ी में बैठ डेरे पर लौटे। कलकत्ता का मौसम थोड़ा अलग है, यहाँ गरमी तो है, पर उमस वाली गरमी है। सायं चार बजे मौसम एकदम सुहाना हो जाता है; बादल छा जाते हैं, तेज-तेज ठंडी हवा चलने लगती है और प्रात: तक ऐसा ही मौसम बना रहता है। लोग यहाँ फ्रीज का या ज्यादा ठंडा पानी नहीं पीते हैं। पानी प्राकृतिक रूप से पर्याप्त ठंडा होता है।

आज हमें गंगासागर जाना है, सो बिना स्नान किए ही प्रात: साढ़े पाँच बजे लोकल ट्रेन पकड़ने के लिए सियालदह स्टेशन के लिए निकल गए। यहाँ से पहले हमें ननखाना तक जाना है। टिकट हमने स्टेशन के बाहर ही ले लिए, सो पर्याप्त समय रहते सियालदह स्टेशन पहुँच गए। यहाँ भी लोकल ट्रेनों के ट्रेक अलग हैं, एक्सप्रेस के अलग। प्रात: सात बजे की ट्रेन हमें मिल गई। जैसे-जैसे ट्रेन आगे बढ़ी, यात्रियों की भीड़ बढ़ती गई। यहाँ के दैनिक यात्री बड़े सभ्य हैं, अगर कोई रूमाल भी सीट पर रख छोड़े तो कोई उस स्थान पर बैठता नहीं है। आनंदजी की महिला मित्र सपना भी हमारे साथ जा रही है, वह बारुईपुर स्टेशन पर हमें ट्रेन में मिल गई। उसकी सलाह पर हम 'ननखाना' की बजाय 'काकदीप' स्टेशन पर उतर गए। यहाँ से गंगाघाट जाने के लिए इ-रिक्शा लिया। यहाँ स्थानीय लोग इसे 'टोटो' कहते हैं।

बंगाल के २४ परगना जिले का यह इलाका बेहद गरीब है, यहाँ के लोग मेहनती हैं, पर रोजगार के साधन नहीं हैं। यहाँ पर सवारी ढोने वाले रिक्शों की भरमार है। रिक्शा भी अलग तरह का। सीट की जगह बड़ा सा तख्ता लगा है, जिसके ऊपर सवारियाँ पैर लटकाकर बैठती हैं, वह भी चारों तरफ। मोटरसाइकिल के इंजन को जोड़कर जुगाड़ भी देखे जा सकते हैं, इनसे बोझ टेंपू की तरह ढोया जा रहा है। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी है; कम-से-कम खर्च में लोगों ने आय के साधन बना लिए हैं। वैसे तो अन्य शहरों की तरह इ-रिक्शा भी अब यहाँ तक पहुँच गया है।

चूँकि गंगा हिमालयी पहाड़ों से निकल, मैदानों से बहती हुई यहाँ विभिन्न धाराओं में बटँकर बंगाल की खाड़ी में विलीन हो जाती है। इन धाराओं से यहाँ बड़े-बड़े दीप जैसे बन गए हैं। एक से दूसरे दीप पर जाने के लिए गंगा की इन धाराओं को स्टीमर से पार करना पड़ता है, इस तरह का गंगासागर दीप ही ३२ कि.मी. लंबा है। घाट से पहले यहाँ एक छोटा-सा बाजार है, रिक्शेवाले ने हमें यहीं उतार दिया। धूप तेज हो गई है, पसीना चू रहा है। इन स्टीमरों का परिचालन पश्चिम बंगाल परिवहन निगम करता है। निगम के टिकट काउंटर से सपनाजी टिकट ले आईं। वे बांग्ला में बातचीत कर यहाँ के लोगों से अच्छी डील कर लेती हैं, इससे हमें बड़ी सुविधा हो गई है। टिकट ले हम घाट पर जाने वाले यात्रियों की पंक्ति में खड़े हो गए। यहाँ के छोटे से बाजार में बंगाली जामुन के नाम से बिक रहा सिघाड़े जैसा अनोखा फल खरीदकर खाया, इसका स्वाद अच्छा है।

हमारे आगे पंक्ति में लगी हरियाणवी महिलाओं की आवाज ने मुझे चौंका दिया, उनकी भाषा, बोली, पहनावा और उन्मुक्त ठहाके उन्हें अलग पहचान दिला रहे हैं। इस ग्रुप में बहुत सारे महिला-पुरुष गंगासागर दर्शन करने जा रहे हैं। परदेश में अपने जिले का भी कोई मिल जाए तो वह सहोदर समान होता है। आखिर यात्री-पंक्ति आगे बढ़ी। अब स्टीमर घाट पर लग चुका है, यात्री दौड़-दौड़कर इसमें समाते जा रहे हैं। कुछ स्थानीय लोग अपनी मोटरसाइकिल के साथ इसमें सवार हैं। कुछ ही देर में स्टीमर यात्रियों से लबालब हो गया तो अपने गंतव्य की ओर खिसका और मंथर गति से गंगाजल पर थिरकने लगा। स्टीमर में एक लघु भारत समाया हुआ है; इसमें अपने सामान की बिक्री करते हॉकर भी हैं, वे आवाज लगा-लगाकर चिड़िया दाना तथा खाने की अन्य वस्तुएँ बेच रहे हैं।

स्टीमर आगे बढ़ रहा है, ऑस्ट्रेलिया के प्रवासी पक्षी इसके साथ-साथ उड़ रहे हैं। यात्री इनको कुछ-न-कुछ खिला रहे हैं। जैसे ही यात्री खाने की चीजें इनकी ओर उछालते है, कें-कें के कलरव के साथ इनमें छीना-झपटी मच जाती है। कई पक्षी तो दानों को हवा में ही अपनी चोंच में लपक लेते हैं। जब ये उड़ते-उड़ते थक जाते हैं तो जल की लहरों पर ही विश्राम करने लगते हैं, तब इनका पेट नीचे से सपाट हो जाता है। थोड़ा दम लेकर खाने की चाह में फिर से स्टीमर के साथ-साथ उड़ने लगते हैं। यात्रियों के लिए यह बड़ा कौतुक भरा खेल है। ज्यादातर यात्री इनके वीडियो बनाने में मगन हैं, बच्चे इन्हें दाना खिला-खिलाकर प्रसन्न हो रहे हैं। हम यात्री इन कौतुकों को देखने में निमग्न थे, आधा घंटा बीता, फिर कुछ और समय बीता, लगा कि स्टीमर अब थिरक नहीं रहा है। कुछ क्षणों में ही पता चल गया कि लगभग एक कि.मी. चलकर स्टीमर गंगारेणु में फँस गया है। स्टीमर के चालक ने आगे से कुछ यात्रियों को पीछे भेजा, लेकिन स्टीमर टस से मस नहीं हुआ। यात्रियों के चेहरों पर हवाइयाँ उड़ने लगीं, अब क्या होगा ? क्या हमें जल के बीच ही रहना पड़ेगा, पर कब तक ? जो दैनिक यात्री थे, वे समझाने लगे कि अकसर ऐसा हो जाता है। अब यह गंगा में ज्वार आने पर ही यहाँ से निकल सकेगा। यात्री एक-दूसरे का चेहरा देख रहे हैं, आँखें पूछ रही हैं, अब क्या होगा, बुरे फँसे!

घबराहट तो मुझे भी होने लगी, हमें वापस लौट कलकत्ता के लिए ट्रेन पकड़नी थी। आखिर इसकी सूचना कोस्ट गार्ड को दी गई; तुरंत यात्रियों का रेस्क्यू ऑपरेशन शुरू हुआ। इंजन वाली दो नौकाएँ स्टीमर की ओर बढ़ीं। हम लोग सचेत थे, सो पहली ही खेप में जहाँ से चले थे, वहीं लौट आए—नौ दिन चले अढाई कोस! दस रुपया प्रति यात्री इनको उतराई भी देनी पड़ी। दोनों नावें दौड़-दौड़कर यात्रियों को घाट पर वापस ला रही हैं। इधर उस पार से एक स्टीमार वापस लौट घाट पर लगा, यात्री उतरे, हम लोग तुरंत उसमें सवार हुए, पर्याप्त यात्री हो जाने पर स्टीमर ने घाट छोड़ दिया। उधर दोनों नौकाओं का रेस्क्यू ऑपरेशन अभी चल रहा है। इस धारा को पार करने में स्टीमर को पौन घंटा लग ही जाता है और उतरने-चढ़ने, सब मिलाकर एक घंटा समय लगता है।

स्टीमर इस पार आ लगा। यह स्थान कोचूबेरिया कहलाता है और जिला है २४ परगना। घाट के पास सड़क किनारे के झोंपड़ीनुमा एक ढाबे

में खाना खाया। पचास रुपए में भरपेट चावल-दाल-सब्जी। यहाँ के ढाबों की खासियत है कि यहाँ चावल गरमागरम परोसा जाता है। महिलाएँ बड़े प्रेम से पूछ-पूछकर खाना खिलाती हैं। खाने के कारण थोड़ा विलंब हुआ, देखा—तीर्थयात्रियों की सारी भीड़ गंगासागर के लिए जा चुकी है। अब हम तीन लोग थे। टैक्सी वाले हमें लुभाने, बरगलाने लगे, संभवत: हम उनके झाँसे में आ भी जाते, पर बांग्ला भाषी सपना के आगे उनकी एक न चली। दस मिनट में ही दूसरी बस गंगासागर जाने के लिए स्टैंड पर लगी। हम इसमें अपनी सुविधा से बैठ गए। गंगासागर यहाँ से ३२ कि.मी. दूर है। कुछ ही देर में बस गंगासागर की ओर दौड़ने लगी।

जब तक बस अपने गंतव्य की ओर दौड़ रही है, तब तक मैं आपको यह बताए देता हूँ कि 'सारे तीरथ बार-बार, गंगासागर एक बार' यह कहावत कैसे और क्यों बनी? दरअसल प्राचीनकाल में आज जैसे आवागमन के न तो साधन थे और न सुविधाएँ। उन दिनों इस दीप पर घना जंगल होता था, जंगल में हिंसक पशुओं का डर तो था ही, डाकुओं तथा लुटेरों का भी बड़ा जोर था; उन दिनों छोटी-छोटी नावें ही हुआ करती थीं, जो गंगा की धाराएँ पार करते हुए डूब जाती या तूफान की चपेट में आकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाती थीं, तो इस तरह गंगातीर्थ तक पहुँचना बहुत दुरूह था। बहुत कम यात्री ही यहाँ आने की हिम्मत कर पाते या कठिनाइयों को पार कर यहाँ पहुँच पाते थे। उन दिनों यहाँ ठहरने की भी कोई व्यवस्था नहीं थी, अपना भोजन-पानी सब साथ लेकर चलना पड़ता था। तो इन सब कठिनाइयों को देखते हुए ही यह कहावत बनी, पर अब ऐसा नहीं है। यात्री कितनी बार भी कभी भी यहाँ दर्शन-स्नान करने आ सकते हैं।

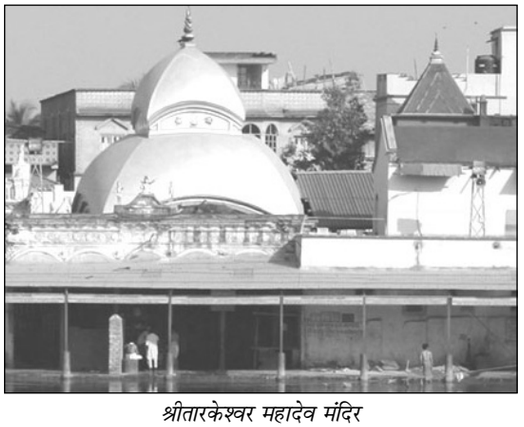

श्रीतारकेश्वर महादेव मंदिर

हमारी बस गंगासागर की ओर दौड़ रही है। रास्ते में सड़क किनारे छोटे-छोटे गाँव, गाँव के पास ही पानी का पोखर, पोखर के किनारे नारियल और केले के वृक्ष, कहीं-कहीं बाँस भी। यह इलाका ज्यादा संपन्न नहीं है। समुद्री तूफान तथा गंगा की बाढ़ झेलना इसकी नियति है। बस का ड्राइवर एक कुशल चालक है। इसी रास्ते पर रुद्रपुर टाऊन पड़ता है, यहीं कहीं बीच में सपना के एक मित्र डॉक्टर साहब हमारे साथ बस में सवार हो गए। स्थानीय सवारियों के कारण बस खचाखच भर गई। इस दूर-दराज इलाके में छोटे से चौराहे पर भी ट्रैफिक पुलिस का सिपाही अपने काम पर मुस्तैद दिखा। यहाँ के लोग आदतन ट्रैफिक के नियमों का पालन करते हैं। करीब पौना घंटा में बस ने हमें गंगासागर पर उतार दिया। बस स्टैंड गंगासागर से थोड़ा दूर है। यहाँ गंगासागर के रास्ते पर प्रवेश द्वार बना है। सड़क के दोनों ओर आश्रम हैं, टोटो (इ-रिक्शा) वाले वहाँ तक जाने के औने-पौने दाम माँगते हैं।

हमारे साथ दो ठेठ बंगाली हैं, सौदा नहीं पटा तो पैदल ही सागर की ओर बढ़ चले। यहाँ पर स्वर्गाश्रम सबसे बड़ा है, और भी बहुत से आश्रम हैं। यहाँ से अब समुद्र दिखाई देने लगा। कुछ ही देर में हम सागर तट पर पहुँच गए। चारों ओर समुद्री वीराना, बालुकामय तट, इसके आगे अथाह सागर लहरा रहा है, यहीं पर पवित्र गंगा सागर में विलीन होती हैं। पुराणों में वर्णन आता है कि सागर तीरे यहीं पर कपिल मुनि का आश्रम था। इक्ष्वाकु वंश के राजा सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया, देवराज इंद्र ने दिग्विजयी अश्व चुराकर कपिल मुनि के आश्रम में ले जाकर बाँध दिया। राजा सगर के साठ हजार पुत्र घोड़े की खोज में निकले। कपिल मुनि तपस्यारत थे, वे इन बातों से अनजान थे। क्रोधावेश में सगरपुत्रों ने कपिल मुनि को चोर समझकर उनका अपमान किया। सगरपुत्रों की उद्दंडता पर कुपित होकर कपिल मुनि ने उन सब को अपनी क्रोधाग्नि में भस्म कर दिया।

पर कपिल मुनि ने इन साठ हजार सगरपुत्रों के उद्धार का रास्ता भी बताया कि अगर गंगा को पृथ्वी पर लाया जाए तो गंगाजल के स्पर्शमात्र से सगरपुत्रों का उद्धार हो सकता है। समय अपनी गाति से गुजरता रहा, पर सगरपुत्रों का उद्धार न हो सका। कालांतर में इसी वंश में भगीरथ नाम के राजा हुए, उन्होंने अपने पितरों के उद्धार के लिए कठोर तप कर माँ गंगा को पृथ्वी आने के लिए राजी कर लिया। भगवान् शिव ने गंगा के प्रबल वेग को अपनी जटाओं में उलझाया और एक लट से गंगा की निर्मल धारा पृथ्वी पर बह चली। आगे-आगे भगीरथ, पीछे-पीछे गंगा! राजा भगीरथ माँ गंगा को यहाँ कपिल मुनि के आश्रम तक लाए, जहाँ साठ हजार सगरपत्रों की भस्मी अपने उद्धार की बाट जोह रही थी, इस तरह गंगाजल के स्पर्श से सगरपुत्रों को मोक्ष प्राप्त हुआ। इसीलिए आज भी अपने परिजनों के दिवंगत होने पर उनकी अस्थियाँ और राख गंगा में विसर्जित करते हैं। चूँकि माँ गंगा को भगीरथ पृथ्वी पर लाए, इससे उनका एक नाम 'भागीरथी' प्रसिद्ध हो गया।

इस तीर्थ की महत्ता के पीछे ये दोनों कारण हैं। गंगासागर आने वाले तीर्थयात्री भी इसी कामना से यहाँ आते हैं कि उनके पापों का प्रक्षालन होकर उन्हें मोक्ष की प्राप्ति होगी। अब हम गंगासागर तट पर हैं, यहीं से पहले गंगा और सागर को प्रणाम किया। यहीं स्थित खोखेनुमा चाय की दुकान पर चाय पी; फिर सागर-रेणु में उतरे नंगे पाँव! कल बांग्ला का नववर्ष है। इस अवसर यहाँ के श्रद्धालु जन भगवान् शिव की विशेष पूजा-अर्चना और जलाभिषेक करते हैं, सो गंगासागर से काबड़ में जल ले जाकर भगवान् शिव का अभिषेक करते हैं। यहाँ बड़ी संख्या में काबड़िए आए हुए हैं, इनमें पुरुषों की अपेक्षा महिलाएँ अधिक हैं। महिलाओं के झुंड के झुंड बंगाली पारंपरिक पोशाक में काबड़ में जल लेने आए हैं, कितना उत्साह, उछाह है इनमें! बहुत सारे काबड़ियों ने अपने जलकलश गंगासागर की गीली बालू में टिका दिए हैं, पुष्प-धूप-दीप से इन का पूजन कर रहे हैं। भारत विविधताओं का देश है, यहाँ के रस्म, रीति-रिवाज कुछ अलग हैं।

सपना के डॉक्टर मित्र ने स्नान नहीं किया, सो वे हमारे कपड़ों के पास बैठे रखवाली करते रहे। हम तीनों ने गंगासागर में खूब स्नान किया। सागर की लहरों की मार खाना बड़ा अच्छा लगता है, यहाँ पर सागर उथला है, सो जल भी गँदला है, नीलिया जल नहीं है, आखिर खूब स्नान किया, मैंने फोटो भी उतारे, अंतत: तट पर वापस लौटे। एक अलग तरह का अहसास मेरे मन में ढाढ़ें मार रहा है, मन बेहद प्रफुल्लित है कि मैं सबसे दुर्लभ तीर्थ गंगासागर का तीर्थ सेवन कर पुण्य का भागी बना हूँ। मन भारी रोमांच है। कपड़े बदले। ठीक सामने कपिल मुनि का मंदिर है। कहा जाता है कि पहले यह बिल्कुल सागर किनारे था, जो समुद्र की लहरों से ढह गया। नया मंदिर समुद्र तट से थोड़ा हटकर बनाया गया है। ठीक सामने कपिल मुनि की तपस्यारत प्रतिमा विराजमान है। माँ गंगा और भगीरथ की भी प्रतिमाएँ हैं। इनके दाएँ-बाएँ अन्य देवों की मूर्तियाँ हैं। इसके परिसर में तपस्यारत भगीरथ, गंगावतरण आदि की सुंदर झाँकियाँ हैं। साथ ही कपिल मुनि सरोवर भी है, एक साधु बाबा इसमें स्नान कर रहे हैं, बड़ा ही सुंदर परिसर है। मकर संक्रांति पर गंगासागर में स्नान करने का विशेष महत्त्व है, इस अवसर पर यहाँ लाखों की संख्या में तीर्थयात्री आते हैं। इत्मीनान से पूरे परिसर का अवलोकन किया, फिर वापस लौट पड़े।

टोटो (इ-रिक्शा) से बस अड्डा तक आए; कोचूबेरिया के लिए बस तुरंत मिल गई तो गंगाघाट पर स्टीमर भी तैयार मिला। वहीं पर पता किया कि कलकत्ता के लिए पौने सात बजे की लोकल ट्रेन है। गंगा के इस पार उतरकर आनन-फानन में एक रिक्शा किया सौ रुपए में। सपना के मित्र डॉक्टरजी तो गंगासागर में ही अपने स्टैंड पर उतर गए थे। रिक्शा वाला शॉर्टकट रास्ते से रिक्शा लेकर दौड़ा और हमें ट्रेन आने से पूर्व ही स्टेशन पर उतार दिया। यह काकदीप से अगला 'काशीनगर' स्टेशन है। टिकट ले गाड़ी में चढ़े। सपना भी बारुईपुर स्टेशन पर उतर अपने घर चली गई। इस तरह करीब नौ बजे हम भी सोनागाछी स्थित अपने डेरे पर आ गए। रात को आराम से सोए। प्रात: में पता चला कि पूरे बंगाल में नववर्ष के उपलक्ष्य में अवकाश है।

परसों बैसाखी पर्व पर हमने गंगासागर में डुबकी लगाई थी; कल डॉ. जैना के परिवार के साथ रहे। आज प्रात: जागकर हम तारकेश्वर महादेव मंदिर दर्शनार्थ जाने की तैयारियाँ करने लगे। आज बँगला का नववर्ष है। हावड़ा जं. से तारकेश्वर ७५ कि.मी. दूर है। बड़े इत्मीनान से नहा-धो, नाश्ता कर, हावड़ा से लोकल ट्रेन पकड़ने के लिए २१५ नं. की बस में सवार हुए। रास्ते में मैं देख रहा हूँ कि बंगाली घरों के मुख्य दरवाजों पर दोनों ओर कलश, कलश में आम-केला के पत्रों के बीच स्वस्तिक बना हरा नारियल रखा है; जगह-जगह पूजा के पांडाल सजे हैं; मंदिरों में भोले बाबा के दर्शनों एवं जलाभिषेक के लिए कतारें लगी हैं। सब स्त्री-पुरुष पारंपरिक वेषभूषा में सजे-धजे! सबकुछ अद्‌भुत! हावड़ा जं. जाकर पता चला, लोकल ट्रेन एक बजकर पाँच मिनट पर है, तब तक घूम-फिरकर पूरा हावड़ा स्टेशन देखा। यहाँ ट्रेनों के आवागमन की बड़ी शानदार व्यवस्था है।

नियत समय पर ट्रेन में बैठे, यहाँ लोकल भी बड़ी समयबद्ध है, ज्यादातर यात्री लोकल में ही सफर करना पसंद करते हैं। यहाँ के यात्री भी इतने सभ्य हैं कि रास्ते या दरवाजों के पास खड़े नहीं होते हैं; दूसरे यात्रियों को परेशानी खड़ी नहीं करते हैं। ट्रेन में हॉकरों की भरमार रहती है, पर किसी को कोई दिक्कत नहीं होती, सब अपना-अपना सामान बेचने में मशगूल, सारे के सारे लोकल उत्पाद, कोई ब्रांड नहीं। सैकड़ों-हजारों परिवारों का जीवन-यापन इन लोकल से हो रहा है। करीब डेढ़ घंटे में हम भी तारकेश्वर स्टेशन पर उतर गए। स्टेशन से तारकेश्वर मंदिर ज्यादा दूर नहीं है। तारकेश्वर हुगली जिला का एक नगरपालिका क्षेत्र है। ऐसा माना जाता है कि इस मंदिर का निर्माण १७२९ ई. में राजा भारमल राव ने कराया था। मंदिर में भगवान् शिव का स्वयंभू लिंग स्थापित है। यह मंदिर बंगाल की 'अचला' शैली में बनाया गया है, जिसके ठीक सामने एक नट मंदिर है, गर्भगृह के ऊपर चार छतें हैं। लंबी-लंबी दीर्घाएँ हैं। मंदिर के उत्तर दिशा में दूधपुकुर तालाब है, जो बड़ा ही भव्य और विशाल है।

मंदिर के बारे में एक कथा प्रचलित है कि एक दिन राजा भारमल को भगवान् शिव ने स्वप्न में आदेश दिया कि इस स्थान पर एक पत्थर है, उस स्थान पर मेरा मंदिर बनवाओ, तत्पश्चात् राजा ने इसी पत्थर के स्थान पर यह मंदिर बनवाया। बंगाली समाज में इसकी बड़ी मान्यता है। सावन महीने में बाबा तारकेश्वर का जलाभिषेक किया जाता है। पुराण में ऐसा भी उल्लेख मिलता है कि तारक नाम के एक राक्षस ने एक विशाल तालाब खोद डाला, जो भगवान् शिव द्वारा मारा गया, इसलिए उनका एक नाम 'तारकेश्वर महादेव' प्रसिद्ध हो गया। हम भी टहलते हुए मंदिर की ओर निकले, देखा—पूरा बाजार बंद है। पता चला, यहाँ पर दुपहर में सब दुकानदार अपनी दुकानें बंद रखते हैं, चाय की दुकान तक खुली हुई नहीं है। आखिर मंदिर में पहुँच गए हैं, भीड़ ज्यादा नहीं है; चप्पल-जूते मंदिर से बाहर रख छोड़े। मंदिर में अंदर जाना तो नहीं हो रहा है, पंक्ति में लगे तीर्थयात्री दुकान से पेड़े का प्रसाद लेकर भगवान् भोलेनाथ को चढ़ा देते हैं। रेलिंग के बाहर से ही दर्शन करने होते हैं। मैंने देखा, प्राचीन शिवलिंग मंदिर के फर्श से काफी नीचे पड़ गया है।

मंदिर में बड़ी संख्या में शिवभक्त आते हैं, अभी भी बंगाली युवकों की टोलियाँ पारंपरिक पोशाक पहने काबड़ में जल लेकर भगवान् तारकेश्वर का जलाभिषेक करने आई हुई हैं। शीघ्र ही दर्शन कर हम वापस लौटे। यहाँ के विशाल बाजार को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि यहाँ तीर्थयात्री बड़ी संख्या में आते हैं। चार बजने वाले हैं, बाजार के ही एक होटल में खाना खाने बैठे। साठ रुपए की थाली, गरमागरम चावल के साथ दाल, मिली-जुली दो-तीन सब्जियाँ। खा-पीकर स्टेशन की ओर लौटे। लोकल ट्रेन यहीं से बनकर चलती है। टिकट ले गाड़ी में सवार हुए। गाड़ी में ज्यादातर यात्री तीर्थयात्री या काबड़िए हैं, वे लाल-लाल पारंपरिक पोशाक में अलग ही दिखाई पड़ रहे हैं। प्लेटफॉर्म पर अच्छी-खासी रौनक है।

ट्रेन में हमारे बराबर में एक बंगाली संयुक्त परिवार बैठा है, वे सब भी तारकेश्वर महादेव के दर्शन करके लौट रहे हैं, इनमें युवा-बाल-वृद्ध—तीन पीढ़ी के लोग हैं। ट्रेन में ही सब ने केक काटकर घर के मुखिया का

जन्मदिन मनाया, खूब आनंद मनाया, खूब हँसी-मजाक और गुल्लू गफाड़ा करते रहे, ठेठ बँगला में, जो हमारे ज्यादा पल्ले नहीं पड़ रहा, पर आनंद जरूर आ रहा है। इस तरह यात्रा पूरी कर हम लोग हावड़ा जं. पर उतर गए। वापसी की बस पकड़ते हुए हमारे साथ एक मजेदार वाकया पेश आया। प्रात: हमने लाड़ले के बताए अनुसार हावड़ा जं. के लिए २१५ नं. बस पकड़ी थी, तो बिना पूछे-गछे हावड़ा से हम लोग बड़ी खोज करते हुए २१५ नं. बस में सवार हो गए। कंडक्टर के आते ही बस रेंगने लगी, अब तक बस हावड़ा ब्रज पर आ चुकी थी। कंडक्टर ने टिकट के लिए कहा तो हमने गंतव्य के दो टिकट माँगे। वह क्रोध मिश्रित बांग्ला-हिंदी में बोला, दादा, यह वहाँ नहीं जाती, इधर सिंगल रूट है, जिधर से आता है, उधर से जाता नहीं, तुम किधर जाता? सो हावड़ा पुल पार करते ही हमें उतार दिया।

हम लोग कदमताल करते हुए पैदल ही सोनागाछी के लिए चल पड़े। रात को मजे से सोए। आज शनिवार को सरकारी कार्यालय तो बंद हैं, पर दुर्बार (DMSC) का कार्यालय खुला। हमने कार्यक्रम बनाया कि कलकत्ता के कुछ दर्शनीय स्थलों का अवलोकन कर लिया जाए। सो विवेकानंद की जन्म स्थली देखने के निकले। लाड़ले को भी साथ ले लिया। वह हमें गलियों में घुमाते हुए छोटे रास्ते से वहाँ तक ले गया। मैं देख रहा हूँ, गलियों में भी जगह-जगह कूड़ेदान रखे हुए हैं, गलियाँ एकदम साफ-सुथरी। अब सामने है जोड़ासांकी का वह मकान, जिसमें युगपुरुष और भारत के भाल विवेकानंद, नहीं नरेंद्र का जन्म हुआ और बचपन बीता। इसी मकान में १२ जनवरी, १८६३ को माता भुवनेश्वरी देवी के गर्भ से नरेंद्र के रूप में भारत के उद्धारक का अवतरण हुआ।

विवेकानंद का जन्मस्थान, जोड़ासांकी, कोलकाता

यही वह पवित्र स्थल है, जहाँ से गुरु की खोज में नरेंद्र अपने मित्रों के साथ दक्षिणेश्वर गया, स्वामी रामकृष्णजी से मिला और फिर मिला एक योग्य गुरु को एक योग्य शिष्य। बाकी तो सब इतिहास है। पुराने मकान के स्थापत्य और वास्तु को बिल्कुल न बिगाड़ते हुए २००४ में रामकृष्ण मिशन ने इसे वर्तमान का भव्य रूप दिया। यहाँ इसे 'विवेकानंद म्यूजियम' कहते हैं, इसमें यात्री शुल्क पाँच रुपया है। यहाँ स्वामी विवेकानंद के जीवन पर एक ३-डी फिल्म दिखाई जाती है, इसका शुल्क भी मात्र दस रुपया है। दो टिकट लेकर ऊपर-नीचे पूरी बाड़ी का अवलोकन किया, साथ ही स्वामीजी का सान्निध्य भी महसूस किया, उनके तेजोवलय यहाँ आज भी महसूस किए जाते हैं। म्यूजियम में स्वामी विवेकानंद के उपयोग में आने वाली हर चीज बड़े करीने से सजाकर रखी गई है; नरेंद्र द्वारा उपयोग किए गए मेज-कुरसी, कलम, दवात तथा अन्य सब चीजें! साफ-सफाई का तो कहना ही क्या!

म्यूजियम का अवलोकन कर लेने के बाद नीचे के एक हॉलनुमा कमरे में ३-डी फिल्म देखी। इसमें विवेकानंद का बचपन, उनके जन्म स्थान का पुनर्निर्माण कैसे हुआ, स्वामीजी ने शिकागो की धर्मसंसद् में भारत का ध्वज फहराकर भारत को विश्वगुरु के आसन पर कैसे बिठाया, यह सब शानदार ढंग से इस फिल्म में दिखाया गया। सीना गर्व से फूल गया। इस इमारत के दाईं ओर स्वामीजी की आदमकद प्रतिमा बड़ी सजीव लगती है। यहाँ आने वाले तीर्थयात्री उसके साथ फोटो खींच अपने आपको धन्य मानते हैं। अपने समय में स्वामीजी को भी समाज का भारी विरोध और आलोचना का सामना करना पड़ा था; लेकिन वे तो युगपुरुष थे। वहाँ से लौटकर हम लोग पुन: दुर्बार कार्यालय आए; कार्यालय के सभी कर्मचारियों का उनके सहयोग के लिए धन्यवाद किया। डेरे पर आकर अपना सामान बाँधा। होटल से लाकर दो-दो रोटी दाल के साथ खाईं। करीब सवा आठ बजे हमने अपना डेरा छोड़ दिया। सड़क पर बस का इंतजार कर रहे थे, एक टैक्सी वाला उधर आ निकला। सौ रुपए में उसने हमें हावड़ा जं. पर उतार दिया।

कालिका सुभाष चंद्र बोस एक्सप्रेस अपने नियत समय पर प्लेटफॉर्म पर लगी। इस बार हमारी बर्थ साइड की हैं। नियत समय पर गाड़ी अपने गंतव्य की ओर सरकने लगी। मैंने सोचा, अब कलकत्ता आना हो न हो। रात हो ही गई थी, सो आराम से सो गए। रातभर में गाड़ी ने बंगाल, झारखंड और बिहार का काफी हिस्सा रौंद डाला। करीब दस बजे प्रात: हम पं. दीनदयाल उपाध्याय जं. पर आ लगे। गरमी अपने पूरे शबाब पर है। मैं बार-बार अपना गमछा भिगोकर ओढ़ लेता हूँ, कुछ देर ठंडक जरूर महसूस होती है, पर शीघ्र ही लू के चाँटे पड़ने लगते हैं। दिन में रेल की रसोई का भोजन लिया। भारत सरकार से मेरा अनुरोध है कि यदि रेलवे की भोजन की व्यवस्था ठेकेदारों के हाथों में सौंप दी है, तो यह भी सुनिश्चित करे कि महँगी ही सही, यात्रियों को स्वास्थ्यवर्धक खाना तो मिले। ठेकेदारों को यात्रियों को लूटने की छूट दे दी गई है। रेल में खाने का महँगा खर्च बहुत अखरता है। जितना दाम यात्री को चुकाना पड़ता है, उसके हिसाब से खाना अपर्याप्त, घटिया, बेस्वाद और बासी होता है। रेलवे को इसका मानक तथा परिमाण तय करना चाहिए, जिससे रेलयात्री लुटा हुआ महसूस न करें।

भीषण गरमी की मार सहते किसी तरह दिल्ली रेलवे स्टेशन उत्तर करीब दस बजे घर आ लगे। गरमी के दिनों में ज्यादा लंबी रेलयात्रा कष्टदायक हो जाती है। कुछ भी हो, कलकत्ता कई मायनों में मुझे भा गया। कलकत्ता दिल्ली जैसा अराजक शहर नहीं है। कलकत्ता की अपनी एक प्यारी सी कल्चर है, अच्छाइयाँ भी, खूबी भी। अपने काम और घूमने-फिरने के हिसाब से हमारी यह बंग-यात्रा सुखद और सार्थक रही। 'ठांडा जॉल खावो' की पुकार अभी भी मेरे कानों में गूँजती है।

साअ

जी-३२६, अध्यापक नगर,
नांगलोई, दिल्ली-११००४१
दूरभाष : ९८६८५२५७४१

सब-वे

मूल : **मोहम्मद खदीरबाबू**

अनुवाद : **वी.एल. नरसिंहम शिवकोटी**

तेलुगू के सुपरिचित लेखक श्री मोहम्मद खदीरबाबू पेशे से पत्रकार-लेखक हैं। नेल्लूर जिले की आँचतिक भाषा में लिखी गई इनकी कहानियों के संकलन 'दर्गामिट्टा कथलू' और 'पोलेरम्म बंड कथलू' समकालीन तेलुगू साहित्य में विशेष महत्त्व रखते हैं। 'न्यू बोबे टाइलर्स', 'विपांड काफी', 'मेट्रो कथलू' इनके प्रमुख कहानी-संग्रह हैं। 'कथलु इला कूडा रास्तारू' इनकी आलोचनात्मक कृति है। इनका महत्त्वपूर्ण व उल्लेखनीय कार्य है—'नूरेल्त तेलुगू कथा', जिसमें पिछले सौ साल के दौरान १०० प्रमुख कहानीकारों की एक-एक प्रतिनिधि कहानी का पुनः कथन। प्रत्येक कहानी के पुनः कथन के उपरांत उस पर छोटी सी, लेकिन प्रभावी टिप्पणी इस कृति की विशेषता है। भारतीय साहित्य में यह एक नवोन्मेषी प्रयोग है। इसके अलावा कई कहानी-संग्रहों का कुशल संपादन। यहाँ इनकी एक चर्चित कहानी का हिंदी रूपांतरण दे रहे हैं।

'चलिए सीनियरजी!'—उसने मुसकराते हुए कहा।

'ठीक है जूनियरजी, आपकी आज्ञा सिर आँखों पर!'—उसने भी मजाकिया लहजे में कहा।

केसरिया और पीले रंग के पैटर्न वाली सुंदर टेबल्स में से तीसरी लाइन की पहली टेबल हमेशा से इनकी फेवरेट रही। दोनों हमेशा वहीं बैठते हैं। बस पंद्रह-बीस मिनट, ज्यादा-से-ज्यादा आधा घंटा। ऑफिस के उबाऊ और रुटीन काम के माहौल में वह आधा घंटा ही 'वेकेशन' के बराबर होता था।

लेकिन आज तो कुछ खास है। उसने मेनू हाथ में लिया।

'बिल मैं दूँगी। जिद मत करना।'

'ठीक है।'

'चटपटा चना और आलू पैटीज। एक टिन कोक आधा-आधा कर लेंगे।'

उसने कहा, 'और···'

उसने भी दोहराया, 'और···'

दोनों ने एक-दूसरे को देखा। लेकिन दोनों चुप। तीन साल से यहीं इसी टेबल पर बैठते आ रहे हैं। दोनों को मालूम था कि ऐसा एक दिन आएगा। इसीलिए दोनों को देखकर यही लग रहा है कि यह तो उनको पहले से मालूम है।

उसने बातों की शुरुआत नसीहतों से की—'कम-से-कम नए ऑफिस में तो ठीक से लंच बॉक्स ले जाओ। डेस्क में हमेशा थोड़े ड्रायफ्रूट्स रखो और थोड़ा-थोड़ा खाते रहो। चाय कम करो। दाढ़ी मत बढ़ाओ। कम-से-कम छह महीने में एक बार पारा मेडिकल चेक-अप कराओ। याद रखो, बार-बार यह सब याद दिलाने के लिए वहाँ मैं तो रहूँगी नहीं।'

वह आँखें नीचे किए सिर हिलाता रहा।

'सबसे पहले यह इ-मेल, व्हाट्सऐप, फेसबुक की बातचीत बंद करो। थोड़े दिन के लिए गर्मजोशी में खूब बतियाए और धीरे-धीरे बंद करने से तो अच्छा है कि तुरंत···एकदम से बंद कर दें। अब हम बच्चे तो रहे नहीं। बोलो···'

उसने फिर सिर हिलाया।

'इधर देखो···इधर···मेरी ओर देखो।'

उसने आँखें मिलाने की विफल कोशिश की।

'भय्या मेरे···रोओ मत। ये अब बंद करो।'

वह जोर-जोर से ठहाका मारते हुए हँसने लगी। आँसू छिपाते हुए हँसने की फिर वही विफल कोशिश।

जब ऑफिस में नई-नई आई तो वह भी इसी तरह रोई थी। काम देखकर हैरान-परेशान होकर रोई थी। शादी से पहले भी नौकरी करती थी वह। लेकिन शादी के बाद सात साल तक नौकरी की बात ही भूल गई। सात साल बाद जब फिर से नौकरी में आई तो हैरान हो गई। जितना भी अनुभव हो, इस सॉफ्टवेयर में हर दिन नई-नई चीजें आ जुड़ती हैं। सबकुछ नया-नया और भूत-सा लगने लगा। हर चीज बदल गई थी। टीम लीडर ने कहा कि कुछ जरूरत हो तो अपने 'सीनियर' से पूछ लें। सीनियर शब्द सुनते ही उसे लगा कि कोई चालीस-पैंतालीस साल का बुजुर्ग होगा। लेकिन देखा तो अपने से भी छोटा और तीस से भी कम उम्र का निकला। उम्र में छोटा ही क्यों न हो, ऑफिस में सीनियर तो सीनियर होता है। काम में आने वाली हर दिक्कत को सुलझाने का उसका तरीका, उसकी सादगी देखकर 'सीनियरजी' कहकर बुलाने लगी। वह भी 'जूनियरजी' कहते हुए जवाब देने लगा। बस एक छोटी सी मुसकराहट।

दोनों शहर के विपरीत दिशाओं से सुबह आठ बजे निकलते हैं। ऑफिस की कैब में डेढ़-दो घंटे का रास्ता तय करना नरक-यात्रा से कम नहीं। ऑफिस पहुँचते ही सीट पर चिपककर फिर वापस कैब में बैठने तक का काम, एक अलग तरह का नरक है। ए.सी. फुल, फिर भी उमस। बैठे-बैठे बातचीत शुरू—

'सीनियरजी, आज आपकी बीवी ने क्या बनाकर दिया बॉक्स में?'

'आज 'नो बॉक्स'। सुबह-सुबह उससे होता नहीं है। अभी बच्चा छोटा है न।'

'कोई बात नहीं। में लेकर आई हूँ। लीजिए।'

'नहीं-नहीं। इट्स ओके।'

'ठीक है। चलो, 'सब-वे' चलते हैं।' वह जिद पकड़ लेती थी।

ऑफिस से एकाध किलोमीटर की दूरी पर ही 'सब-वे' है। ऑफिस के सब लोग जाते हैं। इनको भी आदत-सी पड़ गई है वहाँ जाने की।

सब अपने-अपने दोस्तों के साथ। वही घिसी-पिटी बातें। किसी को यह नहीं मालूम होता था कि दूसरे के दिमाग में क्या चल रहा है। ऑफिस में साथी रहते हैं। लेकिन सबको सारी बातें बताई नहीं जा सकतीं। किसी को देखकर लगता है कि हाँ भाई, यहाँ हम सुरक्षित हैं। दस्तक दे सकते हैं।

'आपके श्रीमानजी कैसे हैं? आपका खयाल तो रखते हैं न?'

'हाँ बिल्कुल। और आपकी श्रीमतीजी?'

'अरे, वो तो साक्षात् लक्ष्मी है, लक्ष्मी।'

□

थोड़े दिन गुजरते न गुजरते इस बातचीत का रुख बदल जाता है—

'हमारे श्रीमानजी को तो गुस्सा इतना आता है हर बात पर कि मत पूछिए।'

'हमारे घर में क्या कम है? छोटी-छोटी बात पर मुँह फुलाकर बैठ जाती है मैडम।'

देखा जाए तो शादी होने के तीन-चार दिन में ही समस्या का पता चल गया था। परफार्मेंस एंग्जाइटी···उसके बाद भी यह समस्या कम नहीं हुई, बल्कि बढ़ती ही गई। रात की उस विफलता को छुपाने के लिए दिन भर अधिकार चलाने की कोशिश करता रहता। लेकिन वह यह सब तो बता नहीं सकती।

'अब क्या बताएँ···अपने-अपने दुख-दर्द हैं···' कहकर टाल देती, जब भी वह पूछता, 'जूनियरजी, आज इतनी उदास क्यों हैं?'

खैर, वैसे तो मालूम हैं सारे हालात।

शादी के इतने साल हो गए। लेकिन सचमुच आदर करती है या प्यार करती है तो बगल में बैठकर थोड़ी-सी बातचीत क्यों नहीं करती, हर चीज में शंका।

'सही है। अपने-अपने दु:ख-दर्द, कहकर वह भी चुप हो जाता।

इससे पहले कैब में आना-जाना बहुत ही उबाऊ लगता था। लेकिन

डॉ. वी.एल. नरसिंहम शिवकोटी की हिंदी से तेलुगू और तेलुगू से हिंदी में अनुवाद कार्य में विशेष रुचि है। हिंदी की प्रमुख पत्रिकाओं व समाचार-पत्रों में अनूदित कहानियों, कविताएँ और शोधपरक लेख प्रकाशित। संप्रति भारत डायनामिक्स लिमिटेड, रक्षा मंत्रालय, हैदराबाद में सहायक प्रबंधक (राजभाषा) के पद पर कार्यरत।

अब दोनों अपनी-अपनी कैब में बैठते ही फोन या व्हाट्सऐप शुरू कर लेते। ऑफिस में दोनों मिलकर एक बार कॉफी पीते हैं। उसके लिए एक डिब्बा खाना ज्यादा ले आती है, तो खाना साथ में खा लेते हैं। शाम में नाश्ते के नाम पर 'सब-वे' में थोड़ी देर की गप्प। उसे बुखार हो तो वह दवाई ले आती। इस पर काम का दबाव ज्यादा हो तो वह काम बाँटकर मदद कर देता। इन पर सबकी नजर है भी और नहीं भी। उसको लेकर कोई भी ऐसी-वैसी बात नहीं करता। और कोई लड़की इसके भी पीछे नहीं पड़ रही है। इससे आगे कुछ हुआ क्या—इसका कौतूहल रखने वाले हैं और नहीं भी।

एक दिन उसने पूछा, 'इसके अलावा और कुछ नहीं चाहिए न।'

आँखें मिलाकर देखा उसने।

'पूछना ही नॉर्मल है···नहीं पूछना अबनॉर्मल है।' फुसफुसाया उसने।

उसने सिर्फ 'नहीं' में उत्तर दिया।

इसके बाद कभी इसकी बात नहीं उठी। अब और भी अच्छी कंपनी में और भी अच्छी सैलरी, और भी अच्छी पोजीशन मिली। जा रहा है।

बिल 'पे' कर दिया उसने। शाम हो गई। अँधेरा छा रहा है। दोनों ने जानबूझकर कैब 'मिस' कर दी।

'घर तक छोड़ूँ।' संकोच करते हुए पूछा।

'नहीं, बस से चली जाऊँगी।'

दोनों ने एक-दूसरे को देखा।

'और···' उसने कहा, 'कुछ नहीं।'

उसने भी कहा, 'और···'

उसने भी कहा, 'कुछ नहीं।'

उसने हाथ हिलाया तो इसने एक कदम आगे बढ़कर हाथ मिलाया। आखिरी शेक-हैंड। कल फिर सवेरा होगा। फिर ऑफिस। लेकिन ये दोनों फिर ऐसे नहीं मिल पाएँगे। सब लोग ऐसे नहीं रह सकते। लेकिन इस तरह का भी रिश्ता निभाने वालों के लिए 'सब-वे' में चीजें बनती ही रहती हैं।

सा अ

सहायक प्रबंधक (राजभाषा)
भारत डायनामिक्स लिमिटेड, रक्षा मंत्रालय
कंचनबाग, हैदराबाद-५०००५८
दूरभाष : ८२४७०६९८११

भारतीय ज्ञान-परंपरा में काशी का रंगमंच

• प्रभांशु ओझा

भारत के पास शताब्दियों से ही ज्ञान-विज्ञान की एक समृद्ध, विशिष्ट और अक्षुण्ण परंपरा रही है। इस बात में शायद ही कोई संदेह है कि भारत की इस ज्ञान-परंपरा को प्रवाहमय बनाए रखने में जिस एक नगरी की भूमिका चिरकाल से ही ऐतिहासिक और केंद्रीय रही है, तो वह काशी है। इस शहर के अस्तित्व से जुड़े पौराणिक और ऐतिहासिक साक्ष्यों, इसकी विशिष्ट भौगोलिक संरचना, ज्ञान-विज्ञान, संस्कृति, कला, हिंदू वैदिक धर्म, बौद्ध धर्म, शास्त्रार्थ और मोक्ष के केंद्र रूप में इसकी प्रतिष्ठा, भगवान् शिव के त्रिशूल पर टिके होने जैसे बहुप्रचलित मिथकों और किंवदंतियों, सबसे मिलकर एक अनूठे और विलक्षण भाव-जगत् की रचना होती है। कोई भी व्यक्ति इस भाव-जगत् की अनुभूति आज के आधुनिक होते हुए बनारस में कर सकता है।

काशी की रंगमंच परंपरा का इतिहास और अस्तित्व भी इस शहर के अपने इतिहास जितना ही पुराना है। नाट्य लेखन से लेकर मंचन तक काशी की रंग परंपरा ने भारत के रंगमंच और नाट्य इतिहास को आदि काल से ही समृद्ध किया और उसका प्रतिनिधित्व किया है। संस्कृत नाट्य परंपरा से लेकर भक्तिकाल में रामलीला जैसे बहुलोकप्रिय और विलक्षण नाट्यरूप के विकसित होने तक और औपनिवेशिक काल में भारतेंदु हरिश्चंद्र के नेतृत्व में हिंदी रंगमंच की जन्मभूमि बनने तक लगभग हर युग और काल में काशी की नाट्य परंपरा सतत रूप से प्रवाहशील रही है।

भारत में संस्कृत नाट्य परंपरा के रूप में रंगमंचीय विधान और नाट्य-विज्ञान का विकास हजारों साल पहले ही हो गया था। संस्कृत रंगमंच की इस गौरवमयी परंपरा में काशी की उपस्थिति के प्रमाण भी आदिकाल से ही मिल जाते हैं। कुछ विद्वानों की मान्यता तो यह तक है कि काशी का नाट्य साहित्य संस्कृत के शास्त्रीय नाटकों के युग से भी पहले शुरू हो जाता है। नगर में रंगमंच परंपरा के सक्रिय रूप से उपस्थित होने के आरंभिक प्रमाण जातक कथाओं और हरिवंश पुराण में मिलते हैं। इन विवरणों से यह अनुमान भी लगाया जा सकता है कि काशी में पेशेवर रंगकर्मियों को तब भी राजकीय और व्यापारिक संरक्षण प्राप्त था। चूँकि काशी हिंदू, बौद्ध और जैन धर्म की सांस्कृतिक गतिविधियों का केंद्र थी और तीनों ही धर्मों में अभिनय वर्जित नहीं था, इसलिए यह भी संभव है कि नाट्य गतिविधियों का इन धर्मों में केंद्रीय स्थान हो।

भारत में गुप्त साम्राज्य के पतन के साथ ही राजनीतिक स्थिरता बढ़ी और इसके साथ कला-परिवेश को मिलने वाले राजकीय प्रश्रय का भी अंत होने लगा। राज्य के बिखरने और उसके विकेंद्रीकरण के कारण दरबारों में संस्कृत के स्थान पर जनभाषाओं की स्वीकार्यता धीरे-धीरे बढ़ने लगी, क्योंकि नए सामंत और राजा संस्कृत में सुशिक्षित नहीं थे। इन सब परिवर्तनों का कुल मिलाकर प्रभाव यह हुआ कि संस्कृत की रंगमंच परंपरा का धीरे-धीरे अवसान हो गया। इन सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों को अभिव्यक्ति देने के लिए लोकभाषाओं के रंगमंच की आवश्यकता महसूस होने लगी। काशी के रंग-परिवेश पर इन पर परिवर्तनों का क्या प्रभाव पड़ा, इसका कोई ठीक-ठीक विवरण तो नहीं मिलता, लेकिन इतना अवश्य कहा जा सकता है कि काशी के कुछ रंगकर्मियों और नाट्यकर्मियों ने नए युग की चुनौती का सामना बहुत साहस के साथ किया और अपने नाट्य प्रदर्शनों को लोकभाषाओं के संस्कार के अनुरूप ढालने का प्रयास किया।

काशी के नाट्य इतिहास और रंग परिवेश को बारहवीं शती के बाद के मुगल शासन में काफी क्षति पहुँची और इस कारण लगभग चौदहवीं शती तक यहाँ की कलात्मक गतिविधियों में एक ठहराव की स्थिति बनी रही। इस ठहराव को रामानंद, कबीर, रैदास जैसे उदार तत्त्वदर्शी संतों ने तोड़ा। भक्तिकाल में जाकर काशी में एक बार फिर से एक समन्वित सांस्कृतिक परिवेश की भूमि तैयार होने लगी। इस दौरान यह गोस्वामी तुलसीदास और वल्लभाचार्य जैसे महान् संतों की साधना भूमि रही। यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस अवधि में काशी में प्रचलित धार्मिक नाटकों परंपरा का पुनर्संस्कार कर गोस्वामी तुलसीदास ने रामलीला का प्रवर्तन किया होगा। रंगमंच के अध्येताओं ने यह दिखाया है कि इस वाराणसी या रामनगर की रामलीला का शृंखलाबद्ध प्रदर्शन सोलहवीं शताब्दी से ही होता रहा है और यह पूरी तरह तुलसीदास की

सुपरिचित लेखक। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, शिक्षा मंत्रालय भारत सरकार में सलाहकार। काशी के रंगमंच पर दिल्ली विश्वविद्यालय से विद्यावाचस्पति की उपाधि प्राप्त। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में नियमित स्तंभ-लेखन। संप्रति दिल्ली विश्वविद्यालय के हंसराज कॉलेज के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर।

रामचरितमानस पर ही आधारित रही है। माना जाता है कि रामनगर के वर्तमान राजा के पूर्वजों ने ही इसको पीढ़ी-दर-पीढ़ी राजकीय प्रश्रय प्रदान किया, जो परंपरा आज तक जारी है। रामलीला के नाटकीय प्रदर्शन के इतिहास को लेकर कायम कुछ मतभेद के बावजूद तुलसीदास के समसामयिकों और उनके अनुयायियों के लेखन से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि तुलसीदास ने इसकी परिकल्पना अपने मानस पर प्रदर्शन और रंगमंच के तत्त्वों को ध्यान में रखकर की थी।

उन्नीसवीं शताब्दी तक आते-आते रंगमंच और नाटक की विधा की प्रतिष्ठा में गिरावट होने लगी। हालाँकि इस समय के काशी के सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में विविध तरह के नाट्य रूपों और प्रदर्शनों का बोलबाला था और वे काफी लोकप्रिय भी थे। वार्षिक स्तर पर रामलीला का मंचन होता था, विशुद्ध मनोरंजन के माध्यम से दिखाए जाने वाले कई गैर-धार्मिक नाट्य स्वरूप-जैसे बहुरूपिया और पारसी रंगमंच की मंडलियाँ आदि भी पंजाब से लेकर बिहार तक के भौगोलिक क्षेत्र में प्रचलित थे। काशी इन प्रदर्शनों का एक मुख्य केंद्र थी। पंजाब से लेकर काशी और काशी से लेकर बिहार तक का ये संपूर्ण भौगोलिक क्षेत्र एक साझा सांस्कृतिक परंपरा और तौर-तरीकों से सूत्रबद्ध था। हालाँकि उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनारस या काशी के सांस्कृतिक परिवेश और वातावरण में स्वाँग या नौटंकी व संगीत जैसे लोकनाट्य रूप बेहद सशक्त रूप से मौजूद थे। इन सभी लोकप्रिय नाट्य स्वरूपों की उपस्थिति और काशी के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर उसके प्रभाव के बावजूद ये रंगमंचीय स्वरूप युग और काल की बदलती आवश्यकताओं को स्वर देने में असमर्थ दिखाई देने लगे। औपनिवेशिक शासन के संपर्क के कारण जन्म लेनी वाली परिस्थितियाँ और उसके परिणामस्वरूप होने वाली सामाजिक-राजनीतिक प्रतिक्रियाओं की अभिव्यक्ति के लिए नाटक की प्रस्तुति से लेकर उसकी विषयवस्तु के स्तर पर परिवर्तन की आवश्यकता महसूस होने लगी। संक्रमण काल की इस अवधि में ही काशी के सांस्कृतिक फलक पर भारतेंदु हरिश्चंद्र ने प्रवेश किया। काशी के एक संपन्न वैश्य परिवार में साल १८५० में जनमे भारतेंदु संपूर्ण उत्तर भारत और काशी प्रदेश में अपनी साहित्यिक और सांस्कृतिक सक्रियता और हिंदी भाषा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता के चलते 'आधुनिक हिंदी के पितामह' कहलाए। उनके साहित्यिक जीवन का सबसे बड़ी और विलक्षण बात यह थी कि उन्होंने तत्कालीन युग की सामाजिक-सांस्कृतिक और राजनीतिक परिस्थितियों को स्वर देने के लिए सबसे अधिक अनुकूल नाटक की विधा को ही माना और हिंदी और रगमंच की सिद्धांत-निर्मिति का एक अभूतपूर्व प्रयास किया। हालाँकि स्वयं काशी में भारतेंदु के आगमन से पहले ही राजा ईश्वरी नारायण सिंह के नेतृत्व में नाट्यांदोलन का सूत्रपात हो चुका था, लेकिन इनको सही मायनों में जनांदोलन में परिवर्तित करने का कार्य भारतेंदु ने ही किया।

भारतेंदु एक ऐसे काल में लिख रहे थे, जब औपनिवेशिक शासन के संपर्क की प्रतिक्रियास्वरूप भारत के पारंपरिक मूल्यों, रीति-रिवाजों में परिवर्तन आ रहे थे और किसी भी साहित्यकार का लेखन ऐसे संक्रमण काल में 'परंपरा' और 'आधुनिकता' के बीच द्वंद्व से मुक्त नहीं रह सकता। कुल मिलाकर भारतेंदु ने भारतीय नाट्य परंपरा का परिष्कार कर हिंदी नाटक और रंगमंच की सैद्धांतिक नींव डाली और उसके स्वरूप निर्धारण का स्तुतीय और अभूतपूर्व कार्य किया। काशी के रंग परिवेश में भारतेंदु के बाद जयशंकर प्रसाद ने हिंदी नाटक को नवीन चेतना और आयाम दिया। उन्होंने नाट्य पाठ और लेखन को रंगमंचीय तत्त्व से श्रेष्ठ माना और पारसी शैली में नाटकों को पूर्व सज्जित मंच के अनुसार लिखने या समायोजित करने के तरीके का विरोध किया। उनके नाटकों के कथानक प्राचीन भारत के इतिहास के गहरे मंथन से निकले और इस पर ऐतिहासिकता के प्रति भारतेंदु युग में आई चेतना का सहज प्रभाव देखा जा सकता था। उत्तर भारत और काशी में प्रसाद के बाद समस्या नाटकों का युग आया, जिसके प्रवर्तक पं. लक्ष्मीनारायण मिश्र थे और उनकी रंगमंच सक्रियता का केंद्र भी काशी ही रही। इस तरह औपनिवेशिक काल से चली आ रही काशी की रंग-परंपरा भारत को स्वतंत्रता मिलने के दौर में उतार-चढ़ावों के कई दौरों से गुजरी। संभवत: इसी अवधि में हिंदी नाटक और रंगमंच की परंपरा को पंख मिले और उसने अपना स्वर्णिम दौर देखा। लेकिन स्वतंत्रता के बाद बने भारत की परिकल्पना में वाराणसी जैसी नगरी का धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व तो बना रहा, लेकिन साहित्यिक, रंगमंचीय और ज्ञान-विज्ञान की गतिविधियों का केंद्र राजधानी दिल्ली बनने लगी। यह ध्यान देने योग्य बात रही है कि इन 'नए' सांस्कृतिक केंद्रों के पास संस्कृति और साहित्य की वैसी विरासत और सामाजिकता नहीं थी, जैसी काशी जैसे पारंपरिक नगरों के पास थी। इस दौर में रंगमंच की प्रासंगिकता और सार्थकता को सबसे बड़ा धक्का सवाक् फिल्मों की शुरुआत होने के कारण लगा। सवाक् फिल्मों के आकर्षण के बीच रंगमंच को अपनी प्रासंगिकता बचाए रखने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ा और इसके कारण काशी में स्वतंत्रता के बाद की अवधि और उसके आस-पास बहुत से रंगशालाएँ बंद हुईं। काशी की लोकप्रिय नागरी नाटक मंडली १९३५-१९४७ के बीच केवल तीन ही नाटक खेल सकी।

लेकिन इन परिवर्तनों का अर्थ यह नहीं निकालना चाहिए कि काशी में वर्तमान में कोई रंग-परंपरा नहीं है। उत्साही रंगकर्मियों और अभिनयकर्ताओं ने कभी अपने निजी प्रयासों और कभी सांगठनिक प्रयास करके काशी की समृद्ध रंग परंपरा को पुनर्जिवित करने के प्रयास समय-समय पर किए हैं। रामनगर की रामलीला वर्तमान में बहुत बड़े स्तर आयोजित की जाती है और इसको नागरिक हिंदू समाज से वैसा ही समर्थन प्राप्त है, जैसा पारंपरिक रूप से हुआ करता था। यह विलक्षण बात है कि संपूर्ण उत्तर भारत में बीते कुछ वर्षों रामलीला की अंदर आई विकृतियों के बावजूद काशी की रामलीला अपने पारंपरिक और परिष्कृत रूप को बचाए रखने में सफल रही है।

साअ

हंसराज कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
मल्कागंज-११०००७
दूरभाष : ९९६८९९३२०१

हैप्पी न्यू ईयर

• तारो सिंदिक

सहायक प्राध्यापक एवं लेखक। अब तक हिंदी तागिन अध्येयता कोश, अक्षरों की विनती, फिर आना तुम (काव्य-संग्रह), तागिन लोक साहित्य प्रकाशित। साहित्य अकादमी युवा पुरस्कार, शताब्दी सम्मान, सम्मेलन सम्मान, अरुण हिंदी सम्मान, यूथ अचीवर्स अवॉर्ड, पूर्वोत्तर काव्य गौरव सम्मान इत्यादि प्राप्त।

और दिनों की तुलना में आज बाजार की रौनक कुछ ज्यादा ही बढ़ गई थी, मानो ग्राहकों की आज बाढ़ सी आ पड़ी हो। शाक-सब्जियों के साथ-साथ मुर्गी, बकरी, सूअर, मछलियों से लेकर मिथुन जैसे विशालकाय पशुओं के कच्चे लाल मांसों से बाजार आबाद था। कहीं चोरी-छुपे जंगली जानवरों की खरीद-फरोख्त भी कानून की नाक के नीचे चालू थी। हालाँकि जंगली पशु-पक्षियों को मारना, बेचना और खरीदना कानून जुर्म है; लेकिन बेचने और खरीदने वालों के बीच जिस तरह के गुप्त तार जुड़े होते हैं, कानून के लंबे हाथों की पहुँच वहाँ तक कहाँ? निरीह पशुओं का कत्ल-ए-आम करके उसे बेचने की खातिर ग्राहकों की ओर नजर गड़ाए इनकी गिद्ध जैसी आँखें, इशारों से बुलातीं, इनकी पेशेवर हथेलियाँ और कर्कश आवाज—'यहाँ आओ', 'मुर्गी मीत लो', 'सूअर मीत लो' 'क्या लेगा? मुर्गी, सूअर या मछली?' ऐसे तयशुदा वाक्यांशों को बार-बार दोहराते मांस-विक्रेता अपना गला फाड़ रहे थे। उनमें से अधिकतर महिलाएँ थीं, जो हाथ में दाँव लिये हलाल किए हुए पशुओं पर बेरहमी से वार करती और भी भयावह लग रही थीं। घर के चूल्हे और बच्चों के पालन-पोषण के वास्ते इनसान रोजाना पशुओं की लाश ढोने को भी विवश है।

मैं हमेशा बाजार के इस वाले इलाके में जाने से कतराता हूँ। क्योंकि उनमें से अधिकतर मेरे पहचान वाले हैं। जब भी जाता हूँ तो हर कोई अपनी तरफ खींचने के चक्कर में मुझे अजीब सी स्थिति में फाँस लेते हैं। मैं अकसर धर्मसंकट में फँस जाता कि किसके पास जाऊँ? मन पर पत्थर रखकर किसी के पास चला जाता हूँ तो बाकी के दो या तीन लोग नाक-मुँह सिकोड़कर अपनी मूक नाराजगी व्यक्त कर ही देते हैं।

उस दिन भी बहुत भारी मन से मैं कुछ सब्जियाँ और चिकन खरीदने को गया। दिन था ३१ दिसंबर, २०२२। साल का आखिरी दिन, जिसे बहुत धूम-धाम से विदा करने की रीति संसार में चल पड़ी है। मेरी समझ में आज तक यह बात नहीं आई कि इकतीस दिसंबर की रात और एक जनवरी की सुबह और दिनों से कैसे अलग तथा खास हैं? पर क्या करें··· इस संसार में जीवित रहने के लिए कई दफे हमें संसार के बनाए नियमों पर चलना पड़ता है, चाहे उसका संबंध किसी लॉजिक से हो या नहीं। सो जैसे ही मैंने गाड़ी से उतर जमीन पर कदम रखा, खून के छींटों से सने एफरॉन पहनी महिलाओं की लालसा भरी निगाहों ने मुझ पर हमला बोला।

"कू ताबोम ङा नाजि लाबअ कअ (ताबोम बेटा, मेरे यहाँ से लेना)।" वह मेरी दूर की मौसी लगती थी। हाथ और जबान दोनों चलाते हुए उसने मुझे अपनी तरफ बुलाया। हालाँकि और दिनों उनको मुझसे कुछ वास्ता नहीं होता।

"ताबोम अ आञ्या सिका कअ (प्यारे ताबोम, मेरे यहाँ आना)।" एक और दावधारी महिला, जिसके चेहरे पर बनावट की कुटिल मुसकान स्पष्ट झलक रही थी। मैं इनको पहचानता नहीं था, इसलिए उनकी आत्मीय पुकार से चौंक गया।

इतने मीठे और प्यारे शब्दजालों में मुझे फाँसने के असफल प्रयास में वे एक-दूसरे से भी भिड़ पड़ीं। बेचने और खरीदने के इस धंधे में इनसान की अभिनय-कुशलता कितनी बढ़ जाती है, यह इन लोगों से समझा जा सकता है। किसी तरह जान बचाकर मैं एक अजनबी महिला के पास गया और जरूरत का सामान लेकर ऐसा भागा, जैसे किसी बदबूदार, घुटन भरी गुफा से निकला हूँ।

पाँच बजते-बजते सूरज ने पहाड़ों की ओट में अपना मुहँ छिपा लिया। सुबनसिरी की शांत बहती लहरों में अभी-अभी जो स्वर्णिम आभा झिलमिलाती तैर रही थी, मानो उसकी गहराई में समा गई। जाड़े के दिनों अरुणाचल प्रदेश में दिन की अवधि बहुत छोटी हो जाती है। चौबीस घंटों में लगभग दो अतिरिक्त घंटे अँधेरे के खाते में चले जाते हैं। जैसे ही अंधकार ने दापोरिजो के धरती-आकाश को अपने आगोश में लिया, सभी घर रातभर चलने वाली पार्टी की तैयारी में मशरूफ हो गए। आज कोई नहीं सोएगा, जिनको गाना नहीं आता, वे भी गाएँगे; नाचना नहीं आता, वे

भी ठुमके लगाएँगे। सबके भीतर का सिंगर और डांसर अवतरित होगा। किसी की मजाल जो 'इनकार' की जुर्रत कर सके। ऐसी-वैसी रात थोड़े है, 'वेटिंग नाइट' है भई! साल की आखिरी रात है, ऐसे कैसे जाने देंगे? बेशुमार पशुओं की जानें यों ही कुर्बान क्योंकर हों? आज बेहिसाब खाएँगे, बेहिसाब पिएँगे, जैसे इस रात की तरह ही सबकुछ आखिरी हो। 'अंतिम' और 'पहला' का अनोखा संगम जो होगा।

उन घरों में एक छोटा सा घर है, जो तापाङग्यामा कॉलोनी में दो-तीन घरों से घिरा है। पार्टी की तैयारी यहाँ भी जोर-शोर से चल रही है। आज सब दिखाएँगे कि किसमें कितना है दम! अब सात ही बजा है कि हमारे ठीक बगल वाले पड़ोसी ने विशालकाय स्पीकर में संगीत चालू किया—'मुन्नी बदनाम हुई डार्लिंग तेरे लिए···!' फिर बारी-बारी से बॉलीवुड के सभी आइटम सांग बजते गए। इस रात के लिए बड़ी शिद्दत से ऐसे गीतों का संकलन किया जाता है, जिनके बजने से पैर थिरकने और कमर ठुमकने को विवश हो जाए। वैसे गाने हम भी बजा रहे थे, पर पड़ोसी की तैयारी हमसे ज्यादा दमदार थी। हम केवल पाँच लोग थे, पर उनके यहाँ मानो सारा का सारा गाँव आ गया हो। हर गाने में वे ताल-से-ताल और सुर-से-सुर (बेसुरा) मिला रहे थे। ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो मानवीय और यांत्रिक ध्वनियों में भीषण युद्ध छिड़ गया हो। गाना बजा—'मेनु चढ़िया डांस का भूत चढ़िया···!' इस पर सब ऐसे बदहवासी में ठुमकने लगे, जैसे कोई साँड़ पगला गया हो या सब पर सच में डांस का महाभूत चढ़ गया हो। अरिजीत की आवाज भी उनके समवेत स्वरों में बिगड़ती-दबती सी जाती थी।

"अरे, साउंड जरा कम करो" उनके कनफोड़ा संगीत से परेशान मेरी बहन अमिन ने अंदर से आवाज लगाई।

"छोड़ न अमिन! तुम्हें लगता है कि वे सुन पाएँगे? मस्ती करने दो बेचारों को। यह रात बार-बार थोड़ी न आती है।" जीजाजी ने चूल्हे की आग को सुलगाते हुए उसे शांत रहने को कहा। पर मेरी बहन ऐसे मामलों में चुप नहीं बैठती। प्रतिकार करती हुई बोली—

"कैसे चुप बैठूँ? ये लोग इनसान हैं कि क्या हैं? इन लोगों को समझ नहीं आता कि पड़ोस में भी लोग हैं। यह भी कोई तरीका है पार्टी करने का। इनका लाउडस्पीकर इस तरह बजता रहा तो हमारे कानों से खून निकल आएगा, ऊपर से किसी के भी गले पर कोई लगाम नहीं है, बेसिर-पैर गाता और चिल्लाता जा रहा है। वे तो शराब के नशे में मदमस्त हैं, पर यह जरूरी नहीं कि इस रात हर किसी ने पी रखी हो।" कहकर वह उठी और बाहर जाकर दोनों घरों की सीमा पर बँधा बेड़ा में खड़ी हो फिर से आवाज लगाई—

"आप लोग प्लीज थोड़ा साउंड कम करेंगे?"

किसी ने नहीं सुनी, सब किसी और दुनिया के हो चुके थे। गाना बज रहा था—'जग मुझपे लगाए पाबंदी, मैं हूँ ही नहीं इस दुनिया की···' थिरकते-झूलते एक नर्तक की नजर अमिन पर पड़ ही गई। अपने लड़खड़ाते कदमों को बहुत मुश्किल से सँभालते हुए वह उसके पास आया और हाँफते-हाँफते पूछा, "क्या हुआ?"

अमिन ने लगभग वही वाक्य फरियाद के लहजे में दोहराया, "आप लोग प्लीज थोड़ा साउंड कम करेंगे। हमें बहुत तकलीफ हो रही है। मेरे कानों में दर्द होने लगा है।"

"हाँ-हाँ-हाँ-···क्या बात करती है। आज यह सब नहीं करेंगे तो कब करेंगे?" अमिन की फरियाद को अपने चेहरे से रिसते पसीनों की छींटों के साथ उड़ाते हुए वह वापस उसी दुनिया में विलीन हो गया।

अगला गाना बजा—'खाली हाथ आए थे हम खाली हाथ जाएँगे···' अमिन भी उसी तरह वापस लौटी। "सब के सब फूहड़ और जंगली हैं। सही-गलत और अच्छे-बुरे का तो कुछ ज्ञान ही नहीं है इन लोगों को।" बड़बड़ाती हुई वह बिखरे बरतनों को समेटने लगी।

"कहा था न कि वे सुनने वाले नहीं हैं। पढ़े-लिखे होते तब न बात करते उनसे। इसलिए इनसान कुछ बने न बने, थोड़ी शिक्षा प्राप्ति तो कर लेनी ही चाहिए। कुछ नहीं तो संवेदनशील और विवेकशील तो हो ही जाता है।" चिकन की थाली मेरी ओर सरकाते हुए जीजाजी ने कहा।

बात सौ प्रतिशत सही है। हमारे लोगों में एक बहुत बड़ी गलतफहमी है कि शिक्षा का प्रयोजन केवल सरकारी नौकरी तक सीमित है। वे इसके नैतिक पक्ष को पूरी तरह भूल जाते हैं। सबकी सामान्य मान्यता है कि नौकरी नहीं मिलने की सूरत में सारी पढ़ाई-लिखाई बेकार है। शिक्षा मनुष्य को पशुत्व से ऊपर ले जाकर सामाजिक सरोकार से जोड़ती है। मनुष्य 'मैं' से 'हम' की यात्रा शिक्षा के माध्यम से ही तय करता है। सिर्फ सरकारी नौकरी ही नहीं, स्वयं को सक्षम बनाकर जीवन के किसी भी कार्यक्षेत्र में मजबूती से पैर जमाने का आधार भी शिक्षा ही है। जो इस 'आधार' से वंचित रह जाता है, उनसे 'हेप्पी न्यू ईयर' भी ढंग से नहीं मनाया जाता।

जब बात निगलने या उगलने की स्थिति में आ जाए, तो कभी-कभी निगल लेने में ही समझदारी और भलाई होती है। एक समझदार चुप्पी के साथ अभी निगल जाना ही सही विकल्प था। स्थिति ऐसी थी कि हम अपने घर में सेलिब्रेट करते हुए भी मानो पड़ोसी की पार्टी का अनचाहा हिस्सा थे, जिससे चाहकर भी हम अलग नहीं हो पा रहे थे। उनके सेलेब्रेशन ने सारी कॉलोनी में धूम मचाकर रखी थी। हमारी बदकिस्मती थी कि हम उनके निकटतम पड़ोसी थे। किसी तरह वेटिंग नाइट में वेटिंग की घड़ियाँ खत्म हुईं। घड़ी की सुई बारह पर अटकते ही चारों दिशाओं में पटाखे फूटने लगे और आतिशबाजियों से रात का आसमान कई रंगों की रोशनी से रोशन होने लगा। 'हेप्पी न्यू ईयर!'—अंग्रेजी के ये तीन शब्द जयघोष से हर घर में गूँजने लगे। हमने भी उस रात की अंतिम रस्म अदा की केक काटकर और प्रवेश किया सन् २०२३ के प्रथम दिवस पर। फिर सबने सोचा कि अब सो जाने में ही समझदारी है।

मैं बिस्तर पर था, पर नींद आस-पास तो क्या दूर-दूर तक कहीं नहीं

थी। सामने डिस्को का सिलसिला खत्म होने का नाम ही नहीं ले रहा था। मानो प्रण कर लिया था कि आज पड़ोसियों को सोने नहीं देंगे। मेरी समझ में नहीं आता कि इनसान में इतनी ऊर्जा कहाँ से आ जाती है कि आठ-नौ घंटे बिना रुके, बिना थके उछल सके, कूद सके। इस रात का जादू ही कुछ और है। हम सब अपने-अपने कमरे में चले गए। बस चले गए, सोया कोई नहीं। मैं करवट बदलता रहा, सोचता रहा कि लोग इस रात-विशेष में इतने पागल क्यों हो जाते हैं? क्या इस रात के बाद उनके पिछली जीवन के सारे बुरे साये पीछे रह जाते हैं? क्या जनवरी का पहला दिन सही मायने में सुख और समृद्धियों का पैगाम लेकर आता है? मेरे लिए दिसंबर का आखिरी दिन और जनवरी का पहला दिन सदैव एक समान ही रहा—एकदम सामान्य; बिल्कुल और दिनों-सा। हमारे जनजातीय समाज में 'सेलेब्रेशंस' की नवीन संस्कृति का प्रचलन चरम पर है। हमारी युवा पीढ़ी किसी भी ऐसे अवसर से चूकना नहीं चाहती, जिसका स्रोत दूर कहीं पश्चिम में है। मसलन—रोज-डे, हग-डे, वेलेंटाइन-डे, किस-डे, प्रपोज-डे, फ्रेंडशिप-डे···बगैरह-बगैरह। 'थर्टी फर्स्ट नाइट' भी उसी शृंखला का अन्यतम उपक्रम है। इसे 'ग्रेंड' से मनाने के लिए नवीन पीढ़ी आमादा रहती है। अपने स्थानीय पर्व के प्रति उनमें वही जोश और उल्लास नहीं दिखता। कुछ तो सरासर उदासीन ही रहते हैं। मेरे शरीर की तरह विचारों ने भी करवट बदली, उन बेबस पशुओं की तरफ।

आज के दिन न जाने कितने बेजुबान पशुओं को अपने प्राणों से हाथ धोना पड़ता है। यों तो अरुणाचल प्रदेश लगभग पूर्णतया मांसाहारी प्रदेश है। इसलिए प्रतिदिन पेट और स्वाद के वास्ते पशुओं का हलाल करना आम बात है। परंतु इस खास दिन के लिए पाँच-दस गुणा अतिरिक्त पशुओं को बड़ी बेरहमी से मौत के घाट उतार दिया जाता है। मुझे याद आया कि स्कूल के दिनों में इकतीस दिसंबर की ही रात हम मित्रों संग दापोरिजो नगर का भ्रमण कर रहे थे। सब्जी-मंडी से गुजरते वक्त किसी कोने से एक सूअर की जोर-जोर से रोने की आवाज आई। पास जाकर देखा तो दो कसाइयों ने उस सूअर के ऊपर केरोसीन डालकर माचिस की तीली से आग लगा दी। वह जिंदा जलकर मर गया। उसकी दर्दनाक मौत का जश्न मनाते हुए दोनों जन 'हेप्पी न्यू ईयर' कहकर फुदक रहे थे। जंगली से लेकर पालतू पशुओं तक के प्राणों का कोई हिसाब या मोल नहीं होता इस दिन। बेचने वाले और खरीदने वाले दोनों ही उनके मौत के सौदागर बनकर अवतरित होते हैं उस दिन। हमारी अय्याशी के लिए न जाने कितने युगों तक इन पशुओं को बलात् कुर्बानी देनी पड़ेगी।

न जाने कैसे मेरे विचारों की धारा अवरुद्ध हुई और मुझे अहसास हुआ कि पड़ोस वाले कुछ शांत हो गए हैं, इसलिए नहीं कि उनके विवेक जाग गए, बल्कि उनके तन और मन ने जबाव दे दिया। मैंने घड़ी देखी, सुबह चार बजे···मेरी आँखों में नींद ने बहुत होशियारी से प्रवेश करना आरंभ किया। मस्तिष्क ने देह के हर अंग को सुप्त हो जाने का आदेश दिया। तभी पड़ोसी के घर की छत से दो बिल्लियों की दिल दहला देने वाली चीत्कारों ने वातावरण की शांति फिर से भंग की। प्रकृति-प्रदत्त यह कैसी वृत्ति है कि जब दो बिल्लियाँ संभोग क्रिया में लिप्त रहती हैं तो अत्यंत उग्र और आक्रामक हो जाती हैं। तभी एक जोर का धमाका हुआ··· धम्म! शायद गोली चली।

"मार दिया, मार दिया साला, इतना जोर-जोर से चिल्ला रहा था। पूरा नींद तोर दिया था···" टूटी-फूटी हिंदी में बिल्ली के मर जाने की सूचना प्रतिशोध लेने के लहजे में दी जा रही थी।

दोबारा वही धमाका···धम्म! दूसरी बार गोली चली।

"दूसरा वाला को भी मार दिया। दोनों को मार दिया साला। साला दोनों मिलके सबका नींद खराब कर दिया था।" गोली हमारे पड़ोसी गिङ्मर के बड़े बेटे मार्युम ने चलाई थी। शराब और कबाब के बोझ से उसकी आँखें और शरीर दबे जा रहे थे, पर गोली चलाते वक्त उसके निशाने बिल्कुल भी नहीं चूके।

मैंने कई बार सुना था कि मनुष्य से बड़ा और भयानक पशु सृष्टि में और कोई नहीं। मर्युम ने इस सुप्रसिद्ध कथन को चरितार्थ किया। कितनी अजीब बात है। अभी दो-ढाई घंटे पहले हमारी नींद पर अंकुश लगाने वालों को जब अपनी नींद की पड़ी तो एक जोड़ी बिल्ली के प्राण गोलियों से हर लिये। किसने सोचा होगा दो बेकसूर बिल्लियों की संभोग क्रिया की प्रक्रिया ही उनकी मृत्यु का कारण बनेगी।

"अरे, बिल्ली को मार के छत में ही रखेगा क्या? नई पेकेगा?" मार्युम के पिता ने शिकायत-सी करते हुए कहा।

"अभी पेकेगा।" कहकर वह छत पर चढ़ गया और बारी-बारी से दोनों बिल्लियों के मृत शरीर को 'हेप्पी न्यू ईयर, हेप्पी न्यू ईयर' का नारा लगाते हुए घर के पीछे खाई में बहती धारा में फेंक दिया। मैं फिर से सोचता रह गया कि मर्युम और उसके परिवार के लिए 'हेप्पी न्यू ईयर' का मायने क्या है?

हिंदी विभाग,
डेरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय,
ईटानगर (अरुणाचल प्रदेश)
दूरभाष : ९४०२९६३१४७

इस अंक की चित्रकार

अनुभूति गुप्ता

नवोदित लेखिका एवं चित्रकार। हिंदी की पत्र-पत्रिकाओं में रेखाचित्र, कविता, लघुकथा आदि प्रकाशित। कविता कोश में साठ से अधिक कविताएँ संकलित। बाल-काव्य तथा कहानी-संग्रह एवं कुछ काव्य-संग्रह शीघ्र प्रकाशित। 'नारी गौरव सम्मान', 'साहित्यश्री', 'प्रतिभाशाली रचनाकार सम्मान', 'नवांकुर रत्न सम्मान' तथा 'संपादक शिरोमणि' आदि सम्मानों से समादृत।

संपर्क : १०३ कीरत नगर, निकट डी.एम. निवास
लखीमपुर खीरी-२६२७०१ (उ.प्र.)

दर्द की आग को दूर रखना जरा

● चंद्रपाल मिश्र 'गगन'

: एक :

सोच रहा हूँ मन ही मन में,
क्या पाया है अपनेपन में।

खुद का रोज मरण देखा है,
हमने अपने ही जीवन में।

नयनों की भी बदली बरसी,
आग लगी जब अंतर्मन में।

वो मोहन का ये चमचों का,
अंतर है मक्खन मक्खन में।

कितने बेबस होते हैं हम,
फँसते हैं जब सम्मोहन में।

रोल अहम था तेरा भी तो,
दुःख के सारे आयोजन में।

जो पाना है पा ही लेगा,
याचक मत बन राम भजन में।

रिश्ता ही जब समझ न आया,
क्या कहते फिर संबोधन में।

तुम को अब कैसे बतलाएँ,
उम्र बिता दी किस बंधन में।

शब्दों की गलियों में भटके,
जीवन भर आवारापन में।

रात गुजारी ग़ज़लें लिखते,
दिन बीता है संशोधन में।

: दो :

विगत को सदा के लिए भूल जाएँ,
मिला आज जो भी उसे गुनगुनाएँ।

चली चाल किसने दिए घाव किसने,
भुलाकर सभी को गले से लगाएँ।

कहे जो जमाना वही तो न सब-कुछ,
भला क्या बुरा क्या अलग धारणाएँ।

पता ही न सच का चला है अभी कुछ,
सभी पूछते हम किसे क्या बताएँ।

यही जिंदगी की कहानी निराली,
चुनौती सदा सामने मुसकराएँ।

लिया देख सबको बचा है न कोई,
सभी एक-से हैं किसे आजमाएँ।

करो तुम भला ही जमाने में सबका,
भले ही हमेशा मिलें बद्दुआएँ।

: तीन :

निशाने भले ही सदा चूकते हैं।
मगर हारकर हम नहीं टूटते हैं।

चला जा भले रूठकर तू यहाँ से,
निराधार शर्तें न हम पूजते हैं।

न लेना न देना रहा अब किसी से,
सभी लोग अपना भला सोचते हैं।

किसी को समझना नहीं आज मुमकिन,
इरादे छुपाए सभी घूमते हैं।

कई चादरें ओढ़कर हम भ्रमों की,
कदम-दर-कदम कुछ नया सूँघते हैं।

गुजर जो गया वो दुबारा न लौटा,
न जाने उसे आज क्यों ढूँढ़ते हैं।

जमीं की हकीकत पता ही नहीं है,
कई ख़्वाब लेकर गगन देखते हैं।

: चार :

हम भले ही सदा एक नग से रहे।
उम्र भर परकटे पर विहग से रहे।

वक्त ने दी हमें सिर्फ ऐसी सजा,
हम हमेशा स्वयं से अलग से रहे।

रोज संधान होते यहाँ आजकल,
इसलिए हम सभी से सजग से रहे।

भ्रम सजाए हुए आँख की कोर पर,
रेत पर भागते एक मृग से रहे।

भाव उनके सभी मौन धारण किए,
क्यों भला इस तरह वे विलग से रहे।

जाने-माने रचनाकार। 'संकेत संभावनाओं के', 'हम ढलानों पर खड़े हैं' (काव्य-संग्रह), 'हिंदी काव्यधारा' पुस्तक तथा पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। देश के जाने-माने साहित्यकारों के साक्षात्कार लिये। संप्रति प्रधानाचार्य पद से सेवानिवृत्त होकर लेखन में रत।

कह गए एक ही साँस में क्या-न-क्या,
शब्द उनके हमेशा खड़ग से रहे।

दर्द की आग को दूर रखना जरा,
आपके भाव कुछ-कुछ सुलग से रहे।

: पाँच :

छोड़ दें यदि सभी आसरे।
फिर न कोई गमों से मरे।

चाहिए हर किसी को यही,
कर सके जो उसे तो करे।

हो सका है कभी क्या भला,
प्यास का घट किसी का भरे।

कष्ट अपना स्वयं भोगना,
है नहीं दूसरा जो हरे।

मिल सकेगा भला क्या उसे,
फ़र्ज को देखकर जो डरे।

साथ में आँसुओं को लिये,
घूमते हैं बहुत मसखरे।

पास आकर लगेंगे सरल,
बात में जो रहेंगे खरे।

सा.अ.

२११/१, आवास विकास कॉलोनी
कासगंज-२०७१२३ (उ.प्र.)
दूरभाष : ७०१७७३०६१८

स्वीटनेस

मूल : **टोनी मॉरिसन**

अनुवाद : **सरिता शर्मा**

यह मेरी गलती नहीं है, इसलिए आप मुझे दोष नहीं दे सकते। मैंने ऐसा नहीं किया और मुझे नहीं पता कि यह कैसे हुआ। जब उन्होंने उसे मेरे पैरों के बीच से निकाला, तब एक घंटे से अधिक समय नहीं लगा और मुझे यह अहसास हो गया कि कुछ गड़बड़ हुई है। सचमुच गलत हुआ है। वह इतनी काली थी कि उसने मुझे डरा दिया। आधी रात जितनी काली, सूडानी काली। मेरा रंग गोरा है, मेरे बाल अच्छे हैं, जिन्हें हम हाई येलो कहते हैं और लूला ऐन के पिता भी ऐसे ही हैं। मेरे परिवार में कोई भी उस रंग के आसपास भी नहीं है। तारकोल उसके सबसे करीब है, जिसके बारे में मैं सोच सकती हूँ, फिर भी उसके बाल त्वचा के साथ नहीं मेल नहीं खाते हैं। वे अलग हैं—सीधे लेकिन घुँघराले, ऑस्ट्रेलिया की उन नग्न जनजातियों के बालों की तरह। आप सोच सकते हैं कि वह आवर्तन है, लेकिन किसका आवर्तन है? तुम्हें मेरी दादी को देखना चाहिए था; उसे श्वेत मान लिया गया, उसने श्वेत व्यक्ति से विवाह किया और अपने किसी भी बच्चे से कभी कोई शब्द नहीं कहा। उसे मेरी माँ या मेरी मौसी से जो भी पत्र मिला, वह उसे बिना खोले ही वापस भेज देती थी। आखिरकार उसे कोई संदेश न आने का संदेश मिला और उसने ऐसा होने दिया। लगभग सभी किस्मों के मुलट्टों और क्वाड्रून पहले ऐसा ही करते थे, अगर उनके बाल सही प्रकार के होते।

क्या आप कल्पना कर सकते हैं कि कितने गोरे लोगों की रगों में नीग्रो खून छिपा है? अनुमान लगाइए। मैंने सुना, बीस प्रतिशत। मेरी अपनी माँ, लूला मेई को आसानी से श्वेत माना जा सकता था, लेकिन उसने ऐसा नहीं करने का फैसला किया। उसने मुझे बताया कि उस निर्णय के लिए उसने कितनी बड़ी कीमत चुकाई। जब वह और मेरे पिता शादी करने के लिए कोर्टहाउस गए, तो वहाँ दो बाइबल थीं। उसे नीग्रो लोगों के लिए आरक्षित बाइबल पर अपना हाथ रखना पड़ा। दूसरी बाइबल श्वेत लोगों के हाथ रखवाने के लिए थी। बाइबल! क्या आप इस पर विश्वास कर सकते हैं? मेरी माँ अमीर श्वेत जोड़े की नौकरानी थी। उन्होंने उसके द्वारा पकाया गया हर भोजन खाया और जोर देकर कहा कि जब वे टब में बैठें तो वह उनकी पीठ को रगड़कर साफ करे और भगवान् जानता है कि उन्होंने उससे और कौन-सी अंतरंग चीजें करवाईं, लेकिन उसी बाइबल को नहीं छूने दिया।

शायद आप में से कुछ सोचते हैं कि त्वचा के रंग के अनुसार अपना समूह बनाना बुरी बात है, जितना हल्का रंग हो, उतना बेहतर—सामाजिक क्लबों, पड़ोस, चर्चों, समूहों, यहाँ तक कि अश्वेतों के स्कूलों में। लेकिन हम थोड़ी सी गरिमा को और कैसे बरकरार रख सकते हैं? हम दवा की दुकान में थूके जाने, बस स्टॉप पर कोहनी मारे जाने, पूरे फुटपाथ पर गोरों को जाने देने के लिए गटर में चलने, गोरे खरीदारों के लिए मुफ्त मिलने वाले पेपर बैग के लिए किराने की दुकान पर पैसे वसूले जाने से कैसे बच सकते हैं? अनेक नामों से पुकारे जाने की तो बात ही छोड़ दीजिए। मैंने उस सब के बारे में और भी बहुत कुछ के बारे में सुना। लेकिन मेरी माँ की त्वचा के रंग के कारण उन्हें हैट पहनने या डिपार्टमेंट स्टोर में महिलाओं के कमरे का उपयोग करने से नहीं रोका गया। मेरे पिता जूते की दुकान के सामने वाले हिस्से में जूते पहन सकते थे, पीछे के कमरे में नहीं। उनमें से कोई भी 'केवल अश्वेतों के लिए' आरक्षित फव्वारे से पानी नहीं पीता था, भले ही वे प्यास से मर रहे हों।

मुझे यह कहने से नफरत है, लेकिन प्रसूति वार्ड में शुरू से ही बच्ची लूला ऐन ने मुझे शर्मिंदा किया। जन्म के समय उसकी त्वचा अन्य शिशुओं की तरह पीली थी, यहाँ तक कि अफ्रीकी शिशुओं की भी, लेकिन उसमें तेजी से बदलाव आया। जब वह मेरी आँखों के ठीक सामने नीली-काली हो गई, तो मुझे लगा कि मैं पागल हो रही हूँ। मुझे पता है कि मैं एक मिनट के लिए पागल हो गई थी, क्योंकि केवल कुछ सेकेंड के लिए मैंने उसके चेहरे पर कंबल रखा और दबा दिया। लेकिन मैं ऐसा नहीं कर सकी, चाहे मैं कितना भी चाहती थी कि वह उस भयानक रंग के साथ पैदा नहीं हुई होती। मैंने उसे कहीं किसी अनाथालय में देने के बारे में भी सोचा। लेकिन मैं उन माताओं में से एक होने से डरती थी, जो

अपने बच्चों को चर्च की सीढ़ियों पर छोड़ देती हैं। हाल ही में मैंने जर्मनी में बर्फ की तरह सफेद-एक जोड़े के बारे में सुना, जिनका एक साँवले रंग का बच्चा था, जिसके बारे में कोई भी नहीं बता सका। मैंने एक सफेद एक अश्वेत जुड़वाँ बच्चों के बारे में भी सुना है। लेकिन मुझे नहीं पता कि यह सच है या नहीं। मैं बस इतना जानती हूँ कि मेरे लिए उसको स्तनपान करवाना किसी अश्वेत शिशु को अपना दूध पिलाने जैसा था। मैंने घर पहुँचते ही उसे बोतल से दूध पिलाना शुरू कर दिया था।

मेरा पति लुईस कुली है और जब उसने अजीब तरीके से व्यवहार किया तो उसने मुझे ऐसे देखा, जैसे मैं वास्तव में पागल हो गई थी और बच्ची को ऐसे देखा, मानो वह बृहस्पति ग्रह से आई हो। वह गाली देने वाला आदमी नहीं था, इसलिए जब उसने कहा, "हे भगवान्! यह क्या मुसीबत है?" मैं जान गई थी कि हम संकट में हैं। यही वह बात थी, जो मेरे और उसके बीच झगड़े का कारण बनी। इसने हमारी शादी को तहस-नहस कर दिया। हमने एक साथ तीन अच्छे साल बिताए थे, लेकिन जब वह पैदा हुई तो उसने मुझे दोषी ठहराया और लूला ऐन के साथ ऐसा व्यवहार किया, मानो वह कोई अजनबी हो, उससे भी बढ़कर, मानो कोई दुश्मन हो। उसने उसे कभी नहीं छुआ।

मैं उसे कभी यह विश्वास नहीं दिला सकी कि मेरा कभी भी किसी दूसरे आदमी के साथ संबंध नहीं रहा था। उसे यकीन था कि मैं झूठ बोल रही हूँ। हमने बहस की और तब तक बहस की, जब तक मैंने उसे यह नहीं बताया कि उसका कालापन उसके अपने परिवार से है, मेरे नहीं। तभी स्थिति बदतर हो गई, इतनी बुरी कि वह उठकर चला गया और मुझे रहने के लिए दूसरी सस्ती जगह ढूँढ़नी पड़ी। मुझसे जितना हो सकता, वह मैंने किया। जब मैंने मकान मालिकों के पास आवेदन किया तो मुझे इतना पता था कि मैं उसे अपने साथ नहीं ले जाऊँगी, इसलिए मैंने उसे देखभाल के लिए किशोर उम्र के चचेरे भाई के पास छोड़ दिया। वैसे भी मैं उसे ज्यादा बाहर नहीं ले जाती थी, क्योंकि जब मैं उसे बेबी कैरिज में लेकर चलती थी, तो लोग नीचे झुक जाते थे और कुछ अच्छा कहने के लिए अंदर झाँकते थे और फिर चौंक जाते थे या भौंहें सिकोड़ने से पहले पीछे हट जाते थे। उससे मन को ठेस लगती थी। अगर हमारी त्वचा का रंग उल्टा होता तो मैं बच्चों की देखभाल करने वाली बन सकती थी। अश्वेत महिला, यहाँ तक कि गोरे रंग वाली महिला के लिए शहर के किसी सभ्य हिस्से में किराए पर रहने की कोशिश करना बेहद कठिन था। नब्बे के दशक में, जब लूला ऐन का जन्म हुआ, तो कानून यह भेदभाव करने के खिलाफ था कि आप किसे किराए पर दे सकते हैं, लेकिन अधिकतर मकान मालिकों ने इस पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने मुझे बाहर रखने के लिए बहाने बनाए। लेकिन मैं मिस्टर लेह के साथ भाग्यशाली रही, हालाँकि मुझे पता है कि उसने अपने विज्ञापन से किराया सात डॉलर बढ़ा दिया था और अगर मैं पैसे देने में एक मिनट भी देर करती थी, तो उसे परेशानी होती थी।

मैंने उससे कहा कि वह मुझे 'माँ' या 'मम्मी' के बजाय 'स्वीटनेस' कहे। यह अधिक सुरक्षित था। उसके इतनी काली होने और मेरे हिसाब से बहुत मोटे होंठ होने तथा मुझे 'माँ' कहने से लोग भ्रमित हो जाते। इसके अलावा, उसकी आँखें अजीब रंग की हैं, नीली रंगत के साथ कौवे जैसी काली आँखें, उनमें भी कुछ जादुई-सा था।

पाँच वर्ष तक नेशनल बुक ट्रस्ट में संपादकीय सहायक, बीस वर्ष तक राज्यसभा सचिवालय में कार्य करने हुए सहायक निदेशक के पद से स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति। कविता संकलन 'सूनेपन से संघर्ष, कहानी संकलन 'वैक्यूम', आत्मकथात्मक उपन्यास 'जीने के लिए' पिताजी की जीवनी 'जीवन जो जिया' तथा रस्किन बांड और विश्वविख्यात लेखकों की 99 कहानियों का हिंदी अनुवाद प्रकाशित।

तो काफी समय तक हम दोनों ही थे और मुझे आपको यह बताने की जरूरत नहीं है कि परित्यक्त पत्नी होना कितना कठिन है। मुझे लगता है कि लुइस को हमें इस तरह छोड़ने के बाद थोड़ा बुरा लगा, क्योंकि कुछ महीनों बाद उसे पता चला कि मैं कहाँ हूँ और उसने मुझे महीने में एक बार पैसे भेजना शुरू कर दिया, हालाँकि मैंने उससे कभी नहीं माँगे और न ही पैसे पाने के लिए अदालत गई। उसके पचास डॉलर के मनीऑर्डर और अस्पताल में मेरी रात की नौकरी ने मुझे और लूला ऐन को वेलफेयर से दूर रखा। जो अच्छी बात थी। मैं चाहती हूँ कि वे इसे वेलफेयर कहना बंद कर दें और उस शब्द पर वापस लौट आएँ, जिसका इस्तेमाल उन्होंने तब किया था, जब मेरी माँ लड़की थी। तब इसे 'राहत' कहा गया था। बहुत बेहतर लगता है, जैसे यह आपके संघर्ष के समय बस एक अल्पकालिक राहत होती है। इसके अलावा वे वेलफेयर क्लर्क बहुत कमीने हैं। आखिरकार जब मुझे काम मिल गया और उनकी जरूरत नहीं रही, तो मैं उनसे कहीं अधिक पैसा कमा रही थी। मुझे लगता है कि उनकी कम तनख्वाह क्षुद्रता से भरी हुई थी, यही कारण है कि उन्होंने हमारे साथ भिखारियों जैसा व्यवहार किया। खासकर जब उन्होंने लूला ऐन की ओर देखा और फिर मेरी ओर देखा—जैसे मैं धोखा देने या कुछ और करने की कोशिश कर रही हूँ। हालात बेहतर हो गए, लेकिन मुझे अभी भी सावधान रहना पड़ता था। मैंने उसे कैसे पाला, इसके बारे में बहुत सावधानी बरती। मुझे सख्त, बहुत सख्त होना पड़ा। लूला ऐन को यह सीखने की जरूरत थी कि कैसे व्यवहार करना है, अपना सिर कैसे झुकाना है और परेशानी नहीं खड़ी करनी है। मुझे इसकी परवाह नहीं है कि वह कितनी बार अपना नाम बदलती है। उसका रंग ऐसा सलीब है, जिसे वह हमेशा पहने रहेगी। लेकिन यह मेरी गलती नहीं है। यह मेरी गलती नहीं है। बिल्कुल नहीं है।

ओह हाँ, मुझे कभी-कभी बुरा लगता है कि जब लूला ऐन छोटी थी तो मैंने उसके साथ कैसा व्यवहार किया था। लेकिन हमें समझना होगा, मुझे उसकी रक्षा करनी थी। वह दुनिया को नहीं जानती थी। उस त्वचा के साथ, सख्त या दुस्साहसी होने का कोई मतलब नहीं था, भले ही हम सही हों। ऐसी दुनिया में नहीं, जहाँ आपको स्कूल में जवाब देने या लड़ने के लिए किशोर हवालात में भेजा जा सकता है, ऐसी दुनिया में

जहाँ आप नौकरी पर रखे जाने वाले आखिरी व्यक्ति होंगे और नौकरी से निकाले जाने वाले पहले व्यक्ति होंगे। वह इस बारे में कुछ भी नहीं जानती थी कि उसकी काली त्वचा गोरे लोगों को कैसे डराएगी या उन्हें हँसाएगी और उसे बरगलाने की कोशिश करेगी। मैंने एक बार लूला ऐन से कम काली लड़की को देखा, जिसकी उम्र दस साल से अधिक नहीं होगी, गोरे लड़कों के एक समूह ने उसे ठोकर मार दी और जब उसने हाथापाई करने की कोशिश की तो दूसरे ने उसके पीछे से लात मारी और उसे पटककर गिरा दिया। वे लड़के पेट पकड़कर हँसते हुए उस पर झुक आए। उसके चले जाने के काफी देर बाद भी वे हँस रहे थे, खुद पर बहुत गर्व महसूस कर रहे थे। अगर मैं बस की खिड़की से नहीं देख रही होती तो मैंने उसकी मदद की होती, उसे उन गोरे बदमाशों से दूर खींच लिया होता। देखिए, अगर मैंने लूला ऐन को ठीक से प्रशिक्षित नहीं किया होता तो वह हमेशा सड़क पार करना और गोरे लड़कों से बचना नहीं जानती होती। लेकिन मैंने उसे जो सबक सिखाया, उसका फल मिला और अंत में उसने मुझे बहुत गौरवान्वित किया।

आपको यह जानना होगा कि मैं बुरी माँ नहीं थी, लेकिन हो सकता है कि मैंने अपनी इकलौती बच्ची के लिए कुछ दुखदायी चीजें की हों, क्योंकि मुझे उसकी रक्षा करनी थी। करनी पड़ी। यह सब त्वचा से जुड़े विशेषाधिकारों के कारण करनी पड़ी। पहले तो मैं यह जानने के लिए कि वह कौन थी, उस काले रंग के पार नहीं देख पाई और स्पष्ट रूप से उससे प्यार नहीं कर पाई। लेकिन मैं उससे प्यार करती हूँ। मैं वास्तव में करती हूँ। मुझे लगता है कि वह अब समझती है। मुझे ऐसा लगता है। पिछली दो बार मैंने उसे देखा था, वह बहुत आकर्षक थी। साहसी और आत्मविश्वासी लगी। हर बार जब वह मुझसे मिलने आती थी, मैं भूल जाती थी कि वह वास्तव में कितनी काली थी, क्योंकि वह सफेद कपड़ों में सुंदर लग रही थी।

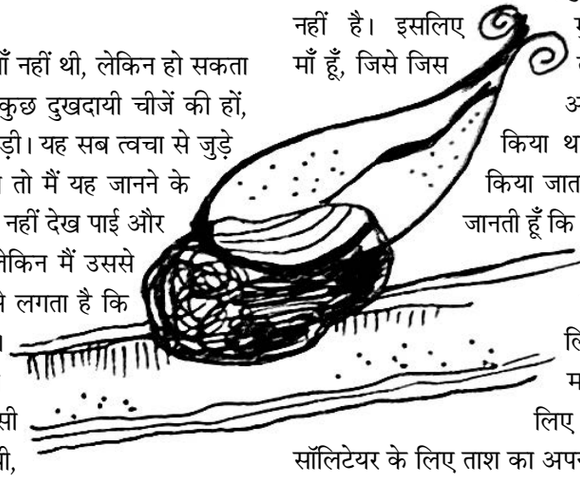

उसने एक सबक सिखाया, जो मुझे हमेशा से जानना चाहिए था। हम बच्चों के साथ जो करते हैं, वह मायने रखता है। और वे शायद इसे कभी नहीं भूलेंगे। जैसे ही उसके लिए संभव हुआ, उसने मुझे उस डरावने अपार्टमेंट में बिल्कुल अकेला छोड़ दिया। वह मुझसे जितना दूर हो सकती थी, हो गई, खुद को तैयार किया और कैलिफोर्निया में एक बड़ी नौकरी पा गई। वह अब न तो फोन करती है और न ही मिलने आती है। वह समय-समय पर मुझे पैसे और सामान भेजती रहती है, लेकिन न जाने कितने समय से मैंने उसे नहीं देखा है।

मुझे शहर के बाहर के बड़े, महँगे नर्सिंग होमों की तुलना में यह जगह विंस्टन हाउस पसंद है। मेरा नर्सिंग होम छोटा है, घर जैसा लगता है, सस्ता है, चौबीस घंटे नर्सें हैं और एक डॉक्टर है, जो सप्ताह में दो बार आता है। मैं केवल ६३ साल की हूँ, मैं सेवानिवृत्त नहीं हूँ, लेकिन मैं हड्डियों की कुछ गंभीर बीमारी के साथ आई हूँ, इसलिए अच्छी देखभाल महत्त्वपूर्ण है। बोरियत कमजोरी या दर्द से भी बदतर होती है, लेकिन नर्सें प्यारी हैं। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं नानी बनने वाली हूँ तो एक ने मेरे गाल पर चूम लिया। उसकी मुसकराहट और तारीफ किसी ऐसे व्यक्ति के लायक थी, जिसे ताज पहनाया जाने वाला था। मैंने उसे नीले कागज पर वह पत्र दिखाया, जो मुझे लूला ऐन से मिला था। ठीक है, उसने उस पर 'दुलहन' लिखकर हस्ताक्षर किया था, लेकिन मैंने उस पर कोई ध्यान नहीं दिया। उसकी बातों से वे गद्‌गद लग रही थीं। "स्वीटनेस, अंदाजा लगाओ, मैं यह खबर देकर कितनी खुश हूँ। मुझे बच्चा होने वाला है। मैं भी बहुत रोमांचित हूँ और आशा करती हूँ कि आप भी होंगी।" मेरा मानना है कि रोमांच बच्चे के बारे में है, उसके पिता के बारे में नहीं, क्योंकि वह उसका बिल्कुल भी जिक्र नहीं करती। मुझे आश्चर्य है कि क्या वह भी उसके जैसा ही काला है। यदि हाँ, तो उसे मेरी तरह चिंता करने की जरूरत नहीं है। जब मैं छोटी थी, तब से चीजें काफी बदल गई हैं। टी.वी. पर, फैशन पत्रिकाओं में, विज्ञापनों में, यहाँ तक कि फिल्मों में अभिनय में भी नीले-काले लोग छाए हुए हैं। लिफाफे पर वापसी का कोई पता नहीं है। इसलिए मुझे लगता है कि मैं अब भी एक बुरी माँ हूँ, जिसे जिस तरह मैंने अच्छे इरादे से और वास्तव में आवश्यक तरीके से उसका पालन-पोषण किया था, उसके लिए तब तक हमेशा दंडित किया जाता रहेगा है, जब तक मैं मर न जाऊँ। मैं जानती हूँ कि वह मुझसे नफरत करती है। हमारा रिश्ता उसके द्वारा मुझे पैसे भेजने तक सीमित है। मुझे कहना होगा कि मैं उन पैसों के लिए आभारी हूँ, क्योंकि मुझे कुछ अन्य मरीजों की तरह अतिरिक्त सुविधाओं के लिए भीख नहीं माँगनी पड़ती है। अगर मुझे सॉलिटेयर के लिए ताश का अपना नया डेक चाहिए, तो मैं इसे प्राप्त कर सकती हूँ और लाउंज में गंदे, घिसे-पिटे डेक के साथ खेलने की जरूरत नहीं है। मैं अपनी विशेष फेस क्रीम खरीद सकती हूँ। लेकिन मैं मूर्ख नहीं हूँ। मैं जानती हूँ कि वह जो पैसा भेजती है, वह दूर रहने और उसके पास जो थोड़ा-सा विवेक बचा है, उसे शांत करने का तरीका है।

यदि मैं चिड़चिड़ी, कृतघ्न लगती हूँ तो इसका कारण पछतावा है। वे सभी छोटी-छोटी चीजें, जो मैंने नहीं कीं या गलत कीं। मुझे याद है, जब उसका पहला मासिक धर्म हुआ था और मैंने कैसे प्रतिक्रिया दी थी। या जब वह लड़खड़ाती थी या कुछ गिराती थी तो मैं चिल्लाती थी। सच है। मैं वास्तव में परेशान थी, यहाँ तक कि जब वह पैदा हुई थी तो उसकी काली त्वचा देखकर भी मुझे घृणा हुई थी और सबसे पहले मैंने इसके बारे में सोचा था···नहीं। मुझे उन यादों को जल्दी से दूर भगाना होगा। कोई फायदा नहीं है। मैं जानती हूँ कि मैंने उन परिस्थितियों में उसके लिए सर्वोत्तम प्रयास किया। जब मेरा पति हमें छोड़कर चला गया था, तब लूला ऐन बोझ बन गई। एक भारी बोझ, लेकिन मैंने उसे अच्छी तरह से वहन किया।

हाँ, मैं उसके प्रति सख्त थी। बेशक मैं सख्त थी। जब वह बारह

की होकर तेरहवें साल में लगी, तब तक मुझे और भी सख्त होना पड़ा। वह जबान चलाने लगी थी, मैं जो पकाती थी, उसे खाने से इनकार कर देती थी, अपने बालों को सँवारती थी। मैं उसकी चोटी बनाती थी, तो जब वह स्कूल जाती थी, उसे खोल दिया करती थी। मैं उसे बिगड़ने नहीं दे सकती थी। मैं आपा खो बैठती थी और उसे उन नामों के बारे में चेतावनी दिया करती थी, जिनसे उसे बुलाया जाएगा। फिर भी, मेरे प्रशिक्षण का कुछ असर हुआ होगा। देखो, वह कैसी निकली? अच्छे कॅरियर वाली लड़की। क्या हम इससे इनकार कर सकते हैं?

अब वह गर्भवती है। अच्छा निर्णय है, लूला ऐन। अगर तुम सोचती हो कि माँ बनने का मतलब सिर्फ दुलारना, मोजे और डायपर पहनाना है तो तुम्हें बहुत सदमा लगेगा। बहुत बड़ा। तुम और तुम्हारे अनाम प्रेमी, पति, आकस्मिक मित्र, जो भी हो, कल्पना करें, ऊह! बच्चा! कितना प्यारा!

मेरी बात सुनो। तुम्हें यह पता चलने वाला है कि इसमें कितनी मेहनत लगती है, दुनिया कैसी है, यह कैसे काम करती है और जब हम माता-पिता बनते हैं तो यह कैसे बदल जाती है।

शुभकामनाएँ और भगवान् बच्चे की मदद करें।

मकान नं. १३७, सेक्टर-१,
आई.एम.टी. मानेसर,
गुरुग्राम-१२२०५१, (हरियाणा)
दूरभाष : ९८७१९४८४३०

ज्ञान-भक्ति के रहस्य

कविता

• व्यग्र पांडे

सुपरिचित कवि-लेखक। देश-विदेश के प्रमुख समाचार-पत्र व पत्रिकाओं में रचनाओं का अनवरत प्रकाशन। प्रमुख कृतियाँ हैं—'कौन कहता है', 'पांडे जी कहिन', 'मौन क्यूँ हो'।

आई सुबह

रात स्याह छोड़ गई परछाइयाँ,
कोहरे की शक्ल में आई सुबह।

ओस बूँदें यहाँ-वहाँ बिखरी पड़ीं
भीगी-भीगी सर्द रंगत लाई सुबह
हाथ से न हाथ दिख रहे पास के,
दूर की तो बात ही कुछ और है
आग का दामन समेटे हर कोई
अलाव की संगत ले आई सुबह।

सूरज दादा लगता देरी से उठे
भ्रमण-पथ सूना पड़ा है अभी,
या फिर वे दुबके पड़े रजाई में
संग साथी बदलकर लाई सुबह।

गंगा कृष्ण मुख की…

गंगा कृष्ण मुख की
औषधि हरेक दु:ख की
लोक-परलोक संगे
धारणा अद्‌भुत सुख की
डुबकी लगाता जो भी
ज्ञान-अमृत पीता
उसकी समस्त व्याधि
हरण करती गीता
प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष दोनों
जीवन छिपे हैं इसमें
ज्ञान-भक्ति के रहस्य
सबकुछ लिखे हैं इसमें
नमन कृष्ण वाणी
नमन कृष्ण चरणे
नमन भरत भूम्या
नमन गीता कष्टहरणे!

तुलसी

मैं सदियों से शोभा थी
तेरे आँगन की
तू सजाता/सँवारता/बचाता आया
दुनिया के हर संताप से
पर आज मैं
खर-पतवार समझ,
आँगन से हटा दी गई
जैसे जन्म से पहले
नष्ट कर दी जाती बिटिया
और बिसार दी गई 'वो रीति'
दकियानूसी समझ।
मेरा स्थान
पा लिया है अब
उन गंधहीन 'कैक्टसों' ने
जिन्हें तू पाल रहा है आज
सुपुत्रों की तरह,
जो दे नहीं सकते तुझे सुवास,
सिवाय काँटों के।
मैंने तुझे पहचान दी
तेरी बचाई जान
जिसे तू जानता
और जानता विज्ञान
पर हाय! इस बात को
तू कब समझेगा?
हटाकर कँटीले झाड़
मुझे आँगन में रोपेगा!
सच बता, क्या वे दिन आएँगे?
जब मैं आँगन में
तेरे लहलहाऊँगी
और एक बिटिया की तरह
तुझे सुखद अहसास कराऊँगी।

कर्मचारी कॉलोनी,
गंगापुर सिटी-३२२२०१ (राज.)
दूरभाष : ९५४९१६५५७९

हमारे जमाने के गुरुजी

● अयोध्या प्रसाद

एक बहुत पुराने बक्से में रखा अपना छठी क्लास का रिजल्ट देखकर अचानक से विद्यालय के दिन याद आ गए। पाँचवीं कक्षा पास करने के बाद हमारा दाखिला जिस स्कूल में हुआ, वहाँ कोई अध्यापिका नहीं थी, इसलिए जितने भी अध्यापक थे, वे पुरुष प्रधान शैली में बच्चों को पढ़ाते थे। वे विद्यार्थी को बच्चा नहीं, पिटाई का केंद्रबिंदु समझते थे। विद्यार्थियों की कोमल भावनाओं के स्तर पर जाकर उनको महसूस करने से उनका कोई लेना-देना नहीं होता था। उसका भी एक यथार्थवादी कारण था कि वे स्वयं उन्हीं परिस्थितियों से गुजरकर यहाँ तक पहुँचे थे।

गणित के अध्यापक पूरे विद्यालय में खूँखार विलेन के रूप में जाने जाते थे। उन्हें १७ और १९ के पहाड़े से अगाध प्रेम था। कक्षा में सवाल समझाते हुए अचानक ही किसी बच्चे से १७ का पहाड़ा सुनाने के लिए कहते। उनका पहाड़ा प्रेम इतना विकट था कि नहीं सुना पाने पर बेहिसाब हिंसक हो जाते थे और कुटाई शुरू कर देते थे। वे केवल १७ या १९ का ही पहाड़ा सुनते थे। ५, १० या ११ का तो बिल्कुल और कभी नहीं। इसलिए विद्यालय परिसर में वे जिस भी रास्ते से गुजरते, रास्ता अपने आप साफ हो जाता था।

हिंदी के अध्यापक आला दर्जे के विद्वान् थे। घर से झोले में अखबार लेकर आते और कक्षा में बैठकर पढ़ते। किसी एक बच्चे को हिंदी का पाठ पढ़ने को कहते। सब बच्चे अपनी किताबों में सिर गड़ाए किताब पढ़ रहे होते। पाठ पूरा होते ही न जाने उन्हें क्या सूझता कि बिना समझाए, बताए ही पाठ के अंत में दिए गए प्रश्न पूछना शुरू कर देते। बच्चे हड़बड़ा जाते तो अध्यापक के मेज पर पड़ी उनकी काले रंग की छड़ी अध्यापक के स्पर्श से फड़फड़ाने लगती। कभी भी अचानक से बालक के शब्द रूप की पंचमी विभक्ति के बहुवचन पूछ लेते या नदी का रूप सुनाने को कहते। इस प्रकार के अध्यापन से बच्चे हमेशा अलर्ट मोड में रहते थे। घर से ही अगले दिन का पाठ पढ़कर आते थे। पता नहीं कब गुरुजी का मूड घूम जाए। उस समय मंथली टेस्ट का प्रचलन नहीं था। विद्यालय परिसर में दैनिक टेस्ट कहीं भी किसी भी समय ले लिया जाता था। बच्चा स्कूल में पिटने के बाद भी मुसकराता हुआ ही घर जाता था, क्योंकि अगर वो घर में जाकर अध्यापक की शिकायत भी करता तो घर वाले ब्याज के रूप में अलग से कूटते थे।

सुपरिचित लेखक। मूलतः व्यंग्य विधा में लेखन! अनेक विधाओं में साहित्य सृजन। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में डेढ़ सौ से अधिक रचनाएँ प्रकाशित। भारत सरकार (युवा कार्यक्रम एवं खेल मंत्रालय) एन.एस.एस. क्षेत्रीय निदेशालय, लखनऊ से युवा अधिकारी के पद से सेवानिवृत्त। संप्रति स्वतंत्र लेखन।

अंग्रेजी के अध्यापक गोरे-चिट्टे थे। दिखने में बिल्कुल अंग्रेज जैसे लगते थे! हाथ में ताजी तोड़ी हुई अमलतास की डंडी लेकर ही हमेशा कक्षा में प्रवेश करते थे। वे डंडी वाले मास्टर के नाम से स्कूल में विख्यात थे। कक्षा में आते ही सबसे पीछे बैठने वाले बच्चों से अंग्रेजी के कठिन शब्दों की स्पेलिंग और उसके मायने सुनना शुरू कर देते, इसलिए अगली सीटों पर बैठने के लिए मारामारी रहती थी। अध्यापक का मानना था कि पढ़ाकू लड़के अगली सीट पर बैठते हैं और गधे टाइप के बच्चे पिछली सीटों पर बैठते है और मौका पाकर सो भी जाते हैं। इसलिए पिछली सीटों के बच्चे उनकी निगाह में विशेष कृपापात्री होते थे।

इतिहास और भूगोल के अध्यापक तो वैश्विक ज्ञान के भंडार थे। कौन सी नदी कहाँ से निकलकर कितने प्रदेशों से गुजरती हुई, कहाँ पर मिलती है। सतपुड़ा पर्वत-शृंखला कहाँ स्थित है। गंगा नदी का उद्गम कहाँ से है। पानीपत का युद्ध कब और किस किसके बीच हुआ था··· किस सुल्तान ने चमड़े के सिक्के चलवाए···जैसे प्रश्नों से जब कभी भी बच्चों का सामान्य ज्ञान मापते रहते थे और नहीं बता पाने पर अपने हाथों की खुजली शांत कर लिया करते थे।

विज्ञान के गुरुजी को खैनी खाने का जबरदस्त शौक था। वे घर से ही कई पुड़िया बनाकर लाते थे और मौके-बेमौके उसका सेवन करते रहते थे। वे क्या बोल रहे हैं, यह केवल उनके यहाँ कोचिंग पढ़ने वालों

को ही समझ में आता था, क्योंकि वहाँ उन्हें काफी समय तक उनका सान्निध्य प्राप्त होता था।

उन दिनों अध्यापकों के चिंता-बिंदु बच्चे ही हुआ करते थे। वाट्सऐप, फेसबुक या वीडियो गेम जैसा कुछ था ही नहीं, इसलिए उनका सारा ध्यान बच्चों का कॅरियर बनाने में ही लगा रहता था। इतना सब होने के बावजूद बच्चे गुरुजी को आवश्यकता से अधिक सम्मान देते थे और उनके असली नामों की जगह प्राय: सांकेतिक नामों, जैसे अंग्रेज, कुल्हड़, डंडा, जोंक, मरकहा बैल इत्यादि नामों से ज्यादा जानते थे।

पढ़ाई में कमजोर बच्चे घर से स्कूल के लिए नियत समय से निकलते और स्कूल छूटने के नियत समय पर घर पहुँच जाते। लेकिन अध्यापकों की पढ़ाई के प्रति जबरदस्त रुझान के कारण प्राय: स्कूल के अंदर नहीं आते, जिससे कक्षा में पढ़ने वाले बच्चों की अपेक्षा उनका सांसारिक ज्ञान ज्यादा समृद्ध था।। छमाही का रिजल्ट जब अभिभावक के हस्ताक्षर कराकर स्कूल में जमा करने की नौबत आती, तब ही उनके अध्ययन का कच्चा चिट्ठा पकड़ में आता था और तब वे अभिभावकों के निशाने पर आ जाते थे।

म.नं.-५५१ घ/५०६, नंदनगर,
(निकट जय प्रकाश नगर)
आलमबाग, लखनऊ-२२६००५
दूरभाष : ८३१८९२६७३८

कविता

भोर हो गई

● पद्मा मिश्रा

सुपरिचित रचनाकार। 'साँझ का सूरज', 'पठार की खुशबू' (कहानी-संग्रह) तथा 'सपनों का वातायन' (काव्य-संकलन) के अलावा स्थानीय और राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित। भोजपुरी पत्रिका 'अंगना' का संपादन।

: एक :

तारों की छैयाँ में जागे सपने मन के
चाँद थका सा, मद्धम-मद्धम
कहीं सो गया
तब रात ढली उम्मीदों वाली
दूर कहीं से टेर लगाती
दिप-दिप करती भोर किरण की,
धीरे-धीरे उतर रही है भोर सुहानी
स्वर्ण-किरण की ओढ़ चुनरिया,
शरमाती सी, बल खाती सी
मुसकानों के रथ पर बैठी,
नाच रही है खलिहानों में,
घर-आँगन में, चौबारों में
अलसाई-सी नींद भरी आँखें जागी हैं
निरख रहीं उत्सुक नयनों से
ये कौन आ गया, मन के आँगन
कैसा अद्भुत समाँ बँधा है
चित्रलिखित-सा मन जब तक
भ्रम के मोहक जाल तोड़ता
तभी सुनहली भोर हो गई।

: दो :

शीत से काँपती सहमी दीवारों पर
धूप के नन्हे-नन्हे टुकड़े
चितकबरे से
जैसे खेलते लुकाछिपी का खेल
कुछ शरारती बच्चे
झर रही हैं नीम की पत्तियाँ,
सर-सर-मर-मर
बदलते मौसम के गीत गाती धरती
करती है स्वागत नए सूरज का,
और भावनाओं का तपता सूरज
उतर रहा धरती के हरित अंचल पर
धीरे-धीरे-धीरे!
पिघलती, बिखरती धूप के मृगछौने,
बतिया रहे हैं जहाँ-तहाँ,
और थरथराती शीत गुम हो रही है
धरती कुछ और सँवरती
गुनगुनाती-सी, तप उठती है
युगों से वहीं खड़ी, प्रिय सूरज के
स्वागत में
युगों से, युगों तक।

एल.आई.जी-११४, रो हाऊस,
आदित्यपुर-२, जमशेदपुर-१३,
दूरभाष : ०९९५५६१४५८१

वर्ग पहेली (२१५)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ ३१ मार्च, २०२४ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते मई २०२४ के अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (२१३) का शुद्ध हल

१ न	२ व	३ व	४ र्ष	■	६ दे	७ वा	८ ल	९ य
१० ज	ह	न	■	■	११ हा	र	■	व
१२ रि	म	■	१३ प्र	१४ पा	त	■	१५ बि	क्री
या	■	१६ स्व	भा	व	■	१७ द	वा	त
■	१८ नि	जा	त	■	१९ भ	ला	ई	■
२० प	रा	त	■	२१ के	र	ल	■	२२ म
२३ र	ई	■	२४ स	त	त	■	२५ मि	स
वा	■	२६ क	ला	■	■	२७ व	त	न
२८ ह	म	द	म	■	ध	२९ न्य	वा	द

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **डॉ. पी.के. राधामनी**
धन्या, किलियानद रोड,
कोझीकोड-६७३००१ (केरल)
दूरभाष : ८५४७०६६८७८

२. **श्री हरिदेव सिंह धीमान्**
धीमान् गृहम् बरोली
डाकघर-दानावली, तह.-ननखरी
जिला-शिमला-१७२०२१ (हि.प्र.)
दूरभाष : ९८१७२१६३५५

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली २१३ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं— सर्वश्री बाल कुमार, शशि कुमार, विजयपाल सेहलंगिया, संतलाल रोहिल्ला, पवन कुमार अहरोदिया, अंकिता (महेंद्रगढ़), रुक्मणी संगल (पटियाला), प्रह्लाद गोस्वामी (कोटा), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), विनीता सहल (मुंबई), जेंसी.ए. (चैन्नई), संदीप लोढ़ा (उदयपुर), फकीरचंद ढुल (कैथल), अमरदेव आंगिरस (दड़लाघाट), आनंद कृष्ण (बेंगलुरु), रामफल पटेल (सिंगरौली), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), राजेंद्र कुमार, प्रदीप कुमार, सुभाष शर्मा, दिनकर सहल (दिल्ली)।

बाएँ से दाएँ—

१. आपको···मुबारक (२)
३. प्रेमचंद का एक उपन्यास (४)
६. बहुत बड़ी दावत (४)
७. दुष्ट, अधम, लुच्चा, नीच (२)
८. खून, रक्त (२)
१०. एक प्रसिद्ध संत गुरु (४)
१५. चालीस वस्तुओं का समाहार (३)
१६. बहस, तर्क (२,३)
१८. साक्षी, साखी (३)
१९. सोना, कमल, ताँबा, धतूरा (४)
२२. यहाँ की होली प्रसिद्ध है (२)
२४. पतला लसदार थूक (२)
२६. ऊँचा-नीचा, क्रम भंग, गोलमाल (४)
२८. फिदा होना (मुहा.) (२,२)
२९. दीमकों का भीटा, साँप का बिल (२)

ऊपर से नीचे—

१. छात्रावास (३)
२. घी, तेल में तर रुई या कपड़ा (२)
३. चचेरा, ममेरा, फुफेरा भाई (३)
४. भोजन की इच्छा, क्षुधा (२)
५. सुशील, प्यार-मोहब्बत वाला (५)
९. स्वर्ग की अप्सरा, परी (२)
११. शादी, दांपत्य सूत्र में बँधना (३)
१२. एक चर्म रोग (२)
१३. सूर्य, दिनकर (३)
१४. हलका ओढ़ना, पिछौरी (३)
१५. होली पर प्रयुक्त रंगीन सूखा चूर्ण (२,३)
१७. बायाँ, विरुद्ध, सुंदर, प्रिय (२)
२०. धैर्य, संतोष (२)
२१. नाटा, छोटे कद का, बौना (३)
२३. एक कुंडलाकार मिठाई (३)
२५. रटने वाला (२)
२७. अच्छा हो कि, किंतु (२)

वर्ग पहेली (२१४) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (२१५)

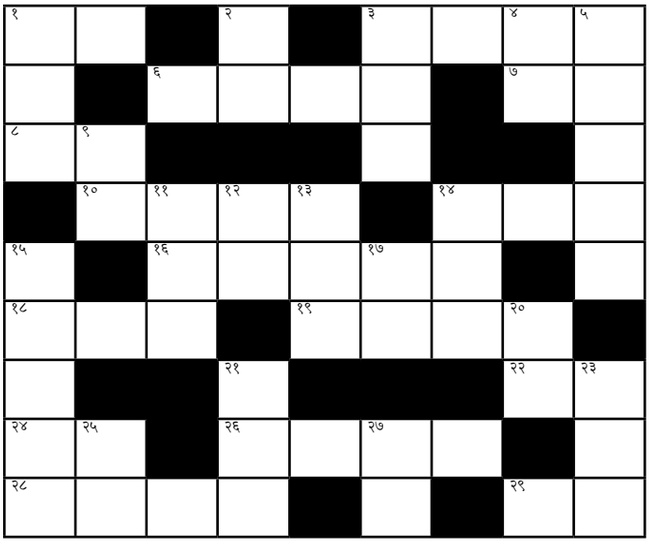

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

दूरभाष

● रश्मि गौड़

भरी गरमी में सुधा ने रसोई में ५ लीटर चाय बनाने के लिए गैस पर भगोना रखा ही था कि हॉल में फोन की घंटी बजी, वहाँ मामीजी ने फोन उठा लिया। सारा मजमा वहीं जमा था। भाभी का फोन था। कल अम्मा के गुजरने के बाद चचेरी बहन ने सब रिश्तेदारों को सूचित कर दिया था। परंतु अमेरिका में अपने भाई को सुधा ने ही फोन किया। भैया तो हमेशा की तरह मिले नहीं और भाभी से बात करनी पड़ी, वह फोन पर ऐसे रोने लगीं, जैसे सब से ज्यादा लगी-सगी वही हैं। दो साल में बमुश्किल तमाम आते और भाभी दो दिन मुँह दिखा कर मायके रवाना हो जातीं। इन दो दिनों में बच्चों का, भाभी और भैया का 'जेट लेग' ही चलता रहता, ज्यादा वक्त सोने में बीतता। ताजा होते ही फौरन बच्चों के साथ मायके की ओर चल देती। भैया चार दिन रहना चाहते, तो दिन-रात उनकी ससुराल से फोन आने लगते और वे भी चले जाते। माँ और सुधा मुँह टापते रह जाते। सुधा कितने यत्नों से घर की सफाई करती, माँ मटर की कचौड़ी, गाजर का हलवा बनाकर रखती कि अपने पोतों को, बच्चों को खिलाएगी, परंतु फ्रिज में रखा हलवा और कचौड़ी उनके जाने के बाद कई दिन तक मुँह चिढ़ाता रहता।

धीरे-धीरे उनका आना भी कम होता जा रहा था। अब इंतजार भी न रहता, आएँ तो ठीक, न आएँ तो भी ठीक। माँ के हाथ-पैर थकने लगे थे। पापा को गुजरे २४ साल हो चुके थे, उनके जाने के बाद सुधा ने पूरे घर की जिम्मेदारी अपने कंधों पर ले ली थी। २७ वर्ष की आयु में लैक्चरर के पद पर तैनात हुई थी। नौ बजे जाकर तीन बजे तक घर आती। परंतु आजकल के बच्चों को पढ़ाना आसान नहीं था, घर पर पूरी स्टडी करके जाना पड़ता। न जाने क्या पूछ लें और जब छोटी उम्र के लैक्चरर होते हैं तो विद्यार्थी कुछ ज्यादा ही उच्छृंखल हो जाते हैं।

कई सारे खट्टे-मीठे अनुभव के साथ सुधा आगे बढ़ती रही। कुछ साथी लैक्चरर ने अपनी ओर से शादी का प्रस्ताव भी रखा, परंतु अम्मा की सोचकर उसने न कर दी। अम्मा वैसे तो घर के सारे काम-काज सँभाल लेतीं, परंतु बैंक और शेयर आदि के बारे में कुछ नहीं जानती थीं।

इक्यावन वर्षीय सुधा का जीवन अम्मा के सहारे चैन से कट रहा था। अम्मा का भी कौन था? बेटी के निहोरे करती रहतीं। कभी-कभी उनकी ओवर प्रोटेक्टिव नेचर के कारण सुधा ही खीज जाती। ५ मिनट की भी देरी हो जाए तो १० बार दरवाजा खोलकर देखतीं और बाहर खड़ी हो जातीं। अब तो मोबाइल का जमाना आ गया था तो पता नहीं कितने ही कॉल कर डालती थीं। वैसे तो पापा के सामने वे काफी तेज-तर्रार और मुखर थीं, परंतु उनके जाने के बाद शायद असुरक्षा की भावना घर कर गई थी तो वह बहुत विनम्र और लगभग गिड़गिड़ाकर बात करने लगी थीं। इसलिए सुधा उन्हें कुछ न कहती, भरसक कोशिश करती कि वे खुश रहें।

सुपरिचित लेखिका। कई कहानियाँ पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। दिल्ली के पाठ्यक्रम में बाल कहानियाँ 'रैपिड रीडर' में शामिल। दो कहानी-संग्रह 'आधी दुनिया' तथा 'उस पार' प्रकाशित।

उधर सारा कुनबा फोन पर अमेरिका में बसी भाभी से बतिया रहा था। भाभी पूरा नाटक करते हुए अपने आने में असमर्थता जाहिर कर रही थी, रो-धोकर बता रही थी कि छुट्टी मिलना कितना मुश्किल है, बच्चे बड़े दु:खी हैं, पर करें क्या, परदेश का मामला है। पापा के समय भी वे नहीं आई थीं, बस फोन पर बात करके सब को धन्य कर दिया था और उनके कर्तव्य की इतिश्री हो गई थी। भैया ने जरूर तेरहवीं के दिन आकर अपना फर्ज अदा कर दिया था। कितने काम थे बैंक के, प्रॉपर्टी के, शेयर्स के। यहाँ तक कि पापा का डेथ सर्टिफिकेट भी नगर निगम से पड़ोसी ही लेकर आए। चार दिन बाद जाते समय कह गए कि मेरा किसी भी प्रॉपर्टी पर कोई क्लेम नहीं बनता, जो तू चाहे दे देना या मत देना, यह भी क्या बात हुई अब सुधा दे तो प्रश्न खड़ा होगा कि कम दिया और ज्यादा दे दिया तो लगेगा कुछ छुपा रही है। या तो साफ कहते कि तू ही उनकी असली उत्तराधिकारी है, मैं कुछ नहीं लूँगा, अब तो अम्मा भी नहीं रही, कैसे करेगी सब, बिल्कुल अकेली।

तभी मामीजी फोन लेकर आईं और बोलीं, "सुमी, भाभी बोल रही है, बात कर ले।" सुधा ने फोन लिया, वहाँ से भाभी वही रोना-गाना करने लगी, सुधा सुनती रही, फिर बड़ी ठंडी आवाज में बोली, "आप लोग आ तो पाएँगे नहीं, इसलिए मैंने सोचा है कि अम्मा की आत्मा की शांति के लिए चौथे दिन शांति-पाठ करवा लूँ।"

"क्या कह रही हो सुधा, ब्राह्मणों को भोजन नहीं कराओगी?" वहाँ से सुमी ने चकित होते हुए रोना-धोना भूलकर पूछा, "क्या करना है भाभी, अम्मा को भी यह सब ढकोसला ही लगता था। वह तो फिर भी भाग्यवान थी कि कोई उनकी आत्मा की शांति के लिए पाठ करा रहा है। मेरी आत्मा तो अब भी अशांत है और मरने के बाद भी अशांत ही रहेगी, कोई आगे न पीछे।" दूसरी ओर सन्नाटा पसर गया, भाभी के मुँह से बोल न निकला और सुधा ने फोन रख दिया।

डी ३०३ आम्रपाली, ईडन पार्क,
ब्लॉक एस-२७, नोएडा-३०१३०१
दूरभाष : ९८६८८०१६१२

आना वसंत का

• हुसैनी बोहरा

ऋतुराज
पत्तों के झड़ने के साथ ही
फूटने लगी हैं कोंपलें
चटखने लगी हैं कलियाँ
कोयल की पीहू-पीहू
बुला रही प्रिय वसंत को
आओ ऋतुराज
स्वागत में तुम्हारे
हो रहा उत्सव
देखो—
धरा ने धरा पीत आवरण
फैल रही रंगीन फूलों की महक
कर रही मदहोश
नवपल्लवों, किसलयों ने
सजा ली वंदनवार
ये फागुनी हवाएँ
लहरों से बहती हुई
छू रही तन-मन को
स्वर्ण-रश्मियों से दमकने लगा
कण-कण
पीत पत्तों को देने के लिए धन्यवाद
कृतकृत्य होने के लिए
शाखाएँ झुक गईं
हे पतझड़!
बिना तुम्हारे
कैसे संभव हो पाता
आना वसंत का
तुम्हारे ही निमंत्रण पर
आया है वसंत!

ऋतु के यौवन
हे मनमोहक
मादकता के तुम पलछिन
जग उठा वन-उपवन
हँस रहा धरा का कन-कन
महक उठे सब घर-आँगन
चहुँओर है मद का उत्सव
उल्लसित प्रफुल्लित जन का मन
गूँज उठा जग में पिक रव
नव किसलय से शाखाएँ सज्जित
मुक्त हुए कलिका के उर
रंग-रंग के सुमन हुए मुकलित
आ गई ऋतु सँवरकर
हे चित्ताकर्ष, हे मनमोहक!
हे मदमादन, हे गंधमादन
ऋतु के यौवन!

सुपरिचित रचनाकार। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ प्रकाशित तथा आकाशवाणी से वार्त्ता, कहानी, कविता आदि प्रसारित। राजस्थान सरकार का सांत्वना पुरस्कार प्राप्त। संप्रति भूपाल नोबल्स विश्वविद्यालय, उदयपुर में सहायक आचार्य।

ऋतु परिवर्तन
हो रहा ऋतु परिवर्तन
रूप सँवर रहा
धरा ने पहन लिया पीतांबर
हवा की लहरों से
तरंगित हो रहा
उठाता हुआ मानस में
नवोन्मेष उर्मियों को
कोकिल-रव घोल रहा
मद वातावरण में
सूर्य-रश्मियों से
धरती का कण-कण
चमक उठा कनक-सा
फूट पड़ा स्रोत आनंद का
खिला मन कुसुमों-सा
स्वागतातुर अभिनंदन को
कुसुमाकर का।

टी २, फोर्थ फ्लोर, पैनोरेमिक अपार्टमेंट,
विद्या विहार, देवाली
उदयपुर-३१३००१ (राज.)
दूरभाष : ९४१३७७१९५९

कौआ और बिल्ली

• टीकेश्वर सिन्हा 'गब्दीवाला'

बहुत पुरानी बात है। एक वनांचल गाँव था पंडेल। गाँव से ही बिल्कुल लगा हुआ एक बहुत बड़ा बबूल का पेड़ था। उस बबूल पेड़ पर एक कौआ रहता था। गाँव से खाने की जो भी वस्तु मिलती, पेड़ पर लाता और आराम से बैठकर खाता था। दिन भर गाँव, नदी-नाले और खेत-खार में घूमता। शाम होते ही पेड़ पर लौट आता। इस तरह कौए का जीवन बड़े मजे से बीत रहा था।

एक दिन सुबह बबूल के पेड़ के नीचे एक बिल्ली आई। देखा, कौआ मस्त-बढ़िया अंगाकर रोटी का मजा ले रहा है। बिल्ली के मुँह में पानी आ गया। कौए के पास जाकर बोला—"म्याऊँ···म्याऊँ···! कौआ भाई! क्या बात है, कहाँ से तुम्हें गर्म रोटी मिल गई इत्ती सुबह।

"गाँव से लाया है मैंने इसे। बहुत अच्छी लगी है जी।" कौए ने बिल्ली को निहारते हुए कहा।

"तुम तो अकेले ही खा रहे हो। यह अच्छी बात नहीं है, कौआ भाई।" बिल्ली मस्का मारते हुए बोली।

"ठीक है भाई, तुम भी खाओ।" कौए ने रोटी का एक टुकड़ा बिल्ली के लिए नीचे गिरा दिया। इस तरह कौआ रोज चोंच में कुछ न कुछ दबा कर लाता और पेड़ पर बैठकर खाता था। बिल्ली भी ऐन वक्त पर आ जाती थी। फिर उसे भी मुफ्त में खाने के लिए मिल जाता था। यह सब चलता रहा। इस तरह दोनों में दोस्ती हो गई।

एक शाम की बात है। कौआ रोटी का एक बड़ा टुकड़ा लेकर पेड़ पर आया। रोटी बड़ी स्वादिष्ट थी; घी जो चुपड़ा हुआ था उसमें। मन भर खाया। बचे हुए टुकड़े को पेड़ पर एक कोटरनुमा जगह में छुपा दिया सुबह के लिए। वैसे भी कौए में यह प्रवृत्ति होती ही है। कुछ समय के बाद बिल्ली आई। आते ही फरमाया—"आज तो एक घर जी भरकर दूध पीया। मजा आ गया। क्या स्वाद था मित्र! मन तो कर रहा था कि तुम्हारे लिए भी ले आऊँ; पर लाते नहीं बना।" तपाक से कौआ बोला—"कोई बात नहीं मित्र! एकाध दिन मैं खुद तुम्हारे साथ चलूँगा रोटी पकड़कर; फिर हम दोनों मस्त दूध-रोटी खाएँगे। अभी गाँव में जाओ मित्र! एकाध घर आराम करना। रात हो रही है।

"ओम्···! ठीक है भाई।" डकार मारते हुए बिल्ली गाँव की ओर बस लौटने ही वाली थी कि उसे घी की खुशबू आई। वह ठिठक गई। बोली—"मित्र! घी लगी रोटी रखे हो क्या, बड़ी खुशबू आ रही है?"

सुपरिचित लेखक। अब तक इनके तीन गद्य संकलन और तीन काव्य-संकलन प्रकाशित हो चुके है। देश-विदेश के विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में रचनाएँ निरंतर प्रकाशित। संप्रति व्याख्याता (अंग्रेजी)।

कौए ने कहा—"हाँ··हाँ··! मैंने खा ली है। पेट भर गया। एक टुकड़ा कल सुबह के लिए रखी है। कल सुबह आना मित्र, दोनों बाँटकर खाएँगे।"

कौए की घी वाली रोटी की बात सुनते ही बिल्ली का मन ललचा गया। घी की खुशबू उसकी नाक को छू रही थी। "अच्छा, चलता हूँ मित्र।" न चाहते हुए बिल्ली गाँव की ओर निकल पड़ी।

बिल्ली गाँव में आ तो गई, पर उसका मन घी वाली रोटी में ही लगा था। तीन-चार घंटे बीत गए। बिल्ली को नींद नहीं आ रही थी। बस करवटें बदल रही थी। उसका ध्यान बार-बार रोटी की ओर ही जा रहा था। अब तो नहीं रहा गया। वह तुरंत बबूल के पेड़ की ओर चल पड़ी।

बहुत रात हो गई थी। बिल्ली ने देखा कि कौआ चुपचाप सो रहा है। अब तो बिल्ली की नीयत और बिगड़ने में देर न लगी। सोचने लगी कि अच्छा मौका मिला है; सोने पे सुहागा। कौआ मुझे अँधेरे में नहीं पाएगा। रोटी को पकड़ूँगी और चलती बनूँगी। फिर किसी के घर जाकर बढ़िया आराम से बैठकर खाऊँगी। बिल्ली पेड़ पर चढ़ गई। रोटी की ओर लपकी। अचानक डाली हिल गई। मामला बिगड़ गया के मतलब कौए की नींद खुल गई। कौए ने खतरे को भाँप गया। फिर काँव-काँव चिल्लाना शुरू हो गया उसका। उसने बिल्ली को पहचान भी लिया। बिल्ली तुरंत रोटी को पकड़कर अँधेरे का फायदा उठाते हुए पेड़ से चंपत हो गई; उसे लगा कि कौआ उसे नहीं पहचान पाया।

दूसरे दिन सुबह बिल्ली पेड़ के पर फिर आई। बिल्ली को देखते ही

कौए का गुस्सा एड़ी से माथे पर चढ़ गया। "काँव···काँव···तू भाग यहाँ से···नहीं तो मार डालूँगा।" कौए की त्योरी चढ़ी हुई थी।

"क्या बात है मित्र? आखिर बात क्या है?" बिल्ली अनजान-सी बनती हुई बोली।

"तुम मित्रता के लायक नहीं हो। तुम दोस्ती के नाम पर कलंक हो। मित्र के साथ ही धोखा।" कौए ने बिल्ली पर एक झपट्टा मारा।

बिल्ली ने बहुत देर तक इधर-उधर की बातें करते हुए अपनी गलती पर परदे डालने की बहुत कोशिश की, पर कामयाब न हो पाई। अब उसने जान बचाकर वहाँ से भाग जाना ही उचित समझा। बिल्ली दुम दबाकर भागने लगी। आगे-आगे बिल्ली, पीछे-पीछे कौआ। भागते-भागते बिल्ली एक घर में जाकर छुप गई। कौआ गुस्से से लबालब था। उसने बिल्ली को उस दिन तो क्या, कभी माफ नहीं किया। तभी तो आज तक कौआ बिल्ली का पीछा कर ही रहा है और इसीलिए आज भी कौआ काँव-काँव करता हुआ बिल्ली को दौड़ाता है। बिल्ली को भागना ही पड़ता है।

शासकीय उच्चतर माध्यमिक विद्यालय, घोटिया
जिला-बालोद (छत्तीसगढ़)
दूरभाष : ९७५३२६९२८२

मैं राम मंदिर हूँ

कविता

● रेणु राजवंशी गुप्ता

सुपरिचित लेखिका। अभी तक दो कविता संग्रह, तीन कहानी-संग्रह, उपन्यास तथा स्तन कैंसर पर एक शोध पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित। साहित्य के अतिरिक्त समाज-सेवा में पूरी तरह संलग्न।

मैं राम मंदिर हूँ,
मेरी एक कहानी है।
राम में मंदिर है,
मंदिर में राम हैं,
राम का मंदिर है।
जन-जन में राम हैं,
कण-कण में मंदिर है,
शाश्वत राम का वैश्विक मंदिर है।
मैं राम मंदिर हूँ,
मेरी एक कहानी है।

मेरे रज-कण पर बाल राम के चरण पड़े,
उनकी बाल लीलाओं के कितने यहाँ सुमन खिले।
मैंने देखी है प्रभु की बाल-मुसकान,
उनके चंद्र-मुख का तेज कांतिमान।
चारों भाइयों का खेल परिहास देखा,
माता-पिता का मान मनुहार देखा।
मैंही तो हूँ प्रभु राम के अवतरण का प्रथम साक्ष्य,
उनके धरा पर होने का प्रथम प्रमाण।
मैं राम मंदिर हूँ,
मेरी एक कहानी है।

अनगिनित वर्षों की है कहानी मेरी,
पुरानी बात नहीं करता,
पाँच सौ वर्षों की कथा सुनानी है।
मैं कितने उतर चढ़ाव देखे,
कितने शीत ज्वार देखे,
मेरी संतान अवश हुई,
समय की पकड़ अबल हुई

लुटेरों ने मुझ पर वार किए,
मेरे स्तंभों पर कितने प्रहार किए।
शीर्ष पर मेरे मलबा डाला,
दीवारों को भी हिला डाला।
परंतु नींव को मेरी न डिगा पाए,
यह तो रामजी की जननी-माटी है,
मैं राम मंदिर हूँ,
मेरी एक कहानी है।

मैं मूक चहुँ ओर देखता रहा,
परायों से अधिक अपनों की कायरता सहता रहा।
समय के बदलने की प्रतीक्षा में रत रहा,
जाग रहे स्वाभिमान को खोजता रहा।
कार सेवकों के आने की बाट मुझे जोहनी थी,
कोठारी बंधुओं की कुरबानी मुझे देखनी थी।
आज खड़ा हूँ मैं गौरवान्वित मुख से,
अपनों पर आत्माभिमान है।
मैं राम मंदिर हूँ,
मेरी एक कहानी है।

6070 Eaglet Drive, West Chester
OH 45069 USA

पाठकों की प्रतिक्रियाएँ

सहित्य अमृत के 'श्रीराम विशेषांक' ने वातावरण पूर्णत: राममय कर दिया। माधुर्य, ऐश्वर्य के स्वामी श्रीकृष्ण का कृपा भाजन बनना है तो पहले राम का अवतार चाहिए हमारे हृदय में। मर्यादा, सदाचार, बंधु प्रेम, गुरु-मात-पिता आज्ञा पालन आदि राम के गुण अंगीकार किए हों, यानी राम का अनुचर बनना होगा हमें। 'स्व', परिवार, समाज, देश, प्रकृति, सबके कल्याण के लिए मन, हृदय में राम को धारण करना एक मात्र उपाय है। यह सब बिल्कुल संभव है 'श्रीरामचरितमानस' का श्रद्धा-विश्वास के साथ नित्य अध्ययन द्वारा। आलेखों को पढ़कर आनंद आया। राम में रमने का सुयोग बना। वैसे भी 'साहित्य अमृत' से मिलने के बाद दिनचर्या और निस्संदेह जीवन भी कई आयामों से समृद्धशाली हुआ है मेरा। सजा दो घर को उत्सव से···अवध में राम आए हैं···मेरे सरकार आए हैं···सभी के सुंदर और महत्त्व के प्रत्यक्ष, परोक्ष, भावात्मक प्रयास को हमारा नैनन नीर कोटिश: नमन!

—विनीता 'देवहूति', वाराणसी (उ.प्र.)

'श्रीराम विशेषांक' बहुत ही आकर्षक, हृदयस्पर्शी, गंभीर, अज्ञात जानकारी से परिपूर्ण, संग्रहणीय, स्मरणीय अंक है, जो कि हर पाठक के लिए पथ प्रशस्त करने वाला बन पड़ा है। अंक में मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम के जीवन की विभिन्न प्रकार की जानकारियाँ देकर रचनाकारों ने पाठकों को उपकृत किया है, जो अत्यंत महत्त्वपूर्ण एवं श्लाघनीय है। श्रीराम के विभिन्न गुणों पर लिखित एक से बढ़कर एक रचनाएँ नवीन जानकारियों से परिपूर्ण हैं। इस दुर्लभ ग्रंथ को तैयार करने के लिए संपादकीय टीम एवं समस्त रचनाकारों के सहयोग के प्रति अंतरतल से बहुत-बहुत आभार, साधुवाद।

—कुलभूषण सोनी, दिल्ली

'साहित्य अमृत' का 'श्रीराम विशेषांक' ऐतिहासिक महत्ता लिये सभी प्रबुद्ध पाठकों को वास्तव में एक विशेष चिंतन की भरपूर सामग्री परिपूर्ण है। आचार्य विद्यानिवास मिश्र का महत्त्वपूर्ण ललित निबंध 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' राम के रामत्व की मार्मिक झाँकी प्रस्तुत करता हुआ राममय बना देता है। श्रीअरविंद का लेख 'सृष्टि-लीला-विकास में श्रीराम' और 'भगवान् श्रीरामचंद्र : सर्वमान्य आदर्श' (माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर) अंक को अपनी उपादेयता से गौरवान्वित करते हैं। इसी क्रम में 'रामायण के आदर्श : राम, लक्ष्मण और हनुमान' (महामना मदनमोहन मालवीय) वैशिष्ट्य लिये हुए है। राम भारतीय संस्कृति और भारतीय मानस के एक आदर्श हैं। राम के मानवीय आदर्शों से संपन्न व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने के लिए प्रतिश्रुत है रामायण। उनका अवतार ही 'विनाशाय च दुष्कृताम्' हुआ था। चिंतनपरक लेख 'राष्ट्रीय स्वाभिमान के प्रतीक भगवान् श्रीराम' में सावरकरजी उनके राष्ट्रीयबोध को बड़ी बारीक से विवेचित करते हैं। प्रतिस्मृति के रूप में महाकवि निराला की 'राम की शक्ति-पूजा' की प्रस्तुति निस्संदेह एक उत्कृष्ट प्रस्तुति है। राम की शक्ति-पूजा का मूल आधार यह पौराणिक आख्यान है। महाकवि मैथिलीशरण गुप्त कृत 'साकेत : प्रथम सर्ग' अयोध्या के ऐतिहासिक प्रकरण की उपस्थिति को पौराणिक प्रसंग में दर्ज कराते हुए अयोध्या से साक्षात्कार कराता है।

विशेषांक में अयोध्या के माहात्म्य को प्रतिष्ठित करते अन्य निबंधों में वाल्मीकि के राम शरीरधारी धर्म हैं (वासुदेव शरण अग्रवाल), असमिया साहित्य में श्रीराम (कुबेरनाथ राय), संघर्ष की ओर (नरेंद्र कोहली) और राम की मर्यादा (राजेंद्र अरुण) नई दृष्टि-दिशा लिये गंभीर प्रकृति के हैं। अंक के अन्य महत्त्वपूर्ण आलेखों में स्वामी अवधेशानंद गिरि, सूर्यप्रसाद दीक्षित, अरुण गोविल, स्वामी गोविंददेव गिरि, कुमार विश्वास, गिरीश्वर मिश्र, सदानंद प्रसाद गुप्त, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, यतींद्र मिश्र, नीरजा माधव, श्रीधर द्विवेदी, शकुंतला कालरा, विद्या विंदु सिंह और फादर कामिल बुल्के आदि अपनी विशेष प्रासंगिकता रखते हैं। 'संस्कृत साहित्य में राम और रामकथा' शास्त्री कौशलेंद्रदास का आलेख अपनी अलग अर्थवत्ता रखता है। संस्कृत साहित्य में रचित रामकथा-कृतियों का विस्तृत विवेचनज्ञानवर्धक होने के साथ-साथ विलुप्तप्राय ग्रंथों के संदर्भ भी इस अंक के माध्यम से अर्थवान हो चुके हैं।

इस परिप्रेक्ष्य में विशेषांक इस दृष्टि से भी अपना अतिरिक्त अर्थ-अभिप्राय लिये है कि इसमें जिन आलेखों को संकलित किया गया है, वे रामकथा के नए-नए प्रसंगों-संदर्भों की जानकारी देते हैं। यही नहीं, बीसवीं शती में बांग्ला-साहित्य में 'सीताराम बनवास' और 'मेघनाद वध' कृतियाँ भी प्रसंगत: उल्लेख्य हैं। लेकिन विशेषांक में प्रकाशित विद्वान् लेखकों के अलावा प्रतिष्ठित विश्रुत लेखकों ने अपनी अमूल्य रचनाओं से अंक की पठनीयता में और अधिक श्रीवृद्धि की है। यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण न होगा कि रामायण और रामकथा के परिप्रेक्ष्य में यह विशेषांक एक ऐतिहासिक दस्तावेज के रूप में अपनी असंदिग्ध महत्ता स्थापित करेगा।

—डॉ. राहुल, नई दिल्ली

विशेषांकों की समृद्ध परंपरा में 'साहित्य अमृत' का यह 'श्रीराम विशेषांक' हिंदी भाषा-वैभव, साहित्य-सौरभ, संस्कृति-संवाद और भारत-राग से संपन्न है। श्रीराम गौरवशाली भारत के विराट् सांस्कृतिक प्रतिमान हैं। हर अंक में ज्ञान और संवेदना को सहेजकर 'साहित्य अमृत' अपने विशेषांक में उत्कर्ष पर होता है। अवलोकन करने पर विचारों के आलोक में स्थायी और शाश्वत का सुख तथा आनंद मिलता है। संपादकीय 'मन मंदिर में राम' प्रेरक और उद्बोधक है। ऋषि परंपरा के चिंतक लेखक विद्यानिवास मिश्र का सांस्कृतिक संवेदन-विमर्श 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' आह्लादक स्वाद से भरपूर कर देता है। श्रीअरविंद, माधवराव सदाशिवराव गोलवलकर, महामना मदन मोहन मालवीय, स्वातंत्र्यवीर विनायक दामोदर सावरकर, वासुदेव शरण अग्रवाल, कुबेरनाथ राय, नरेंद्र कोहली, राजेंद्र अरुण, स्वामी अवधेशानंद गिरि, सूर्यप्रसाद दीक्षित, स्वामी गोविंद देवगिरि, गिरीश्वर मिश्र, साध्वी ऋतंभरा, आशुतोष राना, नर्मदा प्रसाद उपाध्याय, कुमार विश्वास जैसे महान् मनीषी लेखकों और विचारकों के आलेख श्रीराम के विराट् व्यक्तित्व को अलग-अलग ढंग से खोलते हैं। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त और महाप्राण सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' की कविताएँ राम के विराट् व्यक्तित्व-कृतित्व का उदात्त चित्रण प्रस्तुत करती हैं, जिससे राम हमारे समक्ष जीवंत हो उठते हैं। अंक की हर रचना महत्त्वपूर्ण और विशेष है। भावपूर्ण और सात्त्विक आवरण मन को पवित्र तथा हृदय को रसमय कर देता है। राम के शौर्य, पराक्रम, त्याग और सात्त्विक जीवन को न केवल भारतीय बल्कि वैश्विक मानवीय आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित करनेवाले इस विशेषांक का शब्द-शब्द पठनीय, अक्षर-अक्षर संग्रहणीय और वाक्य-वाक्य अनुकरणीय

है। साहित्य-संस्कृति के संकल्पों की संवाहिका यह पत्रिका जन-मन को स्पंदित और आलोकित करने में सक्षम तथा समर्थ है। आत्म-उन्नयन और चेतना विस्तार के लिए 'श्रीराम विशेषांक' सचमुच साहित्य का अमृत ही है। संपादक, लेखक और प्रकाशक को हृदय से साधुवाद।

—डॉ. संजय पंकज, मुजफ्फरपुर (बिहार)

'साहित्य अमृत' मुझे नियमित प्राप्त हो रही है। दिसंबर २०२३ अंक में प्रकाशित सामग्री सदैव की तरह रुचिकर, प्रभावी और शिक्षाप्रद है। आपके सार्थक श्रम को नमन। अंक में मेरे आलेख 'रवांई क्षेत्र के तांदी गीत' को भी स्थान मिला है, यह मेरा सौभाग्य है। आप लोक को लेकर पत्रिका में नियमित सामग्री देते रहे हैं, यह लोक के प्रति आपकी गहरी रुचि का ही प्रतिफल है।

—महावीर रवाल्टा, उत्तरकाशी (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का दिसंबर अंक मिला। संपादकीय में, तीसरे पहर की धूप बहुत मार्मिक है, यह जीवन का कटु सत्य है। सुषमा मुनींद्रजी ने 'विश्वासघात' में कैकेयी की पीड़ा को बहुत भावपूर्ण, मार्मिक शब्दों में उकेरा है। 'अपनी अपनी ढपली' कहानी में परिवार के विघटन के बाद भी मुश्किल समय में साथ खड़े होना प्रभावित करता है। डॉ. अनिल समोताजी का शब्द चयन सुंदर है और आज की रचनाओं में कम ही मिलता है। अन्य सभी रचनाएँ अच्छी लगीं, रिश्ते, काटों मे महका गुलाब, बेटी का सासरा में समंदर, विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। विकास के साथ विस्थापन का दंश भी झेलना पड़ता है। 'साहित्य अमृत' निरंतर प्रकाशित, प्रसारित होता रहे, हम पाठकों को आह्लादित करता रहे, इन्हीं शुभकामनाओं के साथ।

—माला श्रीवास्तव, ग्रेटर नोएडा (उ.प्र.)

'साहित्य अमृत' का 'श्रीराम विशेषांक' प्राप्त हुआ। यह विशेषांक भेजकर आपने मुझे धन्य कर दिया। रामलला के अपने निवास स्थान पर लौटने की पावन वेला के कुछ ही समय पूर्व इस विशेषांक को प्रकाशित कर आपने भारतीयों को अनुपम उपहार दिया है। अभी सरसरी तौर पर ही देखा है। यह सचमुच अमृत-सा संग्रहणीय विशेषांक है। पढ़कर यथासमय अपनी प्रतिक्रिया देने का प्रयास रहेगा। 'साहित्य अमृत' को अपना साहित्य सौंपने का आनंद ही अलग है।

—संजय भारद्वाज, दिल्ली

'भवन चले सुखधाम' प्रभु श्रीराम विशेषांक सुधी पाठकों को नूतन वर्ष के अनुपम उपहार के रूप में प्राप्त हुआ। 'नार्तशब्दो भवेदिति'—समाज के लिए जिनका उद्घोष वाक्य है, उन भारतीय चारित्रिक मूल्यों के प्रतिनिधि पुरुषोत्तम रघुनाथजी के विविध पक्ष उजागर करता है यह विशेषांक। 'राजा राम' हर भारतीय के प्रभु राम हैं, वे सियापति राम हैं, आदर्श भ्राता हैं, आदर्श पुत्र हैं, आदर्श सखा हैं, आदर्श प्रजातंत्र के आदर्श हैं, प्रजाहितकारी श्रीराम हैं। तभी तो वे पुरुषोत्तम श्रीराम हैं। उनके आदर्शों को अपनाकर आज की दुनिया सुख-चैन से रह सकती है। अयोध्याधाम में प्रभु श्रीराम विराज रहे हैं। हर भारतीय का मन इस अवसर पर प्रसन्न है। इस अवसर पर प्रणाम उन असंख्य नाम-गुमनाम सेनानियों को, जिनके अहर्निश सद्प्रयासों से अयोध्याधाम सांप्रतिक अवस्था में पहुँचा है। प्रणाम उन बलिदानियों को, जिनके कारण यह दिन देखने को मिला है। प्रभु श्रीराम की प्रीति सब पर बनी रहे, वे कल्याणकार्यों के लिए सभी को प्रेरित करते रहें। विशेषांक के समस्त लेखकों एवं संपादक मंडल को साधुवाद।

—योगराज, खरड़ (पंजाब)

'साहित्य अमृत' का जनवरी २०२४ का 'श्रीराम विशेषांक' प्राप्त हुआ। प्रशंसा मात्र करने की बात ही नहीं, वास्तव में हमेशा के लिए सुरक्षित करनेवाला यह 'श्रीराम विशेषांक' है। प्राचीन काल से आज तक श्रीराम का स्मरण करनेवाले महान् विद्वानों के लेख इसमें सुरक्षित हैं। आदिकाल से आज तक भारतवर्ष की संपदा के रूप में राम के आदर्शों का इस अंक में स्मरण किया गया है। प्रभु श्रीराम के आदर्श जीवन के विविध आयामों का दिग्दर्शन करवाता यह विशेषांक हर हिंदू के लिए संग्रहणीय अनुपम निधि है।

—बी.वै. ललितांबा, बेंगलुरु (कर्नाटक)

'साहित्य अमृत' का जनवरी का 'श्रीराम विशेषांक' प्राप्त होने पर मानो मर्यादा पुरुषोत्तम राम के विराट् स्वरूप पर ज्ञान की विपुल संपदा मिलने की अनुभूति हुई। पत्रिका का शुभारंभ 'मन मंदिर में राम' के विद्वत्तापूर्ण संपादकीय से हुआ है, जो श्रीराम को आदर्श पुत्र, आदर्श भाई, आदर्श पति, आदर्श मित्र, आदर्श शिष्य, आदर्श राजा बताते हुए उनके वैश्विक स्वरूप से हमें परिचित कराता है। प्रतिस्मृति में आचार्य विद्यानिवास मिश्र के 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' को पढ़कर लगता है कि राम का मुकुट आज भी भीग रहा है। इसी क्रम में श्री गोलवलकर राम को 'समुद्र इव गाम्भीर्ये, धैर्येण हिममानिव' बताते हैं। महामना मालवीय रामायण के आदर्श पात्रों का वर्णन करते हैं, वीर सावरकर श्रीराम को राष्ट्रीय स्वाभिमान का प्रतीक मानते हैं तथा भारतविद् डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने वाल्मीकि के राम को साक्षात् शरीरधारी धर्म बताया है। महाकवि निराला की 'राम की शक्ति पूजा' तथा राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त के 'साकेत' के अंश मन के अंदर तत्काल रामकाल का स्मरण कराते हैं। आलेखों की शृंखला में स्वामी अवधेशानंद गिरि द्वारा 'रामकथा मुक्त होना सिखाती है', स्वामी गोविंददेव गिरि रचित 'कलियुग केवल नाम अधारा', कुमार विश्वास का कथन 'सनातन संस्कृति के केंद्रबिंदु हैं राम', गिरीश्वर मिश्र का आलेख 'आधुनिक जीवन में श्रीराम की प्रासंगिकता' तथा कुमुद शर्मा के 'तुलसी के राम, जन-जन के राम' पढ़कर मन भाव-विभोर हो गया। फादर कामिल बुल्के का आलेख 'राम का बाल चरित' भगवान् राम के बालस्वरूप का ऐसा महाकोश है, जिसमें हमें वाल्मीकि रामायण, अध्यात्म रामायण, महाकवि कालिदास तथा गोस्वामी तुलसीदास के बाल प्रसंगों का बहुविधि वर्णन मिलता है। अंक की काव्यधारा में बड़ी सुंदर कविताएँ पढ़ने को मिलीं, जिनमें 'रामनाम', 'राम लौटकर आए हैं' तथा उर्वशीजी द्वारा 'अयोध्या राम लौटे हैं' में दोहों-चौपाइयों के माध्यम से मर्यादा पुरुषोत्तम राम के पुनरागमन की अनुभूति होती है। कुलभूषण सोनी की संक्षिप्त काव्यात्मक कथा 'भवसागर से पार करवाते शब्द रामनाम हैं आदि, अन्य रचनाएँ हमें सहज ही महाकवि तुलसी के रामचरितमानस का स्मरण कराती हैं। कुल मिलाकर 'साहित्य अमृत' का श्रीराम विशेषांक प्रभु राम के विराट् स्वरूप का सर्वतोभावेन बोध कराता है। निरंतर आध्यात्मिक आनंद की अनुभूति कराता है। इस अक्षय आनंद-कोश तथा चिरसंग्रहणीय अंक को प्रस्तुत करने के लिए पत्रिका का संपूर्ण संपादक मंडल हृदय से भूरि-भूरि साधुवाद का पात्र है।

—डॉ. श्रीधर द्विवेदी, नोएडा (उ.प्र.)

वर्ग पहेली (२१४)

अगस्त २००५ अंक से हमने '**वर्ग पहेली**' प्रारंभ की, जिसे ज्ञान-विज्ञान की अनेक पुस्तकों के लेखक **श्री विजय खंडूरी** तैयार कर रहे थे; उनके देहावसान के उपरांत अब **श्री ब्रह्मानंद खिच्ची** इसे तैयार कर रहे हैं। हमें विश्वास है, यह पाठकों को रुचिकर लगेगी; इससे उनका हिंदी ज्ञान बढ़ेगा और पूर्व की भाँति वे इसमें भाग लेकर अपना ज्ञान परखेंगे तथा पुरस्कार में रोचक पुस्तकें प्राप्त कर सकेंगे। भाग लेनेवालों को निम्नलिखित नियमों का पालन करना होगा—

१. प्रविष्टियाँ छपे कूपन पर ही स्वीकार्य होंगी।
२. कितनी भी प्रविष्टियाँ भेजी जा सकती हैं।
३. प्रविष्टियाँ २९ फरवरी, २०२४ तक हमें मिल जानी चाहिए।
४. पूर्णतया शुद्ध उत्तरवाले पत्रों में से ड्रॉ द्वारा दो विजेताओं का चयन करके उन्हें तीन सौ रुपए मूल्य की पुस्तकें पुरस्कारस्वरूप भेजी जाएँगी।
५. पुरस्कार विजेताओं के नाम-पते अप्रैल २०२४ के अंक में छापे जाएँगे।
६. निर्णायक मंडल का निर्णय अंतिम तथा सर्वमान्य होगा।
७. अपने उत्तर '**वर्ग पहेली**', **साहित्य अमृत, ४/१९, आसफ अली रोड, नई दिल्ली-२** के पते पर भेजें।

वर्ग पहेली (२१२) का शुद्ध हल

क्रि	के	ट	■	खो	ल	ना	■	न
स	■	र	जा	ई	■	ग	वै	या
म	हा	का	ल	■	त	वा	■	दौ
स	ल	ना	■	न	ग	र	द्वा	र
■	चा	■	स	ग	र	■	र	■
सु	ल	ह	ना	मा	■	प्र	पा	त
धा	■	ला	भ	■	कु	च	ल	ना
क	ल	ह	■	प	ट	ल	■	त
र	■	ल	व	ण	■	न	थ	नी

★ पुरस्कार विजेता ★

१. **श्रीमती रुक्मणी संगल**
२८ बी, प्रेमनगर,
निकट थापर इंजीनियरिंग विश्वविद्यालय,
भादसों रोड, पटियाला-१४७००१ (पं.)
दूरभाष : ९४१७०८८४६६

२. **श्रीमती रेणु मिश्र**
C/O श्री कर्नल कौशल मिश्र
यश मंदिर, ४ भ ९, जवाहर नगर
जयपुर-४ (राज.)
दूरभाष : ९५७१४०५२४२

पुरस्कार विजेताओं को हार्दिक बधाई।

वर्ग-पहेली २१२ के अन्य शुद्ध उत्तरदाता हैं—सर्वश्री विजयपाल सेहलंगिया, संतलाल रोहिल्ला, बाल कुमार, अंकिता, पवन कुमार अहरोदिया (महेंद्रगढ़), जगदीश चंद, फकीर चंद ढुल (कैथल), विनीता सहल (मुंबई), बद्रीलाल व्यास (व्यावरा), पूजा शर्मा (रायपुर), रामकिशन पंवार (हनुमानगढ़), प्रमीला पाड़िया (फरीदाबाद), चित्रा एन. (चेन्नै), अमरदेव आंगिरस (सोलन), वाई.के. श्रीवास्तव (जबलपुर), दिनकर सहल, प्रियंबदा कुमार, सुभाष शर्मा (नई दिल्ली)।

बाएँ से दाएँ—

१. सुकुमार, नरम, अपरिपक्व (३)
४. सौ का समूह (३)
६. दस से दो अधिक (३)
७. किसी एक विषय, घटना या पल पर आधारित कहानी (२,२)
८. चक्की के पाटों को खुरदरा करना (३)
११. युद्ध, लड़ाई (३)
१२. हिंदुस्तानी, भारत का (४)
१४. गोष्ठी, दरबार (२)
१५. गरीब, कंगाल (३)
१६. गीला, भीगा हुआ (२)
१७. तोते का प्यार का नाम (४)
१९. फटे दूध का थक्का (३)
२१. पेट, जठर (३)
२३. गंगा को धरा पर लाने वाले (४)
२४. सत्ताईस में तेईसवाँ नक्षत्र (३)
२५. भिन्नता, भेद, फासला (३)
२६. बेबस, मजबूर (३)

ऊपर से नीचे—

१. शांत करना, भार या जोर पहुँचाना (३)
२. शोरगुल, रोने-पीटने का शोर (४)
३. स्त्री, कामिनी, जीभ (३)
४. मगध नरेश नंद का महामंत्री (४)
५. और, व, वैसा ही (२)
९. हमेशा, सदैव (४)
१०. डरपोक, बुजदिल (३)
११. भाग्यशाली, भाग्यवान (३)
१२. भादों का महीना (४)
१३. एक पक्षी (३)
१४. गंधयुक्त, खुशबूदार (३)
१८. पथिक, यात्री (४)
२०. बादल, मेघ (४)
२१. कम गहरा, छिछला (३)
२२. मिठाई, शीरीनी (३)
२३. विवाह की एक रस्म, उबले चावल (२)

वर्ग पहेली (२१३) का हल अगले अंक में।

वर्ग पहेली (२१४)

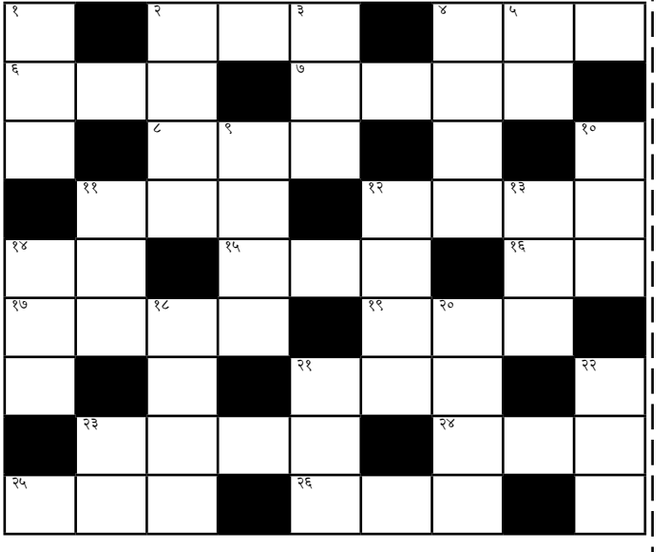

प्रेषक का नाम : .....

पता : .....

.....

.....

दूरभाष : .....

श्री संजय पंकज को
'परमेश्वर नारायण स्मृति साहित्य सम्मान'

विगत दिनों सुप्रसिद्ध कवि-गीतकार डॉ. संजय पंकज को इक्यावन हजार रुपए की राशि के 'परमेश्वर नारायण स्मृति साहित्य सम्मान' से सम्मानित किया गया। यह सम्मान परमेश्वर नारायण मेमोरियल विकास सेवा संस्थान मोरसंड के तत्त्वावधान में ज्ञान भारती पब्लिक स्कूल में दिया गया। अध्यक्षता डॉ. पूनम सिन्हा ने की और मुख्य अतिथि के रूप में सर्वश्री त्रिविक्रम नारायण सिंह, विजय शंकर मिश्र, राघवेंद्र, रेणु सिंह उपस्थित रहे।

□

व्यंग्य-संग्रह का विमोचन संपन्न

विगत दिनों शिवपुरी में श्री रामकिशन सिंघल फाउंडेशन द्वारा दुर्गा मठ में आयोजित डॉ. महेंद्र अग्रवाल के दसवें व्यंग्य-संग्रह 'मिर्ची लगी तो मैं क्या करूँ?' के विमोचन समारोह के मुख्य अतिथि म.प्र. लेखक संघ के प्रांतीय अध्यक्ष श्री रामवल्लभ आचार्य थे, अध्यक्षता श्री हरीश भार्गव ने की व विमोच्य कृति की समीक्षा श्री विनयप्रकाश नीरव ने की।

□

गजल-संग्रह 'हो न हो' लोकार्पण

२४ दिसंबर को दिल्ली की प्रमुख साहित्यिक संस्था 'वयम्' के तत्त्वावधान में श्री ताराचंद 'नादान' के 'सर्वभाषा प्रकाशन' द्वारा सद्य: प्रकाशित गजल-संग्रह 'हो न हो' का लोकार्पण हंसराज कॉलेज के संगोष्ठी कक्ष में संपन्न हुआ। अध्यक्षता श्री बालस्वरूप राही ने की, कॉलेज की प्राचार्या प्रो. रमा के सान्निध्य में मुख्य अतिथि डॉ. शकील अहमद मोईन तथा मुख्य वक्ता श्री नरेश शांडिल्य थे। संचालन श्री अनिल 'मीत' ने किया।

□

स्वामी अवधेशानंद की दो पुस्तकें लोकार्पित

२४ दिसंबर को हरिद्वार के हरिहर आश्रम में आचार्य महामंडलेश्वर स्वामी अवधेशानंद गिरिजी महाराज के आचार्य महामंडलेश्वर का दायित्व निर्वहन करने के पच्चीस वर्ष पूर्ण होने के अवसर पर आध्यात्मिक चेतना जाग्रत् करती प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उनकी दो पुस्तकें 'पाथ टू डिविनिटी' तथा 'टुवर्ड्स परफैक्शन' का लोकार्पण राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के सरसंचालक मान. डॉ. मोहनराव भागवत के कर-कमलों से योगगुरु स्वामी रामदेव, हरियाणा के मुख्यमंत्री श्री मनोहर लाल खट्टर तथा आध्यात्मिक जगत् के मूर्धन्य संतवृंद के पावन सान्निध्य में संपन्न हुआ। 'सनातन वैदिक संस्कृति में लोककल्याण के सूत्र' विषय पर हुई संगोष्ठी में अनेक प्रबुद्ध महानुभावों ने अपने उद्बोधन दिए।

□

प्रविष्टियाँ आमंत्रित

सलूंबर (राजस्थान) में स्थापित सलिला संस्था द्वारा हिंदी बाल साहित्य की विभिन्न विधाओं के लेखन को प्रोत्साहन देने और श्रेष्ठ रचनाओं को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करने हेतु विगत छह वर्षों से प्रतियोगिता का आयोजन किया जा रहा है। इस हेतु वर्ष २०२४ के लिए राष्ट्रीय स्तर पर बाल साहित्यकारों से आलेख विधा में मौलिक, अप्रकाशित एवं अप्रसारित प्रविष्टियाँ १ मार्च, २०२४ तक डॉ. विमला भंडारी, अध्यक्ष, सलिला संस्था, दूरभाष : ९४१४७५९३५९, ९१४५८१५३९० को भेज सकते हैं।

□

काव्य-कृति 'आनुवंशिक उत्पात' लोकार्पित

विगत दिनों ज्ञान गरिमा सेवा न्यास के तत्त्वावधान में उपनिधि के डॉ. उमाशंकर शुक्ल 'शितिकंठ' पर केंद्रित अंक का तथा महामना मालवीयजी की स्मृति में शिक्षक सम्मान-२३ समारोह एवं मधुर काव्य-संगम का आयोजन लखनऊ के सीएमएस स्कूल में किया गया। अध्यक्षता पूर्व हिंदी विभागाध्यक्ष डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित ने की, मुख्य वक्ता श्रीमती अमिता दुबे व मुख्य अतिथि डॉ. बलराज थे। डॉ. एफ.आइ. जुबेरी तथा डॉ. ज्योतिका राजावत ने डॉ. सुभाष गुरुदेव की काव्य कृति 'आनुवंशिक उत्पात' के विविध पक्षों पर प्रकाश डाला।

द्वितीय सत्र में महामना मालवीयजी की स्मृति में नगर के विभिन्न संस्थानों से चयनित शिक्षकों का सारस्वत सम्मान किया गया। अंतिम सत्र में सरस काव्य संगम का आयोजन हुआ, जिसमें सर्वश्री केशरी प्रसाद शुक्ल, देवकी नंदन 'शांत', वर्षा श्रीवास्तव, जयप्रकाश तिवारी, विश्वंभर शुक्ल, राम प्रकाश शुक्ल 'प्रकाश', रजनी मिश्र, अनिल किशोर शुक्ल 'निडर', दयाशंकर गुप्त, देवीसरन श्रीवास्तव, शरद सिंह, रेनू द्विवेदी तथा शरद मिश्र 'सिंधु' आदि कवियों ने काव्यपाठ किया। डॉ. सुभाष गुरुदेव ने आभार व्यक्त किया।

□

परिसंवाद संपन्न

१० जनवरी को 'विश्व हिंदी दिवस' पर गुजरात हिंदी साहित्य अकादमी गांधीनगर, हिंदी दलित साहित्य अकादमी गांधीनगर एवं हिंदी विभाग, एम.एस. विश्वविद्यालय बड़ौदा के संयुक्त तत्त्वावधान में हिंदी के वरिष्ठ साहित्यकार प्रो. रामदरश मिश्र, जिनकी जन्म शताब्दी मनाई जा रही है, के साहित्य पर संगोष्ठी हुई। अतिथियों का शाब्दिक स्वागत समन्वयक डॉ. धनंजय चौहान ने किया। बिरसा मुंडा ट्राइबल यूनिवर्सिटी के कुलपति डॉ. मधुकर पाड़वीजी ने प्रो. मिश्र के साहित्य पर ज्ञानवर्धक वक्तव्य दिया। बीज वक्ता डॉ. जशवंत पंड्या ने मिश्रजी के योगदान की चर्चा की। सर्वश्री कल्पना गवली, उमेश कुमार, पार्वती गोसाई, गोवर्धन बंजारा, राजेंद्र परमार, नरसिंहदास ने अपने विचार रखे। संचालन डॉ. धीरज वणकर ने किया।

□

राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन संपन्न

१० दिसंबर, २०२३ को उदयपुर में 'संस्कार-निर्माण की पौधशाला है बाल साहित्य' विषय को लेकर एक दिवसीय १४वाँ राष्ट्रीय बाल साहित्यकार सम्मेलन राजस्थान कृषि महाविद्यालय के प्रसार शिक्षा निदेशालय सभागार में सलिला संस्था द्वारा राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली और महाराणा प्रताप कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय, उदयपुर के संयुक्त तत्त्वावधान में आयोजित किया। प्रथम सत्र की अध्यक्षता श्री संजय जैन ने की, मुख्य अतिथि डॉ. संजीव कुमार व विशिष्ट अतिथि सर्वश्री उमाशंकर शर्मा, राजेंद्र

मोहन शर्मा, ज्योतिपुंज, के.एल. कोठारी एवं शील कौशिक थे। सम्मान सत्र में 'सलिला विशिष्ट साहित्यकार सम्मान' डॉ. सतीश कुमार एवं 'सलिला साहित्यरत्न सम्मान' श्री नीलम राकेश को प्रदान किया गया। जीवनी लेखन विधा के प्रथम पुरस्कार विजेता डॉ. शील कौशिक एवं श्रीमती नमिता सिंह, द्वितीय पुरस्कार विजेता सर्वश्री तरुण कुमार दाधीच, इंदु गुप्ता एवं लता अग्रवाल और श्रेष्ठ लेखन हेतु सर्वश्री नीरज शास्त्री एवं शिल्पी पांडे को माला, शॉल, मानधन और अभिनंदन-पत्र भेंट कर पुरस्कृत किया गया। 'सलिल प्रवाह' विशेषांक और 'दी ऑरबिट आई' पुस्तक का लोकार्पण सम्मानीय मंच की उपस्थिति में हुआ। राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली द्वारा 'बाल साहित्य में जीवनी विधा लेखन' पर पैनल चर्चा आयोजित की गई, जिसकी अध्यक्षता डॉ. संजीव कुमार ने की। संयोजक श्री द्विजेंद्र कुमार ने संचालन किया।

□

राष्ट्रीय लघुकथा उत्सव संपन्न

विगत दिनों पश्चिम बंगाल के सूचना एवं संस्कृति विभाग द्वारा पश्चिम बंग हिंदी अकादमी ने द्विदिवसीय राष्ट्रीय लघुकथा उत्सव-२०२३ आयोजित किया, जिसमें देशभर के प्रतिष्ठित लघुकथाकार उपस्थित हुए। उद्घाटन सत्र में सर्वश्री सोमा बंदोपाध्याय, विजय भारती, देवेंद्र कुमार देवेश, रावेल पुष्प तथा गिरिधारी साहा उपस्थित थे। प्रथम सत्र में श्रीमती कांता राय ने '२१वीं शताब्दी में लघुकथा से अपेक्षाएँ' विषय पर, विशिष्ट लघुकथाकार श्री अशोक भाटिया ने 'हिंदी लघुकथा : उपलब्धियाँ और संभावनाएँ' विषय पर एवं लघुकथाकार श्री सिद्धेश्वर ने अपने विचार रखे। श्री रचना सरन के संचालन में हुए इस सम्मेलन के दूसरे दिन बांग्ला, पंजाबी, गुजराती तथा मैथिली भाषाओं में लिखी जा रही लघुकथाओं पर भी चर्चा हुई।

□

'रोम-रोम में राम' कृति लोकार्पित

१८ जनवरी को गांधी दर्शन, राजघाट, नई दिल्ली में 'पंजाब केसरी' के पूर्व संपादक श्री अश्विनी कुमार चोपड़ा की चतुर्थ पुण्यतिथि पर उनके द्वारा लिखित शृंखला 'रोम-रोम में राम' का लोकार्पण केंद्रीय रक्षा मंत्री मान. श्री राजनाथ सिंह के कर-कमलों से विहिप के अंतरराष्ट्रीय कार्याध्यक्ष श्री आलोक कुमार, इंडिया टी.वी. के सीईओ श्री रजत शर्मा, सेवा भारती के श्री कुलभूषण आहूजा, सांसद श्री गौतम गंभीर, दिल्ली विधानसभा में नेता प्रतिपक्ष श्री रामवीर सिंह बिधूड़ी की उपस्थिति में संपन्न हुआ। प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक में अश्विनीजी के अतिरिक्त सर्वश्री किरण चोपड़ा, आदित्य नारायण चोपड़ा, सर्जना शर्मा, रवि पाराशर, आशीष कंधवे, प्रवेश कुमार, पीसी लाल यादव, गरिमा संजय, शिवा पांडेय, ललित शर्मा, ज्ञानेंद्र बरतरिया, विनोद बंसल, राकेश कुमार उपाध्याय, देवांशु झा 'पद्मनाभ', राजीव तुली, सुनीता शर्मा, ललिता निझावन आदि के लेख भी संकलित हैं। संपादन श्रीमती किरण चोपड़ा ने किया है।

□

साध्वी ऋतंभराजी की दो पुस्तकें लोकार्पित

३१ दिसंबर को वृंदावन के वात्सल्य ग्राम में आध्यात्मिक विभूति दीदीमाँ साध्वी ऋतंभराजी की षष्ठिपूर्ति के अवसर पर प्रभात प्रकाशन द्वारा प्रकाशित उनकी पुस्तक 'नर से नारायण' तथा श्रीरामजन्मभूमि आंदोलन में उनकी सक्रिय सहभागिता को रेखांकित करती वरिष्ठ पत्रकार श्री देवेंद्र शुक्ल की पुस्तक 'साध्वी ऋतंभरा और श्रीरामजन्मभूमि आंदोलन' का लोकार्पण पूज्य अनंतश्री विभूषित युगपुरुष महामंडलेश्वर स्वामी परमानंद गिरिजी महाराज, अखिल भारतीय अखाड़ा परिषद् के अध्यक्ष पूज्य महामंडलेश्वर स्वामी रवींद्र पुरीजी महाराज, पूज्य दीदीमाँ साध्वी ऋतंभराजी, केंद्रीय मंत्री साध्वी निरंजन ज्योतिजी एवं अनेक संत-शक्तियों के पावन सान्निध्य में संपन्न हुआ।

□

कवि-सम्मेलन संपन्न

१८ नवंबर को तेजपुर में पूर्वोत्तर हिंदी साहित्य अकादमी द्वारा शहर के ऐतिहासिक स्थल चित्रलेखा उद्यान में महान् मनीषी श्री ज्योतिप्रसाद आगरवाला की ७३वीं पुण्यतिथि के अवसर पर शिल्पी दिवस तथा बहुभाषी कवि-सम्मेलन श्रीमती रीता सिंह सर्जना की अध्यक्षता, मुख्य अतिथि श्री नारायण आचार्य, विशिष्ट अतिथि श्री गोपीनाथ बरदलै, मुख्य वक्ता भुपेंद्रनाथ हजारिका, समीक्षक डॉ. सरिता शर्मा के सान्निध्य में संपन्न हुआ। श्री संतोष कुमार महतो ने संचालन किया। इस अवसर पर बहुभाषी कवि-सम्मेलन में बालकवि दिव्यज्योति बरुआ ने बाँसुरी वादन से सभी को मंत्रमुग्ध किया। इसके बाद सर्वश्री बीना देवी, मनीषा पाल, कुसुम टिबड़ेवाल, ऊषाकिरण टिबड़ेवाल, अंजना आचार्य, सैयदा आनोवारा खातून, नीता गुरुंग, नागेश कुमार गुप्ता, सच्चिदानंद सिंह, चित्रप्रसाद पौड़ेल, मंटू बराल, जयंत आचार्य, फिराक गोर्खाली, दिव्यज्योति बरुआ आदि ने कविता पाठ किया। डॉ. मधुरिमा गोस्वामी को अभिनंदन पत्र, अकादमी की पत्रिका 'पूर्वोत्तर सृजन' तथा पुस्तकें देकर सम्मानित किया गया। श्री संतोष कुमार महतो ने श्रोताओं धन्यवाद दिया।

□

साहित्यिक क्षति

प्रो. वेद प्रकाश नंदा नहीं रहे

१ जनवरी को प्रख्यात शिक्षाविद्, विधिवेत्ता प्रो. वेद प्रकाश नंदा का निधन हो गया। भारतीय मूल के अमेरिकी शिक्षाविद् प्रो. नंदा अंतरराष्ट्रीय कानून के विशेषज्ञ थे और उन्हें २०१८ में 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया था। उनका जन्म १९३४ में गुजराँवाला (अब पाकिस्तान) में हुआ था। वे अपने छात्र जीवन के दौरान अखिल भारतीय विद्यार्थी परिषद् (एबीवीपी) के अखिल भारतीय अध्यक्ष और दिल्ली विश्वविद्यालय छात्र संघ के अध्यक्ष रहे। अमेरिका के डेनवर विश्वविद्यालय में पिछले ५० वर्षों से अंतरराष्ट्रीय कानून के एक प्रसिद्ध संकाय सदस्य के रूप में उन्होंने भारतीय-अमेरिकी समुदाय की भलाई में अपार योगदान दिया। अंतरराष्ट्रीय कानून के विभिन्न क्षेत्रों में २४ पुस्तकों के लेखक और सह-लेखक के रूप में उन्हें व्यापक रूप से प्रसिद्धि मिली। वे 'डेनवर पोस्ट' में नियमित स्तंभ लिखते थे। प्रो. नंदा को सामुदायिक शांति निर्माण के लिए गांधी, किंग, इकेदा पुरस्कार सहित कई अन्य पुरस्कार भी मिले।

साहित्य अमृत परिवार की ओर से
दिवंगत आत्मा को भावभीनी श्रद्धांजलि!